176th

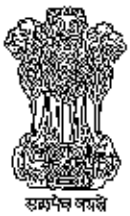

भारत का विधि आयोग

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम (संशोधन) विधेयक, 2001

विषय पर

एक सौ छियत्तरवीं

रिपोर्ट

2001

न्यायमूर्ति
बी॰पी॰ जीवनरेड्डी
चेयरमैन, भारत का विधि आयोग

भारत का विधि आयोग
शास्त्री भवन
नई दिल्ली-110001
दूरभाष: 3384475
निवास:
1 जनपथ
नई दिल्ली-110001
दूरभाष: 3019465

आ॰आ॰सं॰6(3)(69)/2001-एल॰सी॰(एल॰ए॰)

प्रिय श्री जैटली जी,

मैं इस पत्र के साथ "माध्यस्थम् सुलह (संशोधन) विधेयक, 2001 पर 176वीं रिपोर्ट प्रस्तुत कर रहा हूं।

आपने इच्छा व्यक्त की थी कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के उपबंधों की विभिन्न खामियों तथा आपको प्राप्त हुए विभिन्न अभ्यावेदनों को ध्यान में रखते हुए आयोग इस अधिनियम के कार्यकरण की पुनरीक्षा करे। अनसिट्राल मॉडल (जिसके आधार पर माध्यस्थम् सुलह अधिनियम, 1996 अधिनियमित किया गया था) का प्रमुख आशय विभिन्न देशों को अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् का सामान्य मॉडल उपलब्ध कराना था, परन्तु 1996 के अधिनियम की मॉडल विधि के उपबंधों को भारतीय राष्ट्रिकों के मध्य पूर्णतया देशी माध्यस्थम् के मामलों के लिए भी लागू किया गया था। इस बीच 1996 के अधिनियम के उपबंधों के बारे में उच्च न्यायालयों के विरोधाभासपूर्ण विनिर्णय सामने आए। उक्त अधिनियम के कार्यकरण में कठिनाईयों से संबंधित कतिपय अन्य पहलुओं की ओर भी आयोग का ध्यान आकर्षित किया गया। आयोग ने प्रारम्भ में एक परामर्श-पत्र (रिपोर्ट का अनुबंध-II) तैयार किया और मुम्बई तथा दिल्ली में फरवरी तथा मार्च के महीनों में दो गोष्ठियां आयोजित की और इस पत्र को वैबसाइट पर देकर इसका पर्याप्त प्रचार किया। सेवानिवृत्त न्यायाधीशों तथा प्रतिष्ठित अधिवक्ताओं को गोष्ठियों में आमंत्रित किया गया। बहुत से विद्वान लोगों ने भी गोष्ठियों में भाग लिया और अपने सुझावों सहित लिखित टिप्पण उपलब्ध कराए। जो प्रस्ताव परामर्श-पत्र में भी अन्तर्विष्ट नहीं थे, उन पर भी विस्तार से चर्चा हुई। विषय से संबंधित विधि का गहन अध्ययन करके, विदेशी अधिकार क्षेत्र में विधि की स्थिति को ध्यान में रखते हुए, आयोग ने माध्यस्थम् सुलह अधिनियम, 1996 में संशोधन करने के लिए विभिन्न सिफारिशें की हैं। सिफारिशों का सारांश रिपोर्ट के अध्याय तीन में दिया गया है। आयोग ने माध्यस्थम् सुलह (संशोधन) विधेयक, 2001 नामक विधेयक भी तैयार किया है जिसमें माध्यस्थम् सुलह अधिनियम, 1996 में संशोधन करने वाले विभिन्न उपबंध दिए गए हैं। उक्त विधेयक रिपोर्ट के उपाबंध-I के रूप में संलग्न है।

सादर,

भवदीय,

(बी॰पी॰ जीवनरेड्डी)

श्री अरुण जैटली,
विधि न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली।

विषय-सूची

		पृष्ठ सं०
अध्याय-एक	माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की प्रमुख संरचना और उसके कार्यकरण में अनुभव की गई कतिपय खामियां	1-9
अध्याय-दो	संशोधनों हेतु प्रस्तावों पर चर्चा और आयोग की सिफारिशें	10-115
अध्याय-तीन	सिफारिशों का सारांश	116-129
उपाबंध-I	माध्यस्थम् और सुलह (संशोधन) विधेयक, 2001	130-158
	खण्डों का प्रबंधन	
उपाबंध-II	माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के कार्यकरण की पुनरीक्षा पर परामर्श-पत्र—माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996	159-188

अध्याय-एक

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की प्रमुख संरचना और उसके कार्यकरण में अनुभव की गई कतिपय कठिनाइयां

विधि आयोग ने माननीय विधि न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री, श्री अरूण जैटली के अनुरोध पर भारतीय माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम 1996 की पुनरीक्षा आरंभ की और आयोग ने अधिनियम में विभिन्न संशोधनों के सुझाव दिए हैं जो इस रिपोर्ट में दिए गए हैं।

1.1 माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996, विदेशी माध्यस्थम पंचाटों के प्रवर्तन और अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् में देशी माध्यस्थम् विधि से संबंधित विधि का समेकन करने तथा उसमें संशोधन करने के लिए तथा सुलह और उससे जुड़े हुए मामलों के लिए या उसके आनुषंगिक विषयों से संबंधित विधि को भी परिभाषित करने वाला एक अधिनियम है। यह अधिनियम 22.8.1996 से प्रभावी हुआ और 25.1.1996 से प्रवृत्त माना जाएगा। (मैसर्स प्यूरेस्ट डे लासन लिमिटेड बनाम जिन्दल निर्यात लिमिटेड, 2001 (3) स्केल 708 द्वारा)

यह अधिनियम एक ऐसी मॉडल विधि है जिसका प्रारूपण संयुक्त राष्ट्र के एक कार्यकारी दल द्वारा सभी अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों को शासित करने के लिए किया गया था तथा जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विधि आयोग द्वारा 21 जून, 1985 को अन्तिम रूप से स्वीकार कर लिया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली की धारणा है कि सभी देशों को इस मॉडल विधि पर माध्यस्थम् प्रक्रियाओं संबंधी विधि की एकरूपता की वांछनीयता और अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक व्यवहार संबंधी विशिष्ट आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, इस मॉडल विधि पर समुचित विचार करना चाहिए। 1996 के अधिनियम की प्रस्तावना में यह भी कहा गया है कि उपर्युक्त मॉडल विधि को ध्यान में रखते हुए, माध्यस्थम् और सुलह से संबंधित विधि बनाना समीचीन होगा''।

1996 के अधिनियम के अधिकार क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय तथा देशी दोनों प्रकार के माध्यस्थम् आ जाते हैं अर्थात जहां कम से कम एक पक्ष भारतीय राष्ट्रिक नहीं है और ऐसे माध्यस्थम् भी जहां दोनों ही पक्ष भारतीय राष्ट्रिक हैं। 1996 के अधिनियम की धारा 85 के द्वारा पुराने माध्यस्थम् अधिनियम 1940, देशी माध्यस्थम् से संबंधित, और माध्यस्थम् (प्रोटोकाल और अभिसमय) अधिनियम, 1937 तथा विदेशी पंचाट (मान्यता और प्रवर्तन) अधिनियम, 1961 (अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् से संबंधित) का निरसन कर दिया गया है और इस प्रकार 1996 के अधिनियम को देशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के माध्यस्थमों के लिए प्रभावी बनाया गया है।

1.2 'माध्यस्थम्' शीर्षक के अन्तर्गत अधिनियम का भाग-एक सामान्य है और इसमें अध्याय-एक से अध्याय-दस तक अन्तर्विष्ट है। अधिनियम का भाग दो कतिपय विदेशी पंचाटों के प्रवर्तन के बारे में है भाग दो का अध्याय एक जेनेवा अभिसमय पंचाट से संबंधित है और अध्याय-दो जनेवा अभिसमय पंचाटों के बारे में है। 1996 के अधिनियम का भाग तीन सुलह से संबंधित है जिसके विषय हमने इस रिपोर्ट में कोई विचार नहीं किया है। भाग-चार पूरक उपबंधों के बारे में है। अधिनियम में तीन अनुसूचियां अन्तर्विष्ट हैं। प्रथम अनुसूची में विदेशी माध्यस्थम् पंचाटों की मान्यता और प्रवर्तन पर अभिसमय का उल्लेख किया गया है (देखें धारा 44) दूसरी अनुसूची में माध्यस्थम् खण्डों पर प्रोटोकॉल का उल्लेख है और तीसरी अनुसूची में विदेशी पंचाटों के निष्पादन पर अभिसमय का उल्लेख किया गया है।

यह रिपोर्ट 1996 के अधिनियम के भाग एक तक ही सीमित है जो भारत में माध्यस्थम् से संबंधित है। अधिनियम के भाग-दो तथा भाग-तीन से संबंधित नहीं है।

यद्यपि मॉडल विधि कोई संधि का रूप नहीं लेती है, विभिन्न देशों के सभी विधानमंडलों ने, जिन्होंने 1985 से ही माध्यस्थम् विधियों की पुनरीक्षा करने का निर्णय किया है, अनसिट्राल मॉडल विधि को पूर्ण रूप से ध्यान में रखा है।

कुछ देशों ने मॉडल विधि के कतिपय उपबंधों को स्वीकार कर लिया है परन्तु उन्होंने मॉडल विधि का विस्तार करने, दूसरे उसे सरल या उदार बनाने को भी ध्यान में भी रखा है। इस संबंध में 1986 में जा सकते हैं। अपने देशों की विशिष्ट विधिक प्रणालियों के कारण, इटली और इंगलैण्ड ने मॉडल विधि को पूर्णतया न अपनाने का निर्णय किया। 31 मार्च 1999 तक एक सीमा तक 'अनसिट्राल' मॉडल विधि के आधार पर कुल 29 देशों ने (आस्ट्रेलिया, बहरीन, बरमूडा, बलगारिया, कनाडा, साईप्रस, इजिप्ट, फिनलैण्ड, जर्मनी, ग्वेतमाला, हंगरी, इण्डिया, ईरान, आयरलैण्ड, कीनिया, लिथुनिया, माल्टा, मैक्सिको, न्यूजीलैण्ड, नाईजीरिया, ओमान, पेरू, रशियन फैडरेशन, स्काटलैण्ड, स्वीडन, श्रीलंका, ट्यूनीशिया, उक्रेन, जिम्बाबे तथा हांगकांग, 8 अमरीकी राज्य कनाडा के सभी 12 प्रान्तों और क्षेत्रों ने) विधान बनाए। देखें, इन्टरनेशनल कामर्शियल आर्बिट्रेशन, वेचियता, फोकार्ड, गिलार्ड, गोल्डमैन, 1999, पृष्ठ 109 पैरा 2.5 तथा वैबसाइट फार अपडेटिंग: एनटीडीपी/डब्लू, डब्लू यू एन आ एट/अनसिट्राल)।

एकरूपता की क्रमिक प्रक्रिया का महत्व यह है कि जिन देशों ने मॉडल विधि स्वीकार कर ली है या अपनी विधि को उसके अनुरूप बना लिया है उन सभी देशों में न्यायालयों के निर्णय 1992 से इस विधि के अनुसार ही प्रकाशित हुए है। इस प्रकार मॉडल विधि की व्याख्या के संबंध में निर्णय जनित विधिक निकाय में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। (देखें-क्लौऊट, बाई. बी. काम. आब. 297-300 (1997) (फोकहार्ड, वही पृष्ठ 109, पैरा 2.5)

1996 का अधिनियम, विशेषकर माध्यमस्थम प्रक्रिया के तेज करने और न्यायालय का हस्तक्षेप कम करने संबंधी सुधार करने के लिए की गयी सिफारिशों के परिणामस्वरूप अधिनियमित किया गया। (गुरू नानक फाऊंडेशन्स बनाम रतन सिंह (ए.आई.आर. 1981 सु.को. पृष्ठ 2075, 2076-77)। उच्चतम न्यायालय ने 1940 के अधिनियम का उल्लेख करते हुए यह टिप्पणी की कि "अधिनियम के अधीन जिस प्रकार से कार्यवाहियां की जाती है और बिना किसी अपवाद के इन्हें न्यायालयों में चुनौत दी जाती है, वह "प्रत्येक चरण में अमन्त विस्तार के कारण, अनभिज्ञ लोगों को भी कानूनी जाल में फंसाने के विचार से", अधिवक्ताओं के लिए उपहासपद और विधिक दार्शनिकों के लिए अत्यन्त खेदजनक है"। लोक सभा की लोक-लेखा समिति ने भी भारत में माध्यस्थम् के बारे में प्रतिकूल टिप्पणी की थी (नवां प्रतिवेदन 1977-78 पृष्ठ 201-202)। इस मामले पर विधि आयोग ने अपनी छियत्तरवीं रिपोर्ट में विचार किया और कतिपय संशोधनों की सिफारिश की जिनमें धारा 28 में, 1940 के अधिनियम की धारा 28 इस आशय का परन्तुक अन्तस्थापित करना भी सम्मिलित है जिसमें पंचाट देने के समय के बारे में, विशिष्ट और पर्याप्त कारण अभिलिखित करने के सिवाय, एक वर्ष से अधिक कार्यवाही चलाने का निषेध किया गया है।

उच्चतम न्यायालय ने "फूड कारपोरेशन ऑफ इंडिया बनाम जोगिन्दर पाल" के मामले में यह टिप्पणी की है कि माध्यस्थम् विधि सरल, कम तकनीकियों वाली और परिस्थिति की सही वास्तविकता और न्याय तथा निष्पक्षता के सिद्धान्त के प्रति उत्तरदायी हो।

1.3 शीघ्र निपटान तथा न्यायालय का न्यूनतम मध्यक्षेप 1996 के अधिनियम के आधार पर है।

1996 के अधिनियम के अध्ययन से पता चलता है कि शीघ्र माध्यस्थम तथा न्यायालय का न्यूनतम मध्यक्षेप इसके प्रमुख उद्देश्य हैं। वास्तव में अधिनियम की धारा 5 घोषित करती है:—

> "इस भाग द्वारा शासित मामले में, तत्समय प्रवृत्त किसी दूसरी विधि में किसी बात के अन्तर्विष्ट होते हुए भी, कोई भी न्यायिक प्राधिकारी उस दशा के सिवाय मध्यक्षेप नहीं करेगा जिसके लिए इस भाग में ऐसा उपबंध किया गया है।"

यह मूल प्रावधान उन सभी देशों की विधियों में पाया जाता है जिन्होंने अनसिट्राल मॉडल स्वीकार कर लिया है। आपत्तियों के अधित्यजन संबंधी उपबंध धारा 4, 12, 14(4), 16(5) और 19(1) पर्याप्त रूप से यह दर्शाते हैं कि उद्देश्य इस बात का ध्यान रखना है कि विवाद अनावश्यक रूप से दीर्घ काल तक न चलते रहें। वास्तव में अनसिट्राल मॉडल, जहां, अपील के द्वारा पंचाट पारित होने से पूर्व, न्यायालय के मध्यक्षेप की अनुमति देता है, वहां वह यह मध्यस्थ पर छोड़ता है कि अपील के लम्बित रहते वह मामले में आगे कार्यवाही करे अथवा नहीं।

अन्ततः इस बात पर बल देना आवश्यक हो जाता है कि प्रस्तावित संशोधनों के परिणामस्वरूप पक्षकारों को माध्यस्थम् कार्यवाहियों को अनावश्यक रूप से लम्बा खींचने की अनुमति प्राप्त न हो। संशोधनों की

आवश्यकता पर विचार करते समय आयोग अधिनियम के मूल उद्देश्य से परे नहीं गया है। आयोग ने उसे प्राप्त हुए ऐसे बहुत से प्रस्तावों को रद्द कर दिया क्योंकि उसने यह महसूस किया कि उक्त प्रस्तावों से माध्यस्थम् कार्यवाहियों में विलम्ब होगा।

1.4 अधिनियम की खामियों के बारे में अभ्यावेदन

1996 का अधिनियम जब से प्रभावी हुआ, तभी से अधिनियम में अन्तर्विष्ट माध्यस्थम् संबंधी उपबंधों में संशोधन करने की मांग की जाती रही है। 1998 में विधि आयोग ने यह विचार किया था कि 1996 के अधिनियम में संशोधनों पर जल्दबाजी में विचार करना उपयुक्त नहीं होगा और यह कि इस बात की प्रतिक्षा करना और ध्यान देना वांछनीय होगा कि उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों से न्यायालय किस प्रकार निपटता है।

1.5 पंचाट देने के पश्चात् न्यायालयों द्वारा हस्तक्षेप के लिए आधारों के संबंध में अभ्यावेदन

अभी हाल ही में, आयोग को ऐसे अभ्यावेदन प्राप्त हुए हैं जिनमें यह उल्लेख किया गया है कि अनसिट्राल मॉडल का प्रमुख आशय यह है कि विभिन्न देश अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के लिए एक समान मॉडल विधि अधिनियमित कर सकें और भारतीय अधिनियम, 1996 में मॉडल विधि के अनुरूप ही उपबंध रखे गए हैं और इन्हें पूर्णतया ऐसे मामले में, जिन्हें हम भारतीय राष्ट्रिकों के बीच देशी माध्यस्थम् के मामले कह सकते हैं, के लिए लागू किया गया है और इससे अधिनियम के कार्यान्वयन में कतिपय कठिनाईयां उत्पन्न हो गयी हैं। 1996 के पश्चात् जो कठिनाइयां पैदा हुयीं उन्हें हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है।

1.6 इस रिपोर्ट में "पूर्णतया भारतीय राष्ट्रिकों के बीच देशी माध्यस्थम्" शब्दावली ऐसे माध्यस्थम् के लिए प्रयोग की गई है जहां माध्यस्थम् का (एक) ऐसा व्यक्ति जो भारत के अतिरिक्त किसी अन्य देश का राष्ट्रिक है, या अभ्यासतः निवासी है, या (दो) भारत के अतिरिक्त किसी अन्य देश में निगमित निकाय है, या (तीन) व्यक्तियों की कोई कम्पनी या कोई एसोसिएशन या कोई निकाय जिसका प्रबंधन या नियंत्रण भारत के अतिरिक्त किसी अन्य देश से किया जाता है और "अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम्" शब्दों का प्रयोग ऐसे मामले के लिए किया गया है जहां उपर्युक्त पक्षकारों/निकायों में कम से कम एक पक्ष भारत के अतिरिक्त किसी अन्य देश में है, कोई भी पक्षकार नहीं है। यह सुविधा की दृष्टि से किया गया है। इस संबंध में धारा 2(1) (डक) में देशी माध्यस्थम् पद की गई प्रस्तावित परिभाषा के कोई भ्रम पैदा नहीं किया जाना चाहिए।

धारा 34 तथा धारा 37 के अधीन दिए गए पंचाट पर आपत्ति करने के आधार पूर्णतया देशी पंचाट और अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् पंचाटों के लिए, अब एक समान बना दिए गए हैं। यह सुझाव दिया गया है कि पंचाट के बारे में न्यायालय के न्यूनतम मध्यक्षेप का सिद्धांत अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् पंचाटों के लिए एक अच्छा सिद्धान्त हो सकता है परन्तु भारतीय राष्ट्रिकों के बीच, के पंचाट साधारण व्यक्तियों द्वारा पारित किए जाते हैं जो विधिवेत्ता नहीं होते हैं। ऐसे पंचाटों के बारे में मध्यक्षेप इतना सीमित नहीं होना चाहिए जितना कि अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् के मामले में। इस सुझाव को उपर्युक्त परिस्थियों में ध्यान में रखा जाएगा। वास्तव में विधि आयोग का ध्यान रैडफर्न एण्ड हन्टर द्वारा रचित "लॉ एण्ड प्रैक्टिस ऑफ इन्टरनेशनल आर्बिट्रेशन" के एक पैराग्राफ की ओर दिलाया गया है। (दूसरा संस्करण पृष्ठ 14 तथा 15) जिसका पाठ इस प्रकार है:—

> "विकसित देशों में, जहां माध्यस्थम् विधि विकसित है, सामान्यतया यह माना जाता है कि देशी माध्यस्थम् में सामान्यतया जो स्वतंत्रता दी जाती है उसकी तुलना में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों को अधिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। कारण स्पष्ट है। देशी माध्यस्थम् के मामले उस देश के न्यायालयों में चलायी जाने वाली कार्यवाहियों के विकल्प के रूप में उसी देश के नागरिकों या राष्ट्रिकों के बीच होते हैं..... ....यह बात ठीक है कि देश ऐसे माध्यस्थमों पर, जिनमें उसके अपने नागरिक या निवासी अन्तर्ग्रस्त हैं, अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों की तुलना में, जो भौगोलिक सुविधा के कारणदेश के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं, अपना दृढ़ नियंत्रण रखना चाहेगा (या उसे इसकी आवश्यकता होगी)"

उपर्युक्त पंक्तियां इस विचार की समर्थक हैं कि भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूर्णतया देशी माध्यस्थम् के मामले में देश अपने न्यायालयों का अधिक और दृढ़ नियंत्रण रखना चाहेगा।

दूसरी ओर, हमने देखा है कि इंग्लैण्ड की विधि में अन्तर्राष्ट्रीय तथा देशी माध्यस्थमों में, मॉडल विधि की तुलना में, न्यायालयों का अधिक पर्यवेक्षण रहा है और अभी भी है। 1979 में इंग्लिश अधिनियम की धारा 3 और 4 में उच्च न्यायालय में विभिन्न प्रकार की अपीलों के अपवर्जन की अनुमति दी गई है, यदि गैर देशी

माध्यस्थम् करार में इस प्रकार की व्यवस्था भी की गई है और जिसे ऐसे माध्यस्थम् करार के रूप में परिभाषित किया गया है जिसमें कोई भी पक्ष, इंग्लैण्ड का राष्ट्रिक या निवासी नहीं है या कोई कम्पनी जिसका प्रबंधन इंग्लैंड में नहीं है। इस बात को नोट करना भी महत्वपूर्ण है कि इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 68 में उपबंधित मध्यक्षेप के क्षेत्र में धारा 68(2)(क) से (झ) तक में उपबंधित "गम्भीर अनियमितता" के आधारों पर व्यापक मध्यक्षेप की व्यवस्था भी सम्मिलित है और वास्तव में ये आधार अन्तर्राष्ट्रीय तथा देशी दोनों प्रकार के माध्यस्थमों के लिए लागू होंगे। इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 4 की अनुसूची एक में आज्ञापक उपबंधों का निर्देश है जिनको करार से बाहर नहीं निकाला जा सकता। अनुसूची एक में अन्य के साथ-साथ गम्भीर अनियमितताओं के बारे में धारा 67 और 68 भी सम्मिलित है। दूसरे शब्दों में अन्तर्राष्ट्रीय तथा देशी माध्यस्थमों में अनसिट्राल मॉडल की तुलना में इंग्लैंड में 1996 के अधिनियम के पश्चात् न्यायालयों का मध्यक्षेप बढ़ता जा रहा है। व्यापार तथा उद्योग विभाग (ब्रिटेन) ने 30.01.1997 को निर्णय किया कि देशी माध्यस्थम् के उद्देश्य से संशोधनों से संबंधित भाग प्रवृत नहीं होगा। निगमित तथा उपभोक्ता कार्य मंत्री जॉन टैलर के निम्नलिखित कथन से उद्धरण दिया गया है:

> "....मैंने यह निर्णय भी किया है कि सभी माध्यस्थमों के बारे में, चाहे देशी हों या अन्तर्राष्ट्रीय, एक समान रूप में ही कार्यवाही की जाएगी...." (देखें माध्यस्थम् पर रसैल, 1997, पृष्ठ 41)

बैल्जियम, स्विस तथा इटली की माध्यस्थम् विधियों में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए पृथक और विशिष्ट उपबंध किए गए हैं जिनमें न्यायालयों के न्यूनतम मध्यक्षेप की अनुमति है (देखें फोकलाई तथा अन्य, अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्, 1999 पृष्ठ 54, पैरा 105)। अतः इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या देशी माध्यस्थमों के मामलों में पंचाट को चुनौती देने के लिए कतिपय अन्य अतिरिक्त आधार जोड़े जाने की आवश्यकता है।

कुछ देशों ने अनसिट्राल मॉडल को उसके मूल रूप में स्वीकार कर लिया है जबकि कुछ देशों ने इसे कुछ परिवर्तनों के साथ स्वीकार किया है। कुछ अन्य देशों ने, मॉडल को स्वीकारते हुए, 1996 के इंग्लिश अधिनियम के कतिपय उपबंधों को सम्मिलित कर लिया है। दक्षिण अफ्रीका के विधि आयोग की नवीनतम रिपोर्ट में इन अन्तरों को रिपोर्ट के पैरा 2.4 में निम्नलिखित रूप में नोट किया है:-

> "सैन्डर्स की "यूनिटी एण्ड डाइवर्सिटी इन दी एडाप्शन ऑफ दी मॉडल लॉ (1995)" आर्बिट्रेशन इन्टरनेशनल (यहां इसके पश्चात् सैन्डर्स के रूप में विनिर्दिष्ट) पृष्ठ 2-3 पर निम्नलिखित देशों या राज्यों की सूची दी गई है जिन्होंने मॉडल विधि को स्वीकार कर लिया है। कनाडा में 1986 में (संघीय तथा प्रान्तीय दोनों स्तरों पर-प्रान्तों में क्यूबैक एक अपवाद है, जहां यह केवल अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए लागू होता है), साईप्रस में 1987 में, बैल्जियम और नाईजीरिया में 1988 में; आस्ट्रेलिया (संघीय स्तर पर, केवल अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए) और हांगकांग में 1989 में, स्काटलैण्ड में 1990 में, पेरू 1992 में, बरमूडा, रूस संघ, मैक्सिको तथा ट्यूनिशिया में 1993 में, इजिप्ट तथा ओमान, 1994, सैन्डर्स ने संयुक्त राज्य अमरीका के कैलीफोर्निया, फ्लोरिडा तथा टैक्सास सहित आठ राज्यों की सूची भी दी है जिन्होंने मॉडल विधि को स्वीकार कर लिया है। तथापि, जबकि कनेक्टीकट में पूर्णतया मॉडल विधि को स्वीकार कर लिया गया है (सैन्डर्स 3) परन्तु फलोरिडा अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् अधिनियम पर की गई टिप्पणी से पता चलता है (देखे स्यूयेट सी एम "यूनाइटेड स्टेट्स: फ्लोरिडा इन्टरनेशनल आर्बिट्रेशन एक्ट प्रस्तावना टिप्पण (1987) 26 आई एल एम 949, ए 960 एम 13) कि फ्लोरिडा विधि तथा मॉडल विधि में दार्शनिक तथा पाठीय अन्तर हैं। सिंगापुर ने इसे 1994 में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए स्वीकार किया है। पश्चिमी यूरोप के प्रमुख औद्योगिक देशों में से अभी तक केवल जर्मनी ने ही मॉडल विधि स्वीकार की है। (देखें न्यू जर्मन आर्बिट्रेशन लॉ, जो जर्मन सिविल प्रक्रिया संहिता की दसवीं पुस्तक है, जो 1 जनवरी, 1998 से प्रारम्भ हुई। इसका अंग्रेजी अनुवाद 1998 में प्रकाशित हुआ 14 आर्बिट्रेशन इन्टरनेशनल 1-18)। नए जर्मन माध्यस्थम् अधिनियम में न्यूनतम परिवर्तनों के साथ मॉडल विधि को ही स्वीकार किया गया है और यह देशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के माध्यस्थमों के लिए लागू होता है (देखें एस 1025 एण्ड वांकशील के एवं "एन इन्ट्रोडक्शन टू दी न्यू जर्मन आर्बिट्रेशन एक्ट बेसड् ऑन अनसिट्राल मॉडल लॉ" (1998) 14 आर्बिट्रेशन इंटरनेशनल 19 पृष्ठ 22-23)। न्यूजीलैण्ड ने भी देशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के माध्यस्थमों के लिए मॉडल विधि स्वीकार कर ली है।

(देखें 1996 का माध्यस्थम् अधिनियम, जो जुलाई 1997 को प्रवृत हुआ) (न्यूजीलैण्ड के विधान के बारे में रिचर्डसन एम द्वारा चर्चा की गई है "आर्बिट्रेशन इन्टरनेशनल 57–66 और आर्बिट्रेशन लॉ रिफार्मस: दी न्यूजीलैण्ड एक्सपीरिएंस-एन अपडेट" (1997) 13 आर्बिट्रेशन इन्टरनेशनल 229–31) 1995 का कैनियन आर्बिट्रेशन एक्ट 4 और 1996 का विक्टोरियन एक्ट 6, जैसाकि पाठ में निर्दिष्ट है, क्रमश: 1 जनवरी 1996 और 13 सितम्बर, 1996 को प्रभावी हुए।

इसका यह अर्थ नहीं है कि आयोग पूर्ण रूप से, या देशी माध्यस्थम् के मामलों में अनावश्यक रूप से न्यायालय के मध्यक्षेप का प्रस्ताव कर रहा है। वास्तव में आयोग का प्रस्ताव कतिपय मामलों में न्यायालय के मध्यक्षेप को अन्तर्राष्ट्रीय और देशी माध्यस्थम् दोनों ही प्रकार के मामलों के लिए मॉडल विधि या 1996 के अधिनियम में अनुभव्य सीमा से कम करना है। उसका प्रस्ताव है कि पंचाट के विरुद्ध न्यायालय के सामने आने वाले मामलों को प्राथमिक सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जाएगा और नोटिस से पूर्व ही इन्हें सीधे रद्द किया जा सकेगा। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 99 के समान उपबंध सम्मिलित करने का भी प्रस्ताव किया गया है कि पंचाटों पर बिना विचार किए ही, जब तक कि उनका पर्याप्त प्रतिकूल प्रभाव न दर्शाया गया हो, मध्यक्षेप नहीं किया जाएगा। पंचाट को रद्द करने के लिए आवेदन मात्र देने और उसके अनिर्णीत पड़े रहने के कारण पंचाट के प्रवर्तन को रोकने वाली धारा 36 द्वारा उत्पन्न बाधा को भी दूर करने का प्रस्ताव किया गया है। आवेदन देने मात्र से ही पंचाट पर स्वयं ही रोक नहीं लगनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, हमने प्रस्ताव किया है कि आपत्तियों के अनिपूर्ति रहने तक पंचाट को आंशिक या पूर्ण रूप से लागू करने कि लिए शर्तें लगाने का न्यायालय को अधिकार दिया जाए।

धारा 23, 24 और 82 में संशोधन करके और नई धारा 24क, 24ख, 29क और 37क अन्त:स्थापित करके माध्यस्थम् अधिकरण के समक्ष विलम्ब को पूर्णतया नियंत्रण में रखने के लिए भी प्रस्ताव किए जा रहे हैं। न्यायालयों द्वारा समय सीमा बढ़ाए जाने के अध्यधीन पंचाट पारित करने के लिए समय सीमा निर्धारित करने का भी प्रस्ताव है। तथापि, यह व्यवस्था भी की जाएगी कि न्यायालयों द्वारा आवेदन पर निर्णय दिए जाने तक, माध्यस्थम् का मामला चलता रहेगा। तीव्र गति से माध्यस्थम् पूरा करने के लिए अध्याय ग्यारह पुन:स्थापित किया गया है। 1996 के अधिनियम तथा पुराने 1946 के अधिनियम के अधीन माध्यस्थमों, आवेदनों तथा अपीलों की न्याय प्रक्रिया की गति को तेज करने के लिए संशोधनकारी अधिनियम में धारा 34 और 35 अन्त:स्थापित करने का प्रस्ताव है। हम इन उपबंधों को यहां इसके पश्चात् पैरा 1.8 में निर्दिष्ट करेंगे। ऐसी नहीं है कि प्रस्तावित संशोधनों से न्यायालय के मध्यक्षेप में वृद्धि होगी और उसके कारण माध्यस्थम् में विलम्ब होगा। दूसरी ओर, प्रस्तावित संशोधनों से लंबित पड़े तथा भविष्य के माध्यस्थमों की गति तीव्र होगी।

1.7 आयोग के ध्यान में लाए गए अन्य पहलू

1996 के अधिनियम के कार्यकरण में बहुत से अन्य पहलुओं की ओर ध्यान दिलाया गया है इनमें से कुछ पहलुओं का उल्लेख इस स्तर पर संक्षेप में यह प्रमाणित करने के लिए किया जा सकता है कि आयोग ने अधिनियम में संशोधन करने क्योंकर उपयुक्त समझा है। यह ठीक है कि आयोग द्वारा इन सभी सुझावों को स्वीकार नहीं किया गया है।

यह बताया गया है कि बहुत से मामलों में भारतीय पक्षकारों को माध्यस्थम् कार्यवाहियों के आरम्भ होने से पूर्व तथा अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् पंचाटों के मामले में पंचाट के पश्चात या ऐसे पंचाटों के पारित होने के पश्चात जहां माध्यस्थम् स्थल भारत से बाहर है, तुरन्त अन्तरिम राहत मांगने के अधिकार से वंचित रखा गया है क्योंकि धारा 2(2) अधिनियम के भाग I को भारत में माध्यस्थम् तक ही सीमित रखती है इससे भारतीय पक्षकारों के हितों पर गम्भीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है जो भारतीय न्यायालयों से, अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् की प्रक्रिया आरंभ होने से पूर्व या प्रक्रियाओं के जारी रहते या उनके पूरे हो जाने पर भी, धारा 9 के अधीन कोई अन्तरिम आदेश प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

बहुत से मामलों में, दिन के समाप्त होने पर पंचाट मात्र पेपर पर ही रह जाता है। इस विसंगति के कारण उच्च न्यायालयों ने विरोधाभासपूर्ण विनिर्णय दिए हैं। वास्तव में उन सभी देशों ने, जिन्होंने अनसिट्राल मॉडल स्वीकार किए है, और जहां माध्यस्थम् स्थल उस देश से बाहर है, अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् के लिए मॉडल विधि के अनुच्छेद 8,9, 35 और 36 लागू किए हैं। जब 1996 का अधिनियम पारित किया गया था तब इस विषय पर ध्यान नहीं गया था।

यह बताया गया है कि, क्योंकि नए अधिनियम के अधीन पंचाट को न्यायालय में दाखिल करना आवश्यक नहीं है, पंचाट में फेरबदल करने का अवसर बना रहेगा। पंचाट की विषय-वस्तु का कोई सार्वजनिक रिकार्ड नहीं होता है। यह बात स्पष्ट है कि नए अधिनियम के अधीन स्टाम्प तथा रजिस्ट्रीकरण विधियों का सरलतापूर्वक उल्लंघन किया जा सकता है। अधिकारिता संबंधी मामलों का विनिर्णय किस स्तर पर किया जाए तथा मध्यस्थों की नियुक्ति के संबंध में भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा उसके द्वारा निर्देशिति या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट, जैसा भी हो, द्वारा दिए गए आदेशों को प्रशासनिक आदेश माना जाए या न्यायिक आदेश, के संबंध में विभिन्न प्रकार के विचार व्यक्त किए गए हैं। धारा 11 के अधीन आदेशों को प्रशासनिक मानते हुए उच्च न्यायालयों में बहुत सी रिट याचिकाएं दायर की गई जिनमें अधिकारिता संबंधी प्रश्न उठाए गए और उसके परिणामस्वरूप माध्यस्थम् प्रक्रियाओं के लिए रोकादेश प्राप्त किए गए।

यह भी बताया गया कि, अधिनियम की धारा 8 से "जब तक करार अकृत और शून्य, अप्रवर्तनशील, और प्रवर्तन योग्य नहीं पाया जाता है" शब्दों को निकालने से यह अधिनियम मॉडल विधि से थोड़ा भिन्न हो गया है। यह भी बताया गया है कि जहां मध्यस्थ धारा 13 के अधीन पक्षपात या निरर्हता के संबंध में की गई आपत्तियों या धारा 16 के अधीन अन्तरिम निर्णय के रूप में अधिकारिता संबंधी आपत्तियों को रद्द कर देता है, वहां अपील करने का तत्काल अधिकार नहीं है जैसाकि मॉडल विधि के अनुच्छेद 13 और 16 में प्रदान किया गया है और पक्षकारों को पंचाट घोषित किए जाने तक माध्यस्थम् प्रक्रियाओं में फंसे रहना होता है। इस प्रकार मध्यस्थों तथा अधिवक्ताओं की फीस के रूप में उनके पैसे की बर्बादी होती है। यहां भी मॉडल विधि से भिन्नता पाई जाती है। पंचाट के पश्चात् भी, पक्षपात या अधिकारिता के तर्क को रद्द करने संबंधी आपत्ति को धारा 34 के अधीन विनिर्दिष्ट आधारों की सूची में सम्मिलित नहीं किया गया है। यह भी बताया गया है कि, जहां पंचाट किसी ऐसे विवाद के बारे में दिया जाता है जो मध्यस्थम् अधिकारिता के लिए अवधारित या प्रस्तुत करने संबंधी निबंधकों या मामलों के अन्तर्गत नहीं आता है वहां जबकि अपील करने के लिए अनुमति दी जाती है, ऐसे मामलों को आधार अपवंधित नहीं है जहां मध्यस्थ, धारा 33(4) के अधीन पक्षकारों के तर्कों से निश्चित रूप से उत्पन्न किसी मामले के लिए दिए गए आवेदन पर निर्णय नहीं करता है या करने से इंकार कर देता है। यह बताया गया है कि धारा 33(1) के अधीन दी गई प्रक्रिया को अपनाने के पश्चात यदि गणित या टाईप संबंधी त्रुटियों को ठीक नहीं किया जाता है, तब कोई समाधान नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि यदि धारा 31(3) के उपरान्त भी कोई कारण नहीं बताया जाता है तब भी कोई समाधान नहीं हो सकता यद्यपि, धारा 28द के अधीन मूल विधि का पालन करना होता है, यदि पंचाट में प्रत्यक्षत: कोई विधि संबंधी त्रुटि है तो धारा 34 में इसके लिए कोई उपबंध नहीं किया गया है। यह ठीक है कि गोष्ठियों में भाग लेने वाले कतिपय सदस्यों ने सुझाव दिया था कि धारा 34 में माध्यस्थम् कार्यवाहियों के कुसंचालन को भी चुनौती के एक आधार के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

यह प्रस्ताव भी किया गया है कि माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 21 के समान उपबंध किया जाना भी आवश्यक है ताकि कभी भी उच्च न्यायालय में या उच्चतम न्यायालय में किसी वाद या कार्यवाही या अपील के लम्बित रहने के दौरान पक्षकार माध्यस्थम् के लिए जाने हेतु सहमत हो सकें। ऐसे मामलों में विशिष्ट उपबंध किए जाने भी आवश्यक हैं ताकि पंचाट के प्रति आपत्तियों को जिला न्यायालय में दायर किए जाने के बजाए उसी न्यायालय में दायर किया जा सके जिसने मामला माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किया था। उदाहरण के लिए, यदि मुकदमे के 20 वर्ष पश्चात् उच्चतम न्यायालय, पक्षकारों की सहमति से, मामले को माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट करता है तो उच्चतम न्यायालय के द्वारा आनन्दगजपति राजू बनाम पी॰वी॰जी॰ राजू (2000)(9) सैक्को॰ 539 ए॰आई॰आर॰ 2000 सुप्को॰ (188) मामले में हाल ही में दिए गए निर्णय के अनुसार आपत्तियों को अब जिला न्यायालय में ही दायर करना होगा जबकि 1940 के अधिनियम के अधीन इन्हें उच्चतम न्यायालय में दायर किया जा सकता है क्योंकि उसी न्यायालय ने मामले को माध्यस्थम् के लिए निर्दिष्ट किया था।

यह भी बताया गया है कि वर्ष 1997 में भारतीय संविदा अधिनियम, 1972 में किए गए संशोधन के कारण धारा 43(3) में संशोधन किया जाना है। भारतीय संविदा अधिनियम के संशोधन से, परिसीमा अधिनियम, 1963 में निर्धारित समय सीमा समाप्त होने से पूर्व, उपचार प्राप्त करने के अधिकार को समाप्त कर देने वाला उपबंध निरर्थक हो गया है और कठिनाईयों को दूर करने के लिए कोई आवश्यकता नहीं रह गई है।

यह भी बताया गया है कि इस संबंध में भी विनिर्णयों में विरोध है कि 1996 के अधिनियम की धारा 11(4) और (5) निश्चित समय सीमा आज्ञापक है अथवा नहीं और क्या जब विरोधी पक्ष निर्धारित अवधि के भीतर कोई मध्यस्थ नियुक्त नहीं करता है तब पक्षकार ऐसी नियुक्ति के लिए धारा 11 के अधीन, न्यायालय में नहीं जा सकता है। यह भी बताया गया है कि धारा 11(6)क कोई समय सीमा निर्धारित नहीं करती है।

बताया गया है कि धारा 9 के अधीन कोई पक्षकार माध्यस्थम् के लिए कार्यवाही करने से पूर्व अन्तरिम आदेश प्राप्त कर सकता है और आदेश प्राप्त करने के पश्चात् वह मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए कोई कदम ही मध्यस्थ नहीं उठाएगा। यह भी कहा गया है कि धारा 9 का प्रारूप ठीक नहीं है इसे ठीक से प्रारूपित करने की आवश्यकता है।

यह आग्रह किया गया है कि करार के खंड जिसमें पक्षकार अपना या अपने किसी नियोक्ता या सलाहकार या परामर्शदाता को मध्यस्थ नियुक्त कराने का अधिकार देते हैं उनसे, पक्षकारों के साथ समान व्यवहार करने के बारे में 1996 के अधिनियम की धारा 18 का उल्लंघन होता है।

यह सुझाव दिया गया था कि मध्यस्थों को और अधिक शक्तियां दी जानी चाहिए ताकि उनके अन्तरिम आदेशों तथा सुनवाई की तिथियों का सम्यक रूप से सम्मान किया जा सके। यह भी बताया गया है कि अनुसूची द्वारा "तीव्रगति वाली प्रक्रिया" का प्रस्ताव किया जा सकता है। कहा गया है कि धारा 42 भ्रमात्मक है और इसके विस्तृत प्रारूपण की आवश्यकता है। माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा धारा 13 और धारा 16 के अधीन पारित आदेश, जहां कतिपय अधिकारिता संबंधी तर्क अधिकरण द्वारा रद्द किए गए हैं, के विरुद्ध अपील पर कार्यवाही करने के लिए धारा 37 में बहुत से महत्वपूर्ण संशोधनों का सुझाव दिया गया है। हम इन पहलुओं का उल्लेख केवल आयोग के विचारार्थ उसके सम्मुख प्रस्तुत किए गए दोनों को बताने के उद्देश्य से कर रहे हैं।

अतः आयोग द्वारा 1996 के अधिनियम की पुनरीक्षा आरम्भ किया जाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है। आयोग ने एक परामर्श-पत्र तैयार किया है (उपाबंध -दो) और मुम्बई और दिल्ली में फरवरी और मार्च, 2001 में महीनों में दो गोष्ठियां आयोजित की हैं तथा पत्र को वैबसाइट पर देकर इसके विषय में काफी प्रचार किया है। सेवानिवृत न्यायाधीशों तथा प्रमुख अधिवक्ताओं को गोष्ठियों में आमंत्रित किया गया। इनमें से बहुत से न्यायाधीशों तथा अधिवक्ताओं ने गोष्ठियों में भाग लिया और अपने विचारों के लिखित टिप्पण प्रस्तुत किए। इन गोष्ठियों के दौरान विभिन्न प्रस्तावों पर सहमति बनी तथा बहुत से प्रस्तावों पर मतभेद रहे। ऐसे प्रस्तावों पर भी विस्तार से चर्चा हुई जो परामर्श-पत्र में अन्तर्विष्ट नहीं थे। मई, 2001 में, आयोग को प्रतिक्रियाएं तथा नए प्रस्ताव प्राप्त हुए।

उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए आयोग ने प्रस्तावों की फिर से जांच की और नए प्रस्तावों पर भी विचार किया। आयोग ने इस रिपोर्ट में, विभिन्न प्रतिक्रियाओं पर भी, इन्हें स्वीकार करते हुए या नकारते हुए, विचार किया है।

आयोग ने कुछ प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया है और अधिकांश प्रस्तावों को अस्वीकार कर दिया है। वास्तव में परामर्श-पत्र (उपबंध-दो) में दिए गए विभिन्न प्रस्तावों को आयोग ने इस रिपोर्ट में स्वीकार नहीं किया है। आयोग ने 1940 के अधिनियम के बारे में कोई निश्चित धारणा बनाने के प्रति दी गई चेतावनी को ध्यान में रखा है परन्तु उसने अपने को ऐसी अन्य प्रकार की धारणाओं से भी कि कोई संशोधन ही नहीं किया जाना चाहिए दूर रखा है।

1.8 1996 के अधिनियम तथा 1940 के अधिनियम के अधीन लम्बित तथा भविष्य के माध्यस्थमों, आवेदनों तथा अपीलों को तीव्रगति से निपटाने के लिए प्रमुख सुधार

उच्चतम न्यायालय ने देश में माध्यस्थम् प्रक्रिया में अत्यधिक विलम्ब होने पर बार-बार निराशा व्यक्त की है। हम उक्त टिप्पणियों को पहले ही निर्दिष्ट कर चुके हैं। अतः आयोग ने यह निर्णय किया है कि माध्यस्थम् अधिकरण तथा न्यायालयों दोनों के समक्ष समस्त माध्यस्थम् कार्यवाहियों को तीव्रगति से चलाने के लिए कतिपय गंभीर सुधार किए जाने चाहिए ऐसी कार्यवाहियां चाहे 1996 के अधीन लंबित हों चाहे 1940 के अधिनियम के अधीन।

1996 के अधिनियम की धारा 5 में "तत्समय प्रवृत किसी अन्य विधि" शब्दों की व्याख्या करते हुए एक स्पष्टीकरण अन्तःस्थापित करने का प्रस्ताव है। स्पष्टीकरण में, सिविल प्रक्रिया संहिता (1908), उच्च न्यायालय में आन्तरिक अपीलों के लिए उपबंध करने वाली कोई विधि (पेटेंट लैटर्स या उच्च न्यायालय अधिनियम जैसी) जो किसी न्यायिक प्राधिकरण द्वारा पारित आदेशों में किसी अन्य न्यायिक प्राधिकरण का हस्तक्षेप करने का उपबंध करती है (उदाहरणार्थ उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अधीन अधिकरण), सम्मिलित की जाएगी। स्पष्टीकरण का प्रभाव यह है कि उपर्युक्त सभी विधियों के अधीन हस्तक्षेप करना वर्जित होगा।

जहां तक माध्यस्थम् अधिकरण के समक्ष कार्यवाही का संबंध है, माध्यस्थम अधिकरण को अभिवचन फाईल करने और साक्ष्य अभिलिखित करने की (शपथ-पत्र साक्ष्य सहित) के लिए समय सीमा निर्धारित करने की अनुमति प्रदान करके 1996 के अधिनियम की धारा 23 और 24 में, इन धाराओं से उन खण्डों को निकाल कर जो पक्षकारों को प्रक्रिया या समय सीमा निर्धारित करने की अनुमति देते हैं, संशोधन करने का प्रस्ताव किया गया है। धारा 23 और 24 के अधीन प्रस्ताव अभिवचन फाइल करने तथा साक्ष्य अभिलिखित करने के लिए प्रक्रिया और समय सीमा निर्धारित करने हेतु, जो पक्षकारों या उनका प्रतिविधित्व करने वालों के लिए आध्यकारी होगी, माध्यस्थम् अधिकरण को पूर्ण शक्ति प्रदान की गई है। इसके अतिरिक्त धारा 24क के अधीन माध्यस्थम् अधिकरण को उसके आदेशों का पालन न करने के लिए गंभीर कार्यवाही करने की शक्ति प्रदान की गई है तथा 24ख के अधीन पक्षकार या माध्यस्थम् अधिकरण आदेशों के क्रियान्वयन के लिए न्यायालय में जा सकते हैं और ऐसे आदेशों को क्रियान्वित कराने के लिए कार्यवाही करने हेतु न्यायालय को व्यापक शक्तियां प्रदान की गई हैं। धारा 23, 24, 24क और 24ख के उपर्युक्त उपबंधों को, 1996 के नए अधिनियम के अधीन न केवल भविष्य की कार्यवाहियों के लिए लागू करने का प्रस्ताव है अपितु अधिनियम के अधीन तथा 1940 के अधिनियम के अधीन मध्यस्थों के समक्ष लम्बित पड़ी कार्यवाहियों पर भी लागू करने का विचार है।

इसके अतिरिक्त 1996 के अधिनियम के अधीन भविष्य के माध्यस्थमों के लिए मध्यस्थ पंचाट पारित करने के लिए एक वर्ष का समय लेंगे और इसके पश्चात पक्षकारों के सहमत होने पर एक वर्ष से अनधिक का अतिरिक्त समय ले सकेंगे। इसके पश्चात् यदि पंचाट नहीं पारित होता है, पक्षकारों को समय बढ़ाने के लिए न्यायालय में जाना होगा और यदि पक्षकार इस आशय का आवेदन नहीं करते हैं, मध्यस्थ स्वयं ऐसा कर सकते है। जब तक आवेदन नहीं किया जाता है माध्यस्थम् कार्यवाही निलंबित रहती है, परन्तु न्यायालय को एक बार आवेदन किए जाने के पश्चात माध्यस्थम् कार्यवाहियां चलती रहेंगी और इन्हें न्यायालय द्वारा रोका नहीं जाएगा। दूसरी ओर, न्यायालय एक माह के भीतर समय सूची निर्धारित करते हुए आदेश पारित करेगा या वह विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए जिनके कारण विलम्ब हुआ है, और फीस आदि पर व्यय की गई राशि को भी ध्यान में रखते हुए, खर्चे से संबंधी आदेश पारित कर सकता है। न्यायालय, पंचाट दिए जाने तक समय और प्रक्रिया निर्धारित करने संबंधी आदेश पारित करता रहेगा। जैसाकि संशोधनकारी अधिनियम की धारा 33 में उपबंधित है, यही प्रक्रिया 1996 के अधिनियम के अधीन तीन वर्ष से भी अधिक समय से लंबित पड़े माध्यस्थम् के मामलों के लिए भी अपनाई जाएगी। धारा 37(1) के अधीन पंचाटों तथा अपीलों को अपास्त करने के लिए धारा 34(1) के अधीन दिए गए आवेदनों को 6 माह के भीतर निपटाया जाएगा और अपीलों को धारा 37(2) के अधीन संशोधनकारी अधिनियम लागू होने की तिथि से तीन माह की अवधि के भीतर निपटाया जाएगा। भविष्य में दिए जाने वाले आवेदनों तथा की जाने वाली अपीलों के लिए भी इसी प्रकार की प्रक्रिया की अवधारण की गई है।

1940 के अधिनियम के अधीन लंबित कार्यवाहियों को तीव्रगति से निपटने के उद्देश्य से संशोधनकारी अधिनियम की धारा 34 में कार्यवाही पूरी करने के लिए एक वर्ष का समय हेतु पृथक उपबंध करने का प्रस्ताव है। ऐसा न किए जाने पर प्रस्तावित धारा 29क में दर्शायी गयी प्रक्रिया लागू होगी जिसमें पंचाट दिए जाने तक समय सूची न्यायालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।

जहां तक, पंचाट देना न्यायालय का नियम है, या पुराने अधिनियम की धारा 39 के अधीन पंचाट और अपीलों के अपास्त करने के बारे में 1940 के अधिनियम के अधीन दिए गए आवेदनों का संबंध है, संशोधनकारी अधिनियम की धारा 34 के अधीन इसका निपटारा संशोधनकारी अधिनियम के लागू होने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर किया जाएगा। पुराने अधिनियम से उत्पन्न कार्यवाहियों में अन्तरिम आदेशों के विरुद्ध लंबित अपीलों/पुनरीक्षणों को संशोधनकारी अधिनियम के लागू होने की तारीख से छः माह की अवधि के भीतर निपटाया जाएगा।

आयोग को आशा है कि धारा 23 और 24 के प्रस्तावित संशोधन में अन्तर्विष्ट सुधारों में मूल अधिनियम में धारा 24क, 24ख और 29 अन्तःस्थापित करके तथा संशोधनकारी अधिनियम की धारा 33 और 34 से माध्यस्थमों से संबंधित सभी पक्षों - अर्थात् पक्षकार, उनके प्रतिनिधि, मध्यस्थों तथा न्यायालयों, के दृष्टिकोणों में सराहनीय परिवर्तन आएगा और यह कि इसके पश्चात 1996 के अधिनियम के अधीन न केवल माध्यस्थमों और न्यायालयों की कार्यवाहियों को, अपितु 1940 के अधिनियम के अधीन अभी तक अनिर्णीत पड़े मामलों

को भी, प्रस्तावित संशोधनकारी अधिनियम लागू होने पर एक वर्ष के भीतर, तेजी से निपटाया जा सकेगा और भारतीय माध्यस्थम् प्रणाली पर लगा दाग मिट जाएगा।

इस बात का बहुत ध्यान रखा गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् से संबंधित विधि में कोई परिवर्तन न हो।

अध्याय–दो

संशोधनों के लिए प्रस्तावों पर चर्चा और आयोग की सिफारिशें

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के कार्यकरण में कतिपय खामियों के संबंध में प्राप्त अभ्यावेदनों के पश्चात विधि आयोग ने इस विषय पर एक परामर्शी पत्र प्रकाशित कराया और इसे अधिवक्ताओं, न्यायाधीशों और शिक्षाविदों को उनके विचार जानने हेतु, परिचालित किया। आयोग ने अधिनियम के उपबंधों के कार्यकरण पर चर्चा करने के लिए विभिन्न स्थानों पर गोष्ठियां भी आयोजित की।। अभ्यावेदनों, परामर्शी-पत्र पर प्राप्त हुई प्रतिक्रियाओं, गोष्ठियों में हुई चर्चा तथा इस क्षेत्र के विशेषज्ञों के विचारों की दृष्टि से आयोग ने माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (यहां इसके पश्चात मूल अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) के विभिन्न उपबंधों पर विचार किया। आयोग ने परामर्शी-पत्र के बहुत से सुझावों को अन्तिम रूप से निष्पादित नहीं किया है। आयोग ने इस अध्याय में धारा वार विभिन्न मामलों पर विचार किया है।

2.1.1 परिभाषाएं - धारा 2

धारा 2 (1) (ङ) का पाठ इस प्रकार है:

"न्यायालय" से किसी जिले में आरम्भिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भी है, जो माध्यस्थम की विषयवस्तु होने वाले प्रश्नों का यदि वे वाद की विषय वस्तु होते तो, विनिश्चय करने की अधिकारिता रखता, किन्तु ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय या कोई लघुवाद न्यायालय इसके अन्तर्गत नहीं आता है।

इस उपबंध में "न्यायालय" को जिले में आरम्भिक अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय के रूप में परिभाषित किया गया है और इसमें ऐसे उच्च न्यायालय को भी सम्मिलित किया गया है जहां उच्च न्यायालय की आरम्भिक अधिकारिता है।

जिन धाराओं में न्यायालय शब्द का प्रयोग किया गया है वे धाराएं इस प्रकार हैं। धारा 9 (अंतरिम उपाय), धारा 14 (2) (मध्यस्थों के कार्य करने की अक्षमता), धारा 34 (3) (पंचाट पर आपत्ति फाइल करना), धारा 36 (पंचाट का प्रवर्तन), धारा 37 (अपील), धारा (2) और (4) (आपत्ति करने का अधिकार का अधित्यजन) धारा 42 (अधिकारिता) और धारा 43 (परिसीमाएं)।

"न्यायिक प्राधिकार" पद का प्रयोग धारा 5 और 8 में किया गया है। यहां इस पद का अर्थ जिला न्यायालय या जिला न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय या आरंभिक अधिकारिता वाले उच्च न्यायालय से भी है। अर्थ का जो भी आशय हो, न्यायिक प्राधिकार के अर्थ में न्यायालय सम्मिलित है।

यह प्रस्ताव किया गया है कि धारा 2 (1) (ङ) में किसी शहर में सिटी सिविल न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश का न्यायालय भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। अनावश्यक विवाद से बचने के लिए बम्बई में आयोजित गोष्ठी में दिया गया यह सुझाव स्वीकार कर लिया गया है।

इस प्रकार के संशोधन के पश्चात धारा 2 (1) (ङ) का पाठ इस प्रकार होगा:

(ङ) न्यायालय से किसी जिले में आरम्भिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय, किसी शहर में आरंभिक अधिकारिता वाले शहर सिविल न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश का न्यायालय और इसके अन्तर्गत अपनी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय है जो माध्यस्थम् की उस विषयवस्तु के भागरूप प्रश्नों का, यदि वे किसी वाद की विषयवस्तु रहे हैं विनिश्चय करने का अधिकार रखता हो, किंतु इसके अन्तर्गत ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय या शहर के सिविल न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश के न्यायालय या किसी लघुवाद न्यायालय से अवर श्रेणी का कोई सिविल न्यायालय नहीं है।

हाल ही में वैस्टर्न शिपिंग कारपोरेशन बनाम क्ले हैरम लिमिटेड (फूके॰) (1997) (3) गुज॰ एल॰आर॰ 19857 मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अतिरिक्त जिलाधीश, 1996 के अधिनियम की धारा 8 के अधीन किसी आवेदन पर कार्यवाही नहीं कर सकता परन्तु "जिलाधीश" शब्द में संयुक्त जिलाधीश भी सम्मिलित है। अतः इस आशय का उपबंध करने का प्रस्ताव किया गया है कि किसी जिले का प्रधान न्यायालय या किसी शहर में शहर सिविल न्यायालय का प्रधान न्यायाधीश, यथास्थिति, प्रधान न्यायालयों में मामलों की बढ़ती संख्या को कम कर सकें। इससे मामलों को अतिरिक्त न्यायालय को स्थानान्तरित करने में सहायता मिलेगी जिन्हें विभिन्न धाराओं अर्थात धारा 8, प्रस्तावित धारा 8क, 17क, 29क तथा 39 आदि के अधीन शक्तियां यथा अधिकारिता प्राप्त होगी।

2.1.2 क प्रधान न्यायालय से मामलों समन्वित अधिकारिता वाले न्यायालय में स्थानान्तरित करने के लिए समर्थ बनाने वाली धारा का प्रस्तावित परिवर्धन का पाठ निम्नलिखित होगाः—

> (10) किसी जिले में आरम्भिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय या प्रधान न्यायाधीश का न्यायालय, किसी शहर में आरम्भिक अधिकारिता का उपयोग करने वाले शहर सिविल न्यायालय यथास्थिति, अपने समक्ष लम्बित, अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही से संबंधित किसी भी मामले को, यथास्थिति, जिले या शहर में, निर्णय के लिए समय समय पर किसी भी समन्वित अधिकारिता वाले न्यायालय को स्थानान्तरित कर सकेगा।

2.1.3 "देशी माध्यस्थम्" और "अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम्" और "अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्" की व्याप्ति को परिभाषित करने की आवश्यकता

अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थमों का प्रयोग 1996 के अधिनियम की धारा 1(2) और 11 (9), 11 (12)(क) और धारा 28 (1) (क) और (ख) में किया गया है।

धारा 2(1) (च) में, अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् को परिभाषित किया गया है, इसमें यह अपेक्षा की गई है कि पक्षकारों में से कम से कम एक पक्षकार भारतवर्ष से भिन्न किसी अन्य देश का नागरिक या आभ्यासिक तौर पर निवासी हो या एक निगमित निकाय जिसे भारत से भिन्न किसी अन्य देश में निगमित किया गया हो, एक कम्पनी या एक संगम या व्यष्टियों का कोई निकाय, जिसका केन्द्रीय प्रबंध और नियंत्रण भारतवर्ष से भिन्न किसी देश में या विदेशी सरकार द्वारा किया जाता है।

यहां अधिनियम में मॉडल विधि से कुछ अन्तर है। मॉडल विधि में तीन में से, अर्थात पक्षकार या माध्यस्थम् का स्थान या विषय-वस्तु, एक पर बल दिया गया है। 1996 के अधिनियम में पक्षकार, निवास और राष्ट्रीयता पर बल दिया गया है। परन्तु आयोग का विचार है कि धारा 2(1) (च) में दी गई परिभाषा को इस भाग में संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है। वाणिज्यिक शब्द अधिनियम के भाग एक में धारा 2(1) (च) में और भाग दो में (न्यूयार्क कन्वेंशन के बारे में) धारा 44 में आया है। धारा 44 में पंचाटों के एक सीमित वर्ग के लिए विदेशी पंचाटों का प्रयोग किया गया है और एक यह शर्त रखी गई है कि पंचाट किसी ऐसे एक व्यतिकारी राज्य में दिया गया हो जो केन्द्रीय सरकार द्वारा विदेशी पंचाट (मान्यता और प्रवर्तन) अधिनियम, 1961 के अधीन अधिसूचित किए गए हों। भारत ने इस कन्वेंशन पर दो मुद्दों को छोड़कर हस्ताक्षर किए है।

इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि ऐसे "अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् पंचाट" है जो भाग दो के अन्तर्गत नहीं आते हैं। संभवतया, इसका कारण यह हो सकता है कि विवाद वाणिज्यिक नहीं है या करार लिखित में नहीं है या पंचाट किसी व्यतिकारी राज्य द्वारा नहीं दिया गया है। अधिनियम के भाग एक में वे पंचाट आते हैं जहां सभी पक्ष भारतीय नागरिक हैं और पंचाट भारत में दिया गया हो और अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक पंचाट के मामले में भी अर्थात जहां कम से कम एक पक्ष भारतीय नागरिक हो और माध्यस्थम् का स्थान भारत हो। इन दोनों प्रकार के पंचाटों को धारा 2(ज) के अधीन देशी पंचाट कहा गया है। अधिनियम में मोटे तौर पर इसी परिभाषिक नाम का प्रयोग किया गया है।

यह सुझाव दिया गया है कि वाणिज्यिक शब्द को निकाला जा सकता है ताकि अधिनियम ऐसे सभी अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों पर चाहे वाणिज्यिक हो अथवा नहीं, जिनका माध्यस्थम् स्थान भारत में है, लागू हो सके। इस सुझाव में सार है। सर्वप्रथम, जैसाकि न्यूयार्क कन्वेंशन से संबंधित निर्णय जनित विधि से कई बार यह प्रकट हुआ है कि प्रश्न यह उठता है कि क्या माध्यस्थम् वाणिज्यिक स्वरूप का है। इससे अनावश्यक रूप से मुकदमेबाजी होती है। दूसरे अधिनियम के भाग-एक की धारा 2(1)(च) से अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप का माध्यस्थम्

जो वाणिज्यिक नहीं है शब्द निकालने का कोई कारण नहीं है। परामर्शी–पत्र पर चर्चा के समय इस संबंध में कोई विवाद भी नहीं था। भारतीय वाणिज्यिक मंडल, बम्बई ने, वास्तव में, उच्च न्यायालयों के सेवानिवृत न्यायाधीशों तथा कुछ अन्य विशेषज्ञों के एक दल द्वारा तैयार की गई एक रिपोर्ट के माध्यम से वाणिज्यिक शब्द निकालने का सुझाव दिया था।

वास्तव में, न्यूयार्क कन्वेंशन को ध्यान में रखते हुए कुछ देशों ने वाणिज्यिक शब्द निकाल दिया है। फ्रांस की सरकार ने, जिसने 1959 में न्यूयार्क कन्वेंशन की पुष्टि की थी, संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव को लिखे अपने दिनांक 17.11.1989 के पत्र द्वारा इस संरक्षण को वापस ले लिया ताकि कन्वेंशन को विस्तृत क्षेत्र प्रदान किया जा सके। 121 देशों में से, जिन्होंने न्यूयार्क कन्वेंशन स्वीकार की थी, केवल एक तिहाई देशों ने 1999 तक वाणिज्यिक संरक्षण प्रदान किया है।

एक अन्य कारण और है जिसकी वजह से वाणिज्यिक शब्द को छोड़ दिया जाना चाहिए। 1985 की अनसिट्राल मॉडल विधि में भी, इसकी परिभाषा में मामलों का विस्तृत क्षेत्र सम्मिलित करके इसके भेद को मिटा दिया गया है जैसाकि अनुच्छेद 1(1) में परिभाषा के नीचे दिए गए पाद टिप्पण से स्पष्ट हो जाता है। इसमें कहा गया है "वाणिज्यिक" शब्द को, वाणिज्यिक स्वरूप से संबंधित सभी मामलों को इसके अन्तर्गत लेने के लिए इसे व्यापक अर्थ दिया जाना चाहिए जिसमें वस्तुओं या सेवाओं का प्रदाय या विनिमय संबंधी व्यापार संव्यवहार, वितरण करार, एजेन्सी, कारखानों, पट्टेदारी, निर्माण कार्य, परामर्शी इंजिनियरिंग, लाइसेंस देने, निवेश, वित्तपोषण, बैंकिंग, बीमा, दोहन करार या रियायत, संयुक्त उपक्रम या अन्य प्रकार के औद्योगिक या कारोबार सहयोग, विमान, पौत, रेल या सड़क से माल या यात्री लाना ले जाना भी शामिल होगा। मॉडल विधि के अनुच्छेद 1(1) के नीचे दिए गए पाद टिप्पण में कहा गया है कि उपर्युक्त विवरण को विस्तृत नहीं समझा जाना चाहिए।

दुर्भाग्यवश, 1996 के अधिनियम की धारा 2(1) (च) में अनसिट्राल मॉडल की विस्तृत परिभाषा का उल्लेख नहीं किया गया है यहां तक कि पाद टिप्पण में और स्पष्टीकरण में भी इसका कोई उल्लेख नहीं है।

अतः अधिनियम के भाग–एक को ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए, चाहे वे वाणिज्यिक हो अथवा नहीं, लागू करने का प्रस्ताव है जिसमें माध्यस्थम का स्थान भारत में है। इसका परिणाम यह हुआ है कि धारा 2(7) में अब ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय गैर–वाणिज्यिक पंचाट भी सम्मिलित होंगे जिनका माध्यस्थम स्थान भारत में है।

यह समझाने में कि देशी माध्यस्थम् क्या है, किसी भी प्रकार के भ्रम को दूर करने के उद्देश्य से देशी माध्यस्थम् को भारत में एक ऐसे माध्यस्थम् के रूप में परिभाषित करने का प्रस्ताव है जहां कोई भी पक्षकार भारत के अतिरिक्त किसी अन्य देश का नागरिक नहीं है। इस परिभाषा में ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् भी सम्मिलित है, चाहे वह वाणिज्यिक है अथवा नहीं, जिसका माध्यस्थम् स्थान भारत में है। "देशी माध्यस्थम्" और अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् पदों की परिभाषाओं को अधिनियम की धारा 2 में जोड़ने का प्रस्ताव है और "अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्" पद की धारा 2(1)(च) में दी गई वर्तमान परिभाषा अगले पैराग्राफ में प्रतिस्थापित करने का प्रस्ताव है। इन परिभाषाओं से धारा 2(2) और धारा 2(7) को बेहतर ढंग से समझने में सहायता मिलेगी।

मॉडल विधि का अनुच्छेद 1(3) में, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् की परिभाषा दी गई है, किसी देश में निगमित किसी ऐसी कम्पनी निर्दिष्ट नहीं है जिसका केन्द्रीय प्रबंधन और नियंत्रण उस देश से बाहर हो। अमेरीका के संघीय माध्यस्थम् अधिनियम शीर्षक 9 की धारा 202 में भी यह कहा गया है कि अमेरीका में निगमित कोई कम्पनी अमेरीकी नागरिक के रूप में कम्पनी माने जाने के लिए पर्याप्त है।

अतः धारा 2(1) के खंड (च) के उपखंड (पपप) से "कम्पनी" शब्द को छोड़ देने का प्रस्ताव किया गया है। धारा 2(1) (च) के उपखंड (पए) में "निकाय निगमित" में किसी विधि के अधीन या भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के अधीन निगमित निकाय भी सम्मिलित होगा। प्रस्तावित धारा 2(1) (ड़क) में देशी माध्यस्थम् की नई परिभाषा में भी यही प्रणाली अपनाई गई है।

2.1.3क प्रस्तावित नई परिभाषाएं निम्नलिखित होंगी:

(ड़ क) देशी माध्यस्थम् से विधिक संबंधों से उद्भूत होने वाले विवादों से संबंधित, चाहे संविदात्मक हों अथवा नहीं, कोई माध्यस्थम् अभिप्रेत है जहां पक्षकार में से कोई—

(एक) एक ऐसा व्यष्टि नहीं है जो भारतवर्ष से भिन्न किसी दूसरे देश का नागरिक हो या उसका अभ्यासिक तौर पर निवासी हो,

(दो) ऐसा निगमित निकाय नहीं है जिसे भारत से भिन्न किसी दूसरे देश में निगमित किया गया हो, या,

(तीन) कोई संगम या ऐसे व्यक्तियों का निकाय नहीं है जिसके केन्द्रीय प्रबंधन और नियंत्रण का प्रयोग भारत से भिन्न किसी दूसरे देश में किया जाता हो, या

(चार) किसी विदेश की सरकार नहीं है;

और इसमें अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् और अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् भी जहां माध्यस्थम् का स्थान भारत वर्ष में हो, सम्मिलित होंगे।

(ङ ख) "अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम्" से विधिक संबंधों से उद्भूत होने वाले विवादों से संबंधित, चाहे संविदात्मक हों अथवा नहीं, माध्यस्थम् अभिप्रेत है और जहां कम से कम एक पक्षकार है–

(एक) कोई ऐसा व्यष्टि है जो भारत वर्ष से भिन्न किसी दूसरे देश का नागरिक है या आभ्यासिक तौर पर वहां का निवासी है,

(दो) कोई निगमित निकाय जिसे भारत से भिन्न किसी दूसरे देश में निगमित किया गया है, या

(तीन) कोई संगम या ऐसे व्यष्टियों का एक निकाय जिसके केन्द्रीय प्रबंधन और नियंत्रण का प्रयोग भारत से भिन्न किसी दूसरे देश में किया जाता हो, या

(चार) कोई विदेशी सरकार है

(च) "अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्" से ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् अभिप्रेत है जो भारत में प्रवृत्त विधि के अधीन वाणिज्यिक माना जाता है।

2.2.4 "न्यायिक प्राधिकरण" प्रस्तावित धारा 2(1) (च क) –फैवर पंवर इंजीनियर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम एस०के० मोदी मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय ए०आई०आर० 1997 सु०को० 533, की दृष्टि से, जहां यह अभिनिर्धारित किया है कि 1940 के अधिनियम की धारा 40 में "न्यायिक प्राधिकारी में उपर्युक्त न्यायालय जैसे अर्थ में—न्यायिक अधिकरण सम्मिलित है, धारा 2(1) में आए पद न्यायिक प्राधिकारी को परिभाषित करना आवश्यक है। वास्तव में, उक्त मामले में, 1996 के अध्यादेश का उल्लेख किया गया था जो 1996 के अधिनियम से पूर्व उद्घोषित हुआ था। इस विषय पर धारा 8 में विचार किया गया है (देखें पैरा 2.4.1 से 2.4.4)। जैसाकि यहां इसके पश्चात धारा 8 में विस्तार से उल्लेख किया गया है, बम्बई में आयोजित हुई गोष्ठी में यह अनुरोध किया गया था कि "न्यायिक प्राधिकरण" पद में अर्ध–न्यायिक सांविधिक निकाय भी सम्मिलित किए जाने चाहिएं।

धारा 2(1) में अन्तःस्थापित की जाने वाली "न्यायिक प्राधिकारी" की प्रस्तावित परिभाषा निम्नलिखित है:—

"(च क) न्यायिक प्राधिकारी के अन्तर्गत में कोई भी अर्ध–न्यायिक कानूनी प्राधिकारी भी है"

2.1.5 भाग एक का लागू होना धारा 2(2)

धारा 2(2), 1996 के अधिनियम के भाग–एक में आई है और इसका पाठ इस प्रकार है:

"धारा 2(2). यह भाग वहां लागू होगा जहां माध्यस्थम् का स्थान भारत वर्ष में है"।

"देशी माध्यस्थम्" पद की प्रस्तावित धारा 2(1) (ङक) नई प्रस्तावित परिभाषा की दृष्टि से धारा 2(2) में दो खंड अर्थात खंड (क) और (ख) अन्तःस्थापित करके संशोधन करने का प्रस्ताव है।

खंड (क) का पाठ निम्नलिखित होगा:—

"(क) यह भाग देशी माध्यस्थम् के लिए लागू होगा"

खंड (ख) से संबंधित विवरण परवर्ती पैराओं में दिया गया है। इसका अर्थ यह होगा कि अधिनियम का भाग–एक पूर्णतया देशी माध्यस्थमों के मामलों के लिए भारतीय नागरिकों के बीच अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों में भी जहां कम से कम एक पक्ष भारतीय नागरिक नहीं है के लिए लागू होगा और ऐसे दोनों प्रकार के माध्यस्थमों में, माध्यस्थम् का स्थान भारत वर्ष में ही होगा। ये दोनों प्रकार "देशी माध्यस्थम्" के अन्तर्गत आते हैं। "देशी" शब्द भारत में सभी माध्यस्थमों को संज्ञापित करता है।

वर्तमान धारा 2(2) अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् के प्रमुख सिद्धान्तों के अनुरूप है कि (विभिन्न देशों में न्यायालयों द्वारा विर्णीत अपवादों के अध्यधीन) माध्यस्थम् उस देश की विधि से, जहां उसका अधिनिर्धारण किया जाता है, अर्थात "स्थान" या "फोरम" या माध्यस्थम् को "माध्यस्थम् विधि" से शासित होगा और यह उपबंध जनेवा प्रोटोकोल, 1923 तथा न्यूयार्क कन्वेंशन, 1958 में अन्तर्विष्ट हैं।

2.1.6 भारत से बाहर अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए धारा 8, 9, 35 और 36 को लागू होने में अधिनियम की धारा 2(2) में प्रावधान का न होना:

अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के मामलों में, जहां माध्यस्थम् का स्थान भारत से बाहर है, कुछ समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। बहुत से देशों में ये माध्यस्थम् विधि का ही एक अंश है कि वे अपनी माध्यस्थम् विधियों के कतिपय उपबंधों को उनके देश से बाहर अधिनिर्धारित किए जाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए भी लागू करते हैं। इस संबंध में 1996 के अधिनियम के अनसिट्राल मॉडल विधि के उपबंधों का अनुसरण न करने में गम्भीर चूक रह गई है। इसके कारण मुकदमेबाजी हुई है।

(एक) भारत से बाहर अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए धारा 9 में रही चूक का सुधार करना

पहले हम धारा 9 में रही चूक से होने वाली हानियों पर विचार करेंगे। अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के मामलों में, जहां माध्यस्थम् का स्थान भारत से बाहर है, भारतीय न्यायालयों में एक गम्भीर विवाद पैदा हुआ है। ये वे मामले हैं जहां भारतीय न्यायालयों द्वारा माध्यस्थम् कार्यवाही आरम्भ होने से पूर्व (या पंचाट के पश्चात) धारा 9 के अधीन किसी भारतीय नागरिक को किसी विदेशी पक्ष की सम्पत्ति में से अन्तरिम राहत नहीं दी जा सकी। भारतीय पक्षकार जब तक उस देश के न्यायालय में, जहां माध्यस्थम् का स्थान निश्चित है, कार्यवाही करने के लिए कोई कदम उठाता है तब तक सम्पत्ति हटा दी जाती है या अन्तरित कर दी जाती है।

मॉडल विधि के अनुच्छेद 1(2) का पाठ निम्नलिखित है:

"अनुच्छेद 1(2) अनुच्छेद 8, 9, 35, और 36 के अतिरिक्त, विधि के उपबंध तभी लागू होंगे जब माध्यस्थम् स्थल उस देश के क्षेत्र से बाहर हो"

(मॉडल विधि का अनुच्छेद 9, 1996 के अधिनियम की धारा 9 के अनुरूप है)

1996 के अधिनियम की धारा 2(2) का प्रारूपण करते समय किसी तरह यह पहलु ध्यान में नहीं रहा। इस धारा ने भाग–एक को (धारा 8, 9, 35 और 36 सहित) उन मध्यस्थमों के लिए ही सीमित कर दिया जिनका माध्यस्थम स्थल भारत में ही था। जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है कि इस उपबंध से पीड़ित पक्ष के हितों पर गम्भीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है क्योंकि ये उपबंध उन मध्यस्थमों के लिए लागू नहीं होते जिनका माध्यस्थम स्थल भारत से बाहर है या जहां माध्यस्थम करार में माध्यस्थम स्थल नहीं दिया गया है।

लगभग सभी देश, जिन्होंने अनसिट्राल मॉडल अपनाया है, अपने देशों से बाहर अधिनिर्धारित होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए अपने देश के विधान में अनुच्छेद 8, 9, 35 और 36 के अनुरूप उपबंध लागू करते हैं।

दिल्ली उच्च न्यायालय ने कतिपय निर्णयों में यह दृष्टिकोण अपनाया है कि धारा 2(5) के साथ पठित धारा 2(2), धारा 9 को भारत से बाहर अधिनिर्धारित होने वाले माध्यस्थमों के मामलों पर लागू किए जाने के लिए समर्थ बनाती है (देखें डोमीनेंट ऑफसेट प्राइवेट लिमिटेड बनाम एडमोवोस्की स्ट्रेविसी: 1997(2) आर० एल०आर० 335 (दिल्ली), सुजुकी मोटर्स कारपोरेशन बनाम भारत संघ 1997(2) आर० एल०आर० 477 (दिल्ली), और मैरियट इन्टरनेशनल इंक बनाम अंसल होटलस 1999(82) डी एल टी 13)। दिल्ली उच्च न्यायालय की न्यायपीठ ने धारा 2(5) को निर्दिष्ट करते हुए ऐसा ही दृष्टिकोण ऑलविस फोरकास लिमिटेड बनाम स्कोडा एक्सपोर्ट कारपोरेशन लिमिटेड ए०आई०आर० 2000 दिल्ली 161 मामले में अपनाया। परन्तु दिल्ली उच्च

न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने मैरिट इन्टरनेशनल इंक बनाम अंसल होटल 1999(82) डी॰एल॰टी॰ 13 मामले में विपरीत दृष्टिकोण अपनाते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसे मामलों में अन्तरिम राहत दी जा सकती है। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने भी ईस्ट कोस्ट शिपिंग लिमिटेड बनाम एम॰जे॰ स्क्रैप (प्राइवेट) लिमिटेड 1977(1) कलकत्ता, एन॰एन॰ 444 मामले में भी यही अभिनिर्धारित किया कि धारा 2(2) की स्पष्ट शब्दावली को देखते हुए अन्तरिम राहत स्वीकार की जा सकती है। इसी न्यायालय की एक खंडपीठ ने भी कोवेन्टर्स एग्रो लिमिटेड बनाम सीग्राम (ए॰पी॰ओ॰, 448/97 दिनांक 27.1.98) मामले में यही दृष्टिकोण अपनाया है।

उच्चतम न्यायालय ने थाईसेन स्टाहलूनियन जी एम बी एच बनाम स्टील ऑथोरिटी आफ इण्डिया लिमिटेड 1999 (9) सु॰को॰ 334 मामले में धारा 2(2) और धारा 2(7) का उल्लेख किया है परन्तु इस पहलु पर सीधे विचार नहीं किया।

इस विषय में पूर्णतया सर्वसम्मति है कि धारा 2(2) की इस कमी को धारा 9 (और धारा 8, 35 और 36 जैसे अन्य उपबंधों को) ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों पर लागू करने के लिए, जिनका माध्यस्थम स्थल भारत से बाहर हो या माध्यस्थम स्थल माध्यस्थम करार में विनिर्दिष्ट न किया गया है, समर्थ बनाकर तुरन्त दूर किया जाना चाहिए।

वास्तव में इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 2(3) के उपबंध अन्य अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए जहां माध्यस्थम करार में माध्यस्थम स्थल का उल्लेख न किया गया हो धारा 9 को लागू करते हैं। यह ऐसे माध्यस्थमों के लिए अधिनियम की धारा 43 और 44 का समर्थन भी प्रदान करती है। इंग्लिश अधिनियम की धारा 43 साक्षियों की उपस्थिति सुनिश्चित कराने से संबंधित है और यह 1996 के भारतीय अधिनियम की धारा 27 के ही अनुरूप है।

अतः धारा 2(2) में यह उल्लेख किया जा सकता है कि धारा 9 और 27 के उपबंध ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए भी लागू होंगे जिनमें माध्यस्थम् का स्थान भारत से बाहर है या माध्यस्थम का स्थान करार में विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है।

(दो) भारत से बाहर अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए धारा 8, 35 और 36 को लागू करने संबंधी चूक का दूर किया जाना:

यह देखा गया है कि मॉडल विधि का अनुच्छेद 1(2) न केवल अनुच्छेद 9 को अपितु अनुच्छेद 8, 35 और 36 को भी ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों पर लागू करने के लिए समर्थ बनाता है जहां माध्यस्थम स्थल देश से बाहर हो।

वास्तव में, वे सभी देश, जिन्होंने अनसिट्राल मॉडल विधि को अपनाया है, मॉडल विधि के अनुच्छेद 8, 35 और 36 के अनुरूप अपने देशों की विधियों के उपबंधों को लागू करने की अनुमति देते हैं। जैसाकि ऊपर बताया गया है, धारा 9 और धारा 27 के अतिरिक्त, ऐसे माध्यस्थमों के लिए धारा 8, 35 और 36 के उपबंधों को भी लागू करने की आवश्यकता है। इसका कारण यह है कि न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष 1996 के अधिनियम की धारा 8 के अधीन दायर किए गए किसी वाद या अन्य विधिक कार्यवाही में, जहां एक पक्षकार भारतीय नागरिक नहीं होता है, प्रतिवादी ऐसे माध्यस्थम खंड का तर्क प्रस्तुत करता है जहां माध्यस्थम स्थल भारत से बाहर है या माध्यस्थम स्थल विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है। ऐसे मामले में न्यायालय को पक्षकार द्वारा धारा 8 के अधीन माध्यस्थम निर्दिष्ट किए जाने के लिए निर्देश देने हेतु समर्थ बनाया जाना चाहिए। इस संबंध में पारस्परिकता के आधार पर कुछ आपत्तियां की गई हैं परन्तु आयोग का मत है कि 1996 का अधिनियम भी विधियों में से एक ऐसी विधि है जिसमें विवादों के समाधान के वैकल्पिक उपाय दिए गए हैं और ऐसी प्रक्रियाओं को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता से पारस्परिकता का विचार मिट जाएगा।

अधिनियम की धारा 35 और 36 माध्यस्थम पंचाटों की मान्यता और प्रवर्तन से संबंधित हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप के माध्यस्थम में जहां माध्यस्थम स्थल भारत के बाहर है या विनिर्दिष्ट नहीं है, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 44क के अधीन न आने वाले मामलों में ऐसे अनुबंध के बजाय कि पक्षकारों को पंचाट के आधार पर किसी विदेशी न्यायालय में अधिनिर्णय प्राप्त करना होगा और तत्पश्चात् प्रवर्तन के लिए भारत में वाद दायर करना होगा। अधिनियम की धारा 35 और 36 का लागू होना बनाया जाना आवश्यक है।

धारा 27 न्यायालय की सहायता के बारे में है और यह भी भारत से बाहर अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों पर भी लागू होगी।

इस प्रकार धारा 8, 9, 27, 35 और 36 अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों पर लागू की जाएगी जहां माध्यस्थम स्थल भारत से बाहर है या माध्यस्थम स्थल विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है।

2.1.7 धारा 2(2) के खंड (ख) में इस आशय के निम्नलिखित संशोधन का प्रस्ताव किया गया है:

"(ख) इस भाग की धारा 8, 9, 27 और 36 ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों (वाणिज्यिक हों या नहीं) के लिए भी लागू होगी जहां माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर हो या माध्यस्थम करार में विनिर्दिष्ट न किया गया हो"।

2.2.1 न्यायिक मध्यक्षेप का विस्तार: अधिनियम की धारा 5

धारा 5 मॉडल विधि के अनुच्छेद 5 के समरूप है परन्तु धारा के आरम्भ में एक अध्यारोही खंड जुड़ा है। यह बात नोट करने वाली है कि संयुक्त राष्ट्र आयोग के अनुसार अनुच्छेद 5 का महत्वपूर्ण उद्देश्य न्यायालय के मध्यक्षेप का नकारना या न्यायालयों की उपयुक्त भूमिका को कम करना नहीं अपितु राष्ट्रीय विधि की उन सभी परिस्थितियों को सूचीबद्ध करना है जिनमें न्यायालय के मध्यक्षेप की अनुमति है और अधिनियम के क्षेत्र से विलग किसी समाधान पर आधारित या राष्ट्रीय न्यायालयों की अवशिष्ट शक्ति के तर्क पर आधारित किसी तर्क को समाप्त करना है (देखें मॉडल विधि के अनुकूलन पर संयुक्त राष्ट्र आयोग की रिपोर्ट (1985) का पैरा 62 और 63) ये पैराग्राफ उद्धृत करने योग्य हैं और इनका पाठ निम्नलिखित है:

"दूसरी आपत्ति के संबंध में इस बात पर जोर दिया गया है कि माध्यस्थम के दौरान न्यायालय के मध्यक्षेप की वांछनीयता तथा उपयुक्तता के बारे में अनुच्छेद 5 में स्पष्टतया सीमित विचार व्यक्त किया गया है। माध्यस्थम प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के उद्देश्य से माध्यस्थम में अन्तर्ग्रस्त व्यापारियों का न्यायालय में जाना उनके हित में है। इसके अतिरिक्त, माध्यस्थम प्रक्रियाओं में मध्यक्षेप करने के न्यायालयों के अधिकारों को सीमित करने से न्यायिक शक्ति के विवेकाधिकारों में हस्तक्षेप होगा और कुछ देशों के लिए ऐसा करना उनके संविधान के विरुद्ध होगा। अन्तिम रूप में, यदि किसी माध्यस्थम् में पर्यवेक्षण में न्यायालय के मध्यक्षेप को सीमित भी करना पड़े, न्यायालय को माध्यस्थम की सहायता के लिए व्यापक शक्ति प्राप्त होनी चाहिए। अनुच्छेद 5 के अत्यंत कठोर स्वरूप को उदार बनाने के संभावित उपाय के रूप में माध्यस्थम के पक्षकारों को न्यायालय द्वारा पर्यवेक्षण किए जाने और मॉडल विधि द्वारा उपलब्ध कराई गई सहायता की तुलना में न्यायालयों द्वारा माध्यस्थम में सहायता देने के लिए सहमत होने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

दूसरी आपत्ति के बारे में यह कहा गया है कि माध्यमस्थम प्रक्रिया के दौरान न्यायालय के मध्यक्षेप का सहारा अक्सर विलम्बकारी उपाय के रूप में लिया जाता है और यह अधिकांशतः दुरुपयोग के विरुद्ध संरक्षण के बजाय दुरुपयोग का एक साधन मात्र है। अनुच्छेद 5 का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थमों विधि के प्रारूपणकर्ताओं को मॉडल विधि में सभी प्रकार के न्यायालय मध्यक्षेपों की सूची समाविष्ट करने के लिए बाध्य करके अधिकतम सीमा तक सहायता सहित न्यायिक मध्यक्षेप सुनिश्चित प्राप्त करना था। यह भी माना गया था कि यद्यपि आयोग को यह आशा हो सकती है कि देश मॉडल विधि को उसके प्रारूपित स्वरूप में स्वीकार कर लेंगे क्योंकि यह मॉडल विधि थी कन्वेंशन नहीं। कोई देश जिसे कोई संवैधानिक समस्या हो न्यायिक मध्यक्षेप के क्षेत्र का विस्तार कर सकेगा जब वह किसी अन्तर्राष्ट्रीय दायित्व का उल्लंघन किए बिना मॉडल विधि को स्वीकार करेगा।"

मॉडल विधि के अनुच्छेद 5 का पाठ इस प्रकार है "मॉडल विधि से शासित होने वाले मामलों में कोई न्यायालय, जहां विधि में उपबंधित हो उसके सिवाय, मध्यक्षेप नहीं करेगा। 1996 के अधिनियम की समरूप धारा 5 में एक अध्यारोही खंड अन्तर्विष्ट है जिसका पाठ इस प्रकार है:

"धारा 5: इस भाग द्वारा शासित किए गए मामले में, तत्समय प्रवृत्त किसी दूसरी विधि में किसी बात के अन्तर्विष्ट होते हुए भी, कोई न्यायिक प्राधिकारी मध्यक्षेप नहीं करेगा उस दशा के सिवाय जिसके लिए इस भाग में ऐसा प्रावधान किया गया हो।"

महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि "इस भाग से शासित मामलों में और मध्यक्षेप" शब्दों का क्या अर्थ है। क्या उनका अर्थ मध्यस्थों की नियुक्ति के पश्चात् मध्यक्षेप से है या माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों के चलने के दौरान? आयोग के विचार में धारा 5 के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उपर्युक्त शब्दों का उदारता से अर्थ

लगाया जाएगा। उद्देश्य मध्यक्षेप को अधिनियम में दर्शायी गयी परिस्थितियों तक सीमित रखना और अन्य सभी उपायों को अपवर्जित करना है, अपवर्जन न तो माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के पश्चात के कारण तक सीमित है और न केवल माध्यस्थम कार्यवाहियों के विचाराधीन रहने के दौरान तक। अपवर्जित उपाय वे हैं जो माध्यस्थम आरम्भ होने से पूर्व धारा 9 के अधीन अन्तरिम राहत के चरण से ही तथा विचाराधीन कार्यवाही में धारा 8 के अधीन माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट चरण में या धारा 11 के अधीन माध्यस्थमों की नियुक्ति के समय अन्यथा उपलब्ध हों।

आयोग के विचार में, उदाहरण के लिए जहां धारा 9 के अधीन अन्तरिम आदेश सिविल न्यायालय द्वारा पारित किए जाते हैं, जैसाकि धारा 2(1)(ङ) में परिभाषित किया गया है, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन या लैटर्स या उच्च न्यायालय अधिनियमों के अधीन समाधान अपवर्जित हैं। धारा 5 के प्रभाव के फलस्वरूप ऐसा है। इसके साथ ही, यदि न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष दायर किसी मामले में निर्देश के लिए धारा 8 के अधीन किसी आवेदन को स्वीकृति दी जाती है या उक्त प्राधिकरण द्वारा उसे रद्द कर दिया जाता है तो सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 या लैटर्स पेटेंट्स या उच्च न्यायालय के अधिनियमों या न्यायिक प्राधिकरण के लिए लागू होने वाले संविधान के अधीन उसे चुनौती देने वाले अन्य सभी उपचार अपवर्जित होंगे।

इसी प्रकार, अधिनियम की धारा 11 के अधीन यदि मध्यस्थ उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किए या न किए जाते हैं तो ऐसे आदेश लैटर्स पेटेंट्स या उच्च न्यायालय अधिनियमों के अध्यधीन नहीं होंगे यदि ये आदेश उच्च न्यायालय के एकल सदस्यीय न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए हैं।

इस स्थिति को स्पष्ट करने के उद्देश्य से धारा 5 के अन्त में एक स्पष्टीकरण जोड़ने का प्रस्ताव है जो निम्नलिखित है:

"स्पष्टीकरण: शंकाओं के निवारण के लिए, यह घोषित किया जाता है कि "तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि" पद से यह समझा जाएगा कि उसके अंतर्गत निम्नलिखित है:—

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5);

(ख) उच्च न्यायालय में अन्तरिम अपील का उपबंध करने वाली कोई विधि;

(ग) किसी अन्य न्यायिक प्राधिकरण द्वारा पारित आदेशों के बारे में किसी न्यायिक प्राधिकारी द्वारा मध्यक्षेप का उपबंध करने वाली कोई अधिनियमिति ।"

इस प्रकार अध्यारोही खंड का परिणाम किसी अन्य विधि को अधिभावी करना होगा और किसी भी विधि के अधीन अध्यक्षेप निषिद्ध हो जाएगा। क्योंकि अधिनियम की नीति न्यूनतम न्यायिक मध्यक्षेप है, आयोग का विचार है कि अध्यारोही खंड को निकालने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में, इसे निकाल देने से भी, "इस भाग में उपबंधित के सिवाय" शब्दों को ध्यान में रखते हुए परिणाम कोई भिन्न नहीं होगा। इसके बजाय, धारा 5 के अन्त में इस धारा को सुदृढ़ बनाने और संदेहों को दूर करने के लिए एक स्पष्टीकरण जोड़ा जाएगा।

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89

धारा 5 के संदर्भ में यह बताया गया है कि सिविल प्रक्रिया संहिता में धारा 89 (1) (क) और धारा 89 (2)(क) अन्तःस्थापित करने से भारत के न्यायालयों को मामलों को माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट करने की शक्ति प्राप्त हो जाएगी और धारा 5 को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 को स्वीकार करना होगा (संहिता में यह संशोधन संसद द्वारा पारित किया जा चुका है परन्तु इसके प्रवर्तन की तिथि अधिसूचित न किए जाने के कारण यह अभी तक प्रभावी नहीं हुआ है)। आयोग का विचार है कि 1996 के अधिनियम की धारा 5 में संहिता की धारा 89 को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि धारा 89 में केवल 1996 के अधिनियम को ही लागू करने की अपेक्षा की गई है। 1996 के अधिनियम की धारा 5 तथा संहिता की धारा 89 में कोई विरोधाभास नहीं है। इसे हम आगे और स्पष्ट करेंगे।

धारा 89 में न्यायालय को, यदि उसके विचार में कोई समाधान संभव है, मामला माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट करने की शक्ति प्रदान की गई है। धारा 89 के अधीन यह शक्ति पक्षकारों के किसी करार पर निर्भर नहीं है। दूसरी ओर, 1996 का अधिनियम माध्यस्थम करार के अधीन मामले को माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट करने के बारे में है। जब कभी धारा 89 प्रभावी होगी, न्यायालय का निर्देश, यथासंभव, 1996 के वर्तमान अधिनियम

से ही शासित होगा जैसी कि धारा 89 में व्यवस्था दी गई है। अतः इस संबंध में अधिनियम की धारा 5 में कोई संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है। इसके अतिरिक्त, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 के अधीन न्यायालय द्वारा यदि कोई निर्देश किया जाता है तो आयोग के विचार में यह निर्देश धारा 2 (4) के अन्तर्गत नहीं आएगा क्योंकि माध्यस्थम विधि के अधीन अर्थात सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908, नियुक्त किसी मध्यस्थ द्वारा नहीं हुआ है जैसाकि सहकारी समितियाँ अधिनियमों के अन्तर्गत होता है। इसी प्रकार धारा 42 भी लागू नहीं होती है क्योंकि पक्षकारों के बीच न तो कोई करार ही हुआ है और न न्यायालय में कोई आवेदन ही किया गया है। अतः 1996 के अधिनियम की धारा 42 में उपबंध करने के लिए अधिनियम की धारा 5 में सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 को स्वीकारने की कोई आवश्यकता नहीं है।

धारा 89 के अधीन निर्देश किए जाने पर 1996 के अधिनियम के उपबंध लागू हो जाते हैं।

2.2.3 अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 5 में प्रयुक्त "तत्समय प्रवृत किसी विधि में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी" शब्द भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा शक्तियों के प्रयोग में और अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा शक्तियों के प्रयोग में किसी प्रकार बाधक नहीं होंगे क्योंकि ये संवैधानिक उपबंध हैं। (देखें संयुक्त राष्ट्र संघ आयोग की रिपोर्ट का पैरा 62 जिसमें ऐसी संभावना देखी गई है) हम इस पहलु का उल्लेख इसलिए कर रहे है क्योंकि जब हम अधिनियम की धारा पर आते जिसमें ऐसे न्यायिक प्राधिकरण द्वारा पारित आदेश, - यदि वे अर्ध न्यायिक अधिकरणों के आदेश हैं, जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया है वे अनुच्छेद 227 और अनुच्छेद 136 के उपबंधों के लिए अधिभावी हो सकते हैं।

2.2.4 परिणामस्वरूप, धारा 5 का अध्यारोही खंड यथावत रहेगा और जैसाकि पीछे बताया जा चुका है इस धारा के नीचे एक स्पष्टीकरण जोड़ा जाएगा।

2.2.5 प्रशासनिक सहायता: धारा 6 में प्रस्तावित संशोधन

अधिनियम की धारा 6, जैसाकि इस समय है, का पाठ निम्नलिखित है:

> प्रशासनिक सहायता: माध्यस्थम संबंधी कार्यवाही का संचालन सुकर बनाने के लिए पक्षकार गण या पक्षकारों की सम्मति से माध्यस्थम अधिकरण किसी उपयुक्त संस्था या व्यक्ति द्वारा प्रशासनिक सहायता के लिए प्रबंध कर सकेगा।".

उपर्युक्त धारा का प्रारूप सुलह संबंधी नियमों को स्वीकार करने के बारे में अनसिट्राल रिपोर्ट (जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विधि के बारे में संयुक्त राष्ट्र संघ आयोग द्वारा तैयार की गई थी) के अनुच्छेद 8 के मॉडल पर तैयार किया गया था जिसकी भाषा भी न्यूनाधिक वही थी। वास्तव में, इस रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया था कि यदि सुलहकर्ता प्रशासनिक सहायता का प्रबंध करते हैं तो उन्हें पक्षकारों से न केवल परामर्श करना चाहिए अपितु उनकी सहमति भी प्राप्त करनी चाहिए।

तथापि, व्यवहार में, भारत में माध्यस्थम कार्यवाहियां अधिक खर्चीले स्थानों पर आयोजित करना एक सामान्य बात होती जा रही है। बहुत बार कार्यवाही चाहे बहुत थोड़े से समय के लिए हो, पक्षकारों को पूरे दिन के खर्चे का भार वहन करना पड़ता है। यदि स्थान कोई पाँचसितारा होटल है तो खर्च बहुत भारी हो जाता है। पक्षकार यदि ऐसे खर्चीले स्थान के अनुरोध को नकारते हैं तो वे उलझन में पड़ जाते हैं।

दूसरी ओर ऐसे स्थान भी है जो काफी अच्छे हैं और पांचसितारा होटलों जैसे खर्चीले भी नहीं। बहुत से सार्वजनिक संस्थान अपने सम्मेलन कक्ष माध्यस्थम के लिए उपलब्ध करा देते हैं और सस्ते में ही सभी सुविधाएं उपलब्ध हो जाती हैं। आयोग को सूचित किया गया है कि वर्षों से चल रहे कतिपय माध्यस्थमों में माध्यस्थम स्थलों पर खर्च होने वाली राशि लाखों में होती है। समृद्ध पक्षकार तो सहमत हो सकता है परन्तु दूसरा जो इतना समृद्ध नहीं है सहमत नहीं होता परन्तु पंचाट में आए खर्चे के बारे में माध्यस्थम अधिकरण द्वारा दिए गए आदेश के अनुसार अन्ततः उसे बहुत बड़ी राशि का भार वहन करना पड़ता है।

इन समस्याओं पर ध्यान देने के पश्चात और पक्षकारों की मध्यस्थ व्यय को कम करने के उद्देश्य से, आयोग ने धारा 6 में निम्नलिखित संशोधन का प्रस्ताव किया है:—

> धारा 6 - प्रशासनिक सहायता :- माध्यस्थम संबंधी कार्यवाही के संचालन को सुकर बनाने के लिए पक्षकार उपयुक्त संस्था या व्यक्ति द्वारा प्रशासनिक सहायता के लिए प्रबंध कर सकेगा।

हम इस संशोधन को विचाराधीन माध्यस्थमों के लिए भी लागू करने का प्रस्ताव कर रहे है। हमें आशा है कि इस संशोधन से माध्यस्थम पर आने वाले व्यय में भी कमी आएगी।

2.3.1 माध्यस्थम करार: धारा 7

धारा 7 में माध्यस्थम करार को परिभाषित किया गया है और यह मॉडल विधि के अनुच्छेद 7 की शब्दश: पुनरावृत्ति है सिवाय इसके कि मॉडल विधि का एकल पैराग्राफ विभिन्न खंडों में विभाजित किया गया है। यह सुझाव दिया गया है कि इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 5 में माध्यस्थम करार की परिभाषा भारतीय अधिनियम, 1996 की धारा 7 की तुलना में अधिक विस्तृत है और इसे हमारे अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (4)के रूप में अन्त:स्थापित किया जा सकता है क्योंकि धारा 5 की उपधारा (4) में यह शब्दावली दी गई है कि "यदि कोई करार लिखित में न होकर अन्यथा किया गया है और उसे पक्षकारों में से किसी एक पक्षकार या तीसरे पक्ष द्वारा अभिलिखित किया जाता है तो उस करार की पुष्टि करार के पक्षकारों के प्राधिकार से लिखित में की जाएगी"।

आयोग का विचार है कि अधिनियम की धारा 7 में इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 5 (4) के उपबंधों को जोड़कर इस धारा में संशोधन करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप अनावश्यक मुकदमेबाजी होगी यदि खण्ड पक्षकारों में से एक पक्षकार या तीसरे पक्षकार के अभिलेख पर आधारित रहता है।

यह सुझाव दिया गया है कि इंग्लिश अधिनियम की धारा 5(2)(क) में कोष्ठ में दिए गए इन शब्दों को "पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित हो अथवा नहीं" को 1996 के अधिनियम की धारा 7 में अन्त:स्थापित किया जाना चाहिए। धारा 7(3) में कहा गया है कि माध्यस्थम करार लिखित में होगा। धारा 7(4)(क) में सुझाव दिया गया है कि माध्यस्थम करार लिखित में होगा यदि उसमें पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित किया गया एक दस्तावेज अन्तर्विष्ट है। क्योंकि धारा 7 (4) (क) में "केवल" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है इसलिए यह प्रतीत होता है कि यह आज्ञापक आवश्यकता नहीं है कि करार हस्ताक्षरित होना चाहिए। वास्तव में उच्चतम न्यायालय ने 1940 के अधिनियम के अधीन जुगल किशोर रामेश्वर दास बनाम श्रीमती गायत्री ए.आई.आर. 1955 सु.को., बनारसी दास बनाम काउंटो कमीशन ए.आई.आर. 1963 सु.को. 1417 (1425) और सतीश चन्द्र बनाम उत्तर प्रदेश ए.आइ.आर. 1983 सु.को. 347 1983 (2). एस.सी.सी. 141 मामलों में यह अभिनिर्धारित किया है कि अनुरोध नि:संदेह लिखित में किया जाना चाहिए परन्तु हस्ताक्षरित किए जाने की आवश्यकता नहीं है, आवश्यक केवल यह है कि एक औपचारिक लिखित करार होना चाहिए और पक्षकार वर्तमान तथा भविष्य के विवादों को माध्यस्थम के लिए प्रस्तुत करने के लिए सहमत होने चाहिए। यह विधिक स्थिति 1940 के अधिनियम की धारा 2(क) के अधीन घोषित की गई जिसमें "लिखित करार" शब्दों का प्रयोग किया गया है परन्तु पक्षकारों के हस्ताक्षरों का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि के विचार से और धारा 7(4) की विशिष्ट शब्दावली को ध्यान में रखते हुए "हस्ताक्षरित हो अथवा नहीं" शब्दों का प्रयोग करना आवश्यक नहीं समझा गया जैसाकि इंग्लिश अधिनियम की धारा 5 में किया गया है।

2.3.2 यह सुझाव दिया गया है कि "शेयरों के दलाल" कतिपय ऐसे करारों का प्रयोग करते है जिनमें एक माध्यस्थम खण्ड होता है और ये करार पक्षकारों द्वारा बिना किसी शिकायत के प्राप्त किए जाते है इसलिए धारा 7 (4) (ख) में इस प्रकार की आकस्मिकता का प्रावधान किया जाना चाहिए। यह सुझाव स्वीकार कर लिया गया है। इस प्रकार धारा 7 (4) (ख) में कतिपय अन्य शब्द जोडे जाने की आवश्यकता है

अत:धारा 7 (4) (ख) में "पत्रों के आदान-प्रदान" शब्दों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द पुर:स्थापित करने का प्रस्ताव किया गया है:-

"किसी एक पक्षकार द्वारा दूसरे को कोई लिखित संसूचना, जिसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में दूसरे पक्षकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो, पत्रों का आदान-प्रदान"

2.4.1 धारा 8 का संशोधन

धारा 8 और प्रस्तावित धारा 2(1) (च क) और नई उपधारा (3) से धारा 42 तक में न्यायिक प्राधिकारी

धारा 8 में संशोधन करने के बारे में कई सुझाव दिए गए हैं। हम इन सुझावों पर एक एक करके चर्चा करेंगे। क्या धारा 8 में आए न्यायिक प्राधिकारी पद में अर्धन्यायिक प्राधिकारी भी सम्मिलित हैं?

धारा 8 में ऐसी स्थिति के बारे में है जहां न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष कोई कार्यवाही दायर की जाती है जिसमें दूसरा पक्ष माध्यस्थम खंड पर निर्भर करता है। ऐसी स्थिति में न्यायालय मामले को माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट करेगा। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि ''करेगा'' शब्द का प्रयोग करके (1940 के अधिनियम की धारा 34 में प्रयोग किए गए शब्द कर सकेगा के विपरीत) न्यायिक प्राधिकारी में कोई स्वविवेकाधिकार निहित नहीं रह गया है और माध्यस्थम के लिए निर्देश कानूनी प्रक्रिया बन गया है (देखें पी० आनन्दगजपति राजू बनाम पी० वी० जी० राजू (2000) (4) एस० सी० सी० 559, ए० आई० आर० 2000 सु० को० 1886) इससे विलग होने का कोई प्रस्ताव नहीं है। यह सच है कि जहां तक देशी माध्यस्थम का संबंध है इंग्लिश अधिनियम में अधिनियम की धारा 86 में स्वविवेकाधिकार का अभी भी प्राबधान है परन्तु इंग्लैण्ड में भी धारा 86 के उपबंध को लागू नहीं किया गया है और यह कहा गया है कि इसे लागू किए जाने की संभावना भी नहीं है।

उच्चतम न्यायालय की दो न्यायाधीशों की एक खंडपीठ ने मैसर्स फेयर एयर इंजीनियर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम एस० के० मोदी ए० आई० आर० 1997 सु० को० 533 मामले में 1940 के अधिनियम की धारा 34 के ऐसे ही उपबंध में प्रयुक्त शब्दावली के बारे में यह अभिनिर्धारित किया है कि ये शब्द उपभोक्ता न्यायालय के लिए प्रयोग किए गए हैं। यह अभिनिर्धारित किया गया कि उपभोक्ता फोरम अर्ध–न्यायिक निकाय है जो ''न्यायिक प्राधिकारी'' पद के अधीन आते हैं और ये निकाय विवादों के माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट कर सकते हैं यदि उनके समक्ष के पक्षकार करार से संबंधित पक्षकार है। यद्यपि यह मामला 1940 के अधिनियम के अधीन पैदा हुआ परन्तु निर्णय में 1996 के अध्यादेश का विशेष उल्लेख किया गया जो वर्तमान अधिनियम से पूर्व उद्घोषित किया गया था और इसमें अध्यादेश की धारा 8 का उल्लेख किया गया जिसका अर्थ अर्ध–न्यायिक प्राधिकारी के लिए भी लागू होना माना गया।

2.4.2 इस संबंध में हमें उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा स्काई पैक कोरियर्स लिमिटेड बनाम एस० के मोदी (2003 (5) सु० को० 294) मामले में बाद में दिए गए निर्णय का भी उल्लेख करना है जिसमें न्यायालय ने तीसरे पक्ष द्वारा, जिसे अन्तिम न्यायनिर्णय के लिए आगे और आपत्ति दायर करने की कोई गुंजाइश न छोड़ते हुए, राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग ने मामला निर्दिष्ट किया था, दिए गए पंचाट को खारिज कर दिया। मामले निर्दिष्ट करते हुए राष्ट्रीय आयोग ने अपने आदेश में कहा था कि वे माध्यस्थम् अधिनियम के उपबंधों का अवलंब नहीं ले रहे हैं अपितु सहमत माध्यस्थम के लिए मामले को तीसरे पक्ष को निर्दिष्ट कर रहे हैं। उच्चतम न्यायालय ने पंचाट को खारिज कर दिया और यह अभिनिर्धारित किया कि आयोग को, आपत्ति दायर करने का अधिकार दिए बिना अन्तिम निर्णय देने हेतु तीसरे पक्ष को मामले निर्दिष्ट करने की उपर्युक्त प्रक्रिया नहीं अपनानी चाहिए थी। साथ ही उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि वे इस बात पर निर्णय नहीं दे रहे है कि क्या उपभोक्ता न्यायालय माध्यस्थम अधिनियम के अधीन मामले को माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट कर सकते हैं अथवा नहीं। हम केवल इसी मामले का उल्लेख यह दर्शाने के लिए कर रहें है कि मैसर्स फेयर एयर इंजीनियर्स लिमिटेड बनाम एस.के. मोदी मामले में दिए गए निर्णय का न तो कोई निर्देश ही दिया गया और न ही स्काईपैक कोरियर्स मामले में इसके विरुद्ध निर्णय दिया गया।

2.4.3 परामर्शपत्र (अनुबंध–दो) में यह प्रस्ताव किया गया था कि ''न्यायिक प्राधिकारी'' शब्दों को छोड़ दिया जाए और इनके स्थान पर ''न्यायालय'' शब्द प्रतिस्थापित किया जाए। यह प्रस्ताव इस बात को ध्यान में रखते हुए किया गया था कि विभिन्न न्यायिक प्राधिकारियों द्वारा पारित आदेशों को चुनौती देने के लिए किए जाने वाले उपचार एक समान नहीं होंगे। परन्तु विभिन्न गोष्ठियों में बाद में व्यक्त किए गए विचारों को ध्यान में रखते हुए, यह कहा गया था कि जिनके समक्ष कोई कार्यवाही अनिर्णीत पड़ी हो तो ऐसे मामलों को माध्यस्थों को निर्दिष्ट करने की स्थिति में ही जहां माध्यस्थम खंड पर निर्भरता व्यक्त की गयी हो। आयोग का विचार है कि ''न्यायक प्राधिकारी'' शब्द यथावत रखे जा सकते हैं ताकि धारा 8 के अधीन ही संबंधित न्यायिक प्राधिकारी माध्यस्थम खंड पर विश्वास रखने वाले पक्ष को धारा 11 के अधीन अलग से आवेदन करने के लिए कहने की बजाय, माध्यस्थम के लिए सुगमतापूर्वक निर्देश कर सकें (जैसाकि फेयर एयर इंजीनियर्स के मामले में अभिनिर्धारित किया गया है) जिसके समक्ष मामला विचाराधीन हो।

2.4.4 यह सच है कि धारा 8 के अधीन विभिन्न न्यायिक निकायों द्वारा पारित आदेशों के विरुद्ध उपचार सामान्यतया भिन्न भिन्न हो सकते हैं। परन्तु धारा 5 के कारण, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन

उपचार वर्जित है और उपचार केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन ही किया जा सकेगा। यदि आदेश किसी अर्ध-न्यायिक सांविधिक प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया है, तब धारा 5 के कारण, अधिकरण के लिए व्यवहार्य विशेष अधिनियम के अधीन उपचार वर्जित है और उपचार केवल अनुच्छेद 227 के अधीन ही किया जा सकता है। इस प्रकार विभिन्न अर्धन्यायिक प्राधिकारियों के लिए व्यवहार्य विभिन्न विशिष्ट विधियों के अधीन विभिन्न उपचार उपलब्ध होने की कोई संभावना नहीं है। इसलिए "न्यायिक प्राधिकारी" शब्द यथावत रहेगा और फैयर एयर इंजीनियर्स मामले में उच्चतम न्यायालय के द्वारा घोषित विधि के अनुसार इसके अधीन अर्ध-न्यायिक अधिकरण भी आएंगे। हम धारा 2(1) में "न्यायिक प्राधिकारी" की निम्नलिखित परिभाषा जोड़ने के प्रस्ताव का उल्लेख पहले ही कर चुके है। धारा 2(1)(च क) न्यायिक प्राधिकारी में कोई अर्ध न्यायिक सांविधिक प्राधिकारी भी सम्मिलित होगा।

2.4.5 क्या कतिपय पारंपरिक मामलों का निर्णय धारा 8 के स्तर पर किया जा सकेगा।

अतः हम एक अन्य महत्वपूर्ण मामले पर आते है। मॉडल विधि के अनुच्छेद 8(1) में यह व्यवस्था की गई है कि न्यायालय, जिसके समक्ष मामला लाया जाता है और माध्यस्थम का तर्क दिया जाता है, पक्षकारों को माध्यस्थम के लिए निर्देश देगा "जब तक वह इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता कि करार अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय है और निष्पादित किए जाने योग्य नहीं है। 1996 के अधिनियम की धारा 8 में इन शब्दों का का लोप कर दिया गया है। लोप करने का परिणाम यह हुआ है कि धारा 5 की दृष्टि से न्यायिक प्राधिकारी, यदि माध्यस्थम करार अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय है और निष्पादित किए जाने योग्य नहीं है, निर्णय नहीं कर सकेगा। परामर्शपत्र (अनुबंध-दो) में यह प्रस्ताव किया गया था कि धारा 8 में इसे मॉडल विधि के अनुच्छेद 8(1) के अनुरूप बनाने के उद्देश्य से संशोधन किया जाना चाहिए ताकि न्यायिक प्राधिकारी इन अधिकारिता संबंधी मामलों पर प्रारंभिक स्तर पर ही निर्णय दे सकें। बम्बई में आयोजित हुई गोष्ठी में यह सुझाव दिया गया कि यदि आवश्यकता हो तो न्यायिक प्राधिकारी को इन मामलों पर निर्णय देने की शक्ति दी जा सकती है यदि ये प्रस्तुत किए गए तथ्यों या दस्तावेजों के आधार पर मौखिक साक्ष्य लिए बिना ही निर्णीत किए जा सकते हों और यदि विलम्ब होने की कोई संभावना न हो।

जहां तक मॉडल विधि से अन्तर का संबंध है (जैसाकि ऊपर बताया गया है) एक यह कारण दिया जा सकता है कि इस तर्क को खारिज करने वाले किसी निर्णय को कि करार अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय है और निष्पादन योग्य नहीं है चुनौती दी जा सकती है और यह कि इससे माध्यस्थम कार्यवाही चलाने में विलम्ब होगा। परन्तु अन्यथा भी, धारा 8 के अधीन कोई भी आदेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अध्यधीन है। इन शब्दों का लोप करने का कोई उचित कारण नहीं है।

अब ये शब्द न्यूयार्क कन्वेंशन 1958 के तद्रूपी उपबंधों में उपलब्ध हैं और 1996 के अधिनियम की धारा 45 में भी रखे गए हैं। दूसरे शब्दों में, इन शब्दों को भाग-दो में धारा 45 में रखा गया है तथापि भाग-एक में धारा 8 में इनका लोप कर दिया गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ आयोग ने अपनी 1985 की रिपोर्ट में इस पहलु पर विस्तार से विचार किया है (अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विधि के कार्यकरण पर संयुक्त राष्ट्र आयोग की रिपोर्ट, 21 अगस्त, 1985) आयोग ने अपनी रिपोर्ट के पैरा 91 में मूलभूत सिद्धान्तों का उल्लेख किया है कि यदि न्यायालय के सामने पहले अधिकारिता संबंधी प्रश्न उठाए गए थे तो न्यायालय की कार्यवाहियों में माध्यस्थम कार्यवाहियों के लिए रोकादेश देने या कम से कम माध्यस्थम अधिकरण को अपना पंचाट देने से रोकने की न्यायालयों में निहित शक्ति को मान्यता देकर न्यायालय की कार्यवाहियों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। आयोग ने महसूस किया कि उपर्युक्त शब्द अनुच्छेद 8 में रखे जाने चाहिए और यह कि जब अधिकारिता संबंधी प्रश्न न्यायालय में विचाराधीन हो माध्यस्थम अधिकरण को कार्यवाही जारी रखने (अपना पंचाट देने सहित) की अनुमति दी जानी चाहिए।

अनसिट्राल मॉडल अपनाए जाने के बारे में संयुक्त राष्ट्र आयोग ने अपनी रिपोर्ट के पैरा 92 में कहा है:—

"यह बताया गया था कि ऐसे मामलों में न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा करके व्यय से बचा जा सकता है जहां न्यायालय ने बाद में माध्यस्थम अधिकरण की अधिकारिता के विरुद्ध निर्णय दिया हो। तथापि, इस कारण से माध्यस्थ अधिकरण की अधिकारिता पर न्यायालय के निर्णय को स्थगित करने के लिए व्यवस्था करने की सिफारिश नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त,जहां अधिकारिता के बारे में

माध्यस्थम अधिकरण को बहुत अधिक संदेह हो वहां उसे मामले पर प्राथमिक मामले के रूप में अनुच्छेद 16(2) के अधीन निर्णय देना चाहिए या न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा करनी चाहिए।

संयुक्त राष्ट्र आयोग ने इस पहलू पर गहराई से विचार किया और "अकृत और शून्य" शब्दों को मॉडल विधि में निष्पादित किए जाने के लिए अपरिवर्तनीय बनाए रखा।

"अकृत तथा शून्य" आदि उपयुक्त शब्द जो न्यूयार्क कन्वेंशन, 1958, मॉडल विधि के अनुच्छेद 8 से लिए गए है, विभिन्न देशों की, जिन्होंने मॉडल विधि को अपनाया है, विधियों में आए हैं (उदाहरण के लिए देखें, जर्मन अधिनियम, 1998 की धारा 1032, कोरिया अधिनियम, 1999 का अनुच्छेद 9, कनाडा अधिनियम, 1986 का अनुच्छेद 8, जिम्बावे अधिनियम, 1996 का अनुच्छेद 8 तथा ब्रिटिश कोलम्बिया अधिनियम, 1996 की धारा 15 जो 1996 के अधिनियम के प्रारूपण के समय ध्यान में रखी गयी, देखें अधिनियम पर डा० पी०सी० राव की टिप्पणी पृष्ठ 9)

इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 9(4) में भी इन शब्दों को तत्समान धारा में सम्मिलित किया गया है और इस स्तर पर निर्णय करने की आवश्यकता समझी गई है जैसाकि मॉडल विधि में तथा इसे अपनाने वाले अन्य देशों की विधियों में किया गया है।

लॉ एण्ड प्रैक्टिस ऑफ इन्टरनेशनल कॉमर्शियल आर्बिट्रेशन (199) (देखें पैरा 3.34) में रैडफर्न एण्ड हन्टर ने एक उदाहरण दिया है जिसमें यह दर्शाया गया है कि इन शब्दों को क्योंकर रहने दिया गया है। उन्होंने निम्नलिखित स्पष्टीकरण दिया है:-

> "उदाहरण के लिए, मान लीजिए एक पक्ष यह दावा करता है कि वह मुख्य करार का पक्षकार नहीं है (वह मेरे हस्ताक्षर नहीं है और इसलिए करार में माध्यस्थम खंड का पक्षकार नहीं है) यदि यह ठीक है, तो वैध माध्यस्थम नहीं हो सकता या वैध पंचाट नहीं दिया जा सकता। माध्यस्थम खंड अनुच्छेद 16 की स्वायत्तता पर चाहे जितना भी जोर दिया जाए वह इसे वैध नहीं बना सकेगा यदि प्रतिवादी इसका पक्षकार नहीं था।"

रसैल ऑन आर्बिट्रेशन (21वां संस्करण 1997) में रसैल ने कहा है कि "यदि माध्यस्थम करार को ही चुनौती दी जाती है तो न्यायालय को न्यायिक प्रक्रिया के रोकादेश देने से पूर्व उसकी वैधता के बारे में निर्णय करना होगा।.....तथापि न्यायालय का झुकाव, यदि संभव होगा, माध्यस्थम करार को प्रभावी बनाने पर होगा।

इन्टरनेशनल कॉमर्शियल आर्बिट्रेशन (1999) फाकहार्ड तथा अन्य ने धारा 8 के अन्तर्गत आने वाले और हमारे अधिनियम की धारा 16 के अन्तर्गत आने वाले एक जैसे मामलों में एक महत्वपूर्ण अन्तर किया है अर्थात वे मामले जो न्यायालय से आरम्भ होते हैं और वे मामले जो आरम्भ किए जाने के लिए पहले से ही माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष विद्यमान है। लेखकों ने कहा है कि उन मामलों को माध्यस्थम अधिकरण के निर्णय के लिए छोड़ा जा सकता है जहां न्यायालय की सहायता के बिना ही पक्षकारों द्वारा निर्देश किया जाता है परन्तु उन मामलों में नहीं जहां मामले न्यायालय से ही आरम्भ होते हैं। उन्होंने कहा है (देखें पैरा 680)—

> "यदि विवाद धारा 16 के अधीन पहले ही से माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष है तब जानबूझकर विलम्ब किए जाने के कारण न्यायालय की कोई अधिकारिता नहीं रह जाती है। दूसरी ओर विवाद को सीधे न्यायालय के समक्ष लाने वाले वादी के दृष्टिकोण को भी अविश्वनीय माने जाने की भी बहुत कम संभावना रहती है। क्योंकि विवाद अभी तक माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष नहीं गया है। दोहरे प्रयास से बचने का भी मामला फिर से उभर कर सामने आता है। विवाद के गुणावगुण के आधार पर निर्णय देने की न्यायालय की अधिकारिता तभी तक रहेगी यदि न्यायालय यह समझता है कि माध्यस्थम करार पूर्णतया वैध है।"

आयोग के विचार में, उपर्युक्त कारण बहुत सार्थक हैं और इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। रसैल का कहना है कि इन शब्दों में विवासित रूप से एक ऐसी स्थिति भी सम्मिलित है जहां कोई माध्यस्थम करार ही नहीं है अथवा जहां वह अवैध है अथवा ऐसा है जहां आवेदनकर्ता (विपक्ष) पक्षकार नहीं है (रसैल, आर्बिट्रेशन एक्ट (1999) (देखें 7.013, 7.004, 7.007 और 7.006)। यह एक ऐसा भी मामला हो सकता है जहां न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष आवेदनकर्ता या याचिकादाता माध्यस्थम खंड के लिए पक्षकार ही नहीं है। पुराने अधिनियम की धारा 20 के अधीन हमारे उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार इस अधिकारिता में वे सभी

मामले भी आ जाते हैं जहां कोई विवाद ही विद्यमान नहीं है। इन सभी परिस्थितियों में क्या न्यायपालिका को कोई अधिकार नहीं रह जाता है? वास्तव में, यदि न्यायालय उस स्तर पर कोई निर्णय नहीं करता और केवल माध्यस्थम् अधिकरण ही सर्वप्रथम इन मामलों पर निर्णय करता है, तो अधिकरण का निर्णय अन्ततः न्यायालय के निर्णय के अधीन ही रहेगा। क्या इन मामलों को इस स्तर पर निर्णीत कर देने से समय और धन की बचत नहीं होगी अथवा क्या हम इस स्तर पर विलम्ब से बचने के लिए उदार उपबंध बना सकते हैं?

1940 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि न्यायालय द्वारा किसी आवेदन को माध्यस्थ के लिए निर्दिष्ट किए जाने से पूर्व, न्यायालय माध्यस्थम् खंड की विद्यमानता, वैधता अथवा वादी पर उसके बाध्यकारी स्वरूप, अथवा क्या आवेदक खंड द्वारा बाध्य एक पक्षकार है अथवा क्या विवाद विद्यमान है आदि के बारे में निर्णय कर सकेगा (देखें भारत संघ बनाम बिडला कॉटन स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स, ए०आई०आर० 1997 सु०को० 6, एण्डरसन राईट लिमिटेड बनाम मोलाश एण्ड कम्पनी, ए०आई०आर० 1955 सु०को० 53, आई०टी०सी० लिमिटेड बनाम जार्ज जोजेफ फर्नांडीज, ए०आई०आर 1989 सु०को० 839, सिक्योरिटी एण्ड फाईनेन्स (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम गुरचरन सिंह 1969 सु०को० डब्ल्यू० आर०877)। परन्तु संभवतया अब धारा 5 को ध्यान में रखते हुए जब इन मामलों पर निर्णय करने की न्यायालय को शक्ति प्राप्त नहीं होगी, उसकी 1996 के अधिनियम की धारा 8 के अधीन कोई अधिकारिता नहीं होगी।

2.4.6 परिस्थितियां, जिनके प्राथमिक मामलों का निर्णय धारा 8 के अधीन किया जाएगा:

बम्बई में आयोजित हुई गोष्ठी में उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीशों द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि अधिनियम की धारा 8 और धारा 11 के अन्तर्गत इस बारे में स्थिति एक समान होनी चाहिए। उन्होंने प्रस्ताव किया है कि धारा 8 और धारा 11 के अधीन अधिकारिता संबंधी प्रश्नों का निर्णय करने का न्यायालयों को स्वविवेकाधिकार दिया जाना चाहिए यदि सभी तथ्य स्वीकार कर लिए जाए और विवादित न हों और यदि मौखिक साक्ष्य न दिया जाना हो और अनावश्यक विलम्ब होने की कोई संभावना न हो। उन्होंने न्यायिक प्राधिकारी को भी, धारा 8 के अधीन ऐसा ही स्वविवेकाधिकार दिए जाने का प्रस्ताव किया था। वास्तव में, मॉडल विधि तथा न्यूयार्क कन्वेंशन में न्यायिक प्राधिकारी के लिए विकल्प नहीं छोड़ा गया है, उन्हें अधिकारिता संबंधी प्रश्नों पर आरंभिक स्थिति में ही निर्णय करना होगा।

अतः हम जो प्रस्ताव कर रहे हैं उससे मॉडल विधि के तथा न्यूयार्क कन्वेंशन 1958 के अनुच्छेद में उपबंधित व्यवस्था में सुधार आएगा क्योंकि हमने इन मामलों को प्रारंभिक स्तर पर ही निर्णीत करने के लिए न्यायिक प्राधिकारी को बाध्यकारी नहीं बनाया है परन्तु हमने इन मामलों को निर्णय के लिए न्यायिक प्राधिकारी को विवेकाधिकार देने का प्रस्ताव किया है यदि दस्तावेज तथा तथ्य स्वीकार कर लिए गए हों और किसी मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता न हो और यदि जांच कार्य में विलम्ब होने की संभावना न हो और यदि न्यायिक प्राधिकरण यह समझता हो कि इससे खर्चों में कमी आएगी। इस उदार प्रक्रिया को धारा 11 में पुरःस्थापित करने का प्रस्ताव है। आज माध्यस्थम पर भारी खर्चा आता है। यदि किसी साधारण से मामले का भी निर्णय किया जाना है तो भी माध्यस्थम अधिकरण को मामले की तर्कों के पूरा होने से पहले भी, कम से कम छः बार सूचीबद्ध करना होता है। ऐसे मामलों में जहां मध्यस्थों की संख्या तीन है प्रत्येक स्थगन पर एक लाख रुपये का खर्चा आता है। इन खर्चों से बचने के लिए हमने इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 32 (2) में उपबंधित प्रक्रिया को अपनाने का प्रस्ताव किया है कि न्यायालय धारा 8 के स्तर पर ही इन मामलों का तभी निर्णय कर सकेगा जबकि तथ्य और दस्तावेज विवादित न हों और यदि यह पाया जाता है कि मौखिक साक्ष्य आवश्यक नहीं है। अतः हम मॉडल विधि के अनुच्छेद 8 की भांति अपने अधिनियम की धारा 8 में अधिकारिता संबंधी प्रश्नों पर निर्णय करने का बाध्यकारी उपबंध सम्मिलित न करने का प्रस्ताव करते हैं और हम धारा 11 में उदार प्रावधान सम्मिलित करने का प्रस्ताव कर रहे हैं। अतः यहां हमारा दृष्टिकोण मॉडल विधि के अनुच्छेद 8 और न्यूयार्क कन्वेंशन, 1958 से बेहतर है और इससे माध्यस्थम पर आने वाली लागत में पर्याप्त रूप से कमी आएगी। इन मामलों पर तभी निर्णय होगा जब यदि संबंधित दस्तावेज विवादित न हों और मौखिक साक्ष्य आवश्यक न हो और मामले उठाने में कोई विलम्ब न हो और न्यायालय यह महसूस करे कि इससे खर्चे में कमी आएगी। इस संबंध में हमारी सिफारिशें धारा 8 के अधीन चर्चा के अन्त में दी गई हैं।

अतः धारा 8 को ये शब्द जोड़कर "जब तक कि यह पाया जाता है कि करार अकृत और शून्य, अप्रवर्तनीय या निष्पादित किए जाने योग्य नहीं है," मॉडल विधि के अनुरूप बनाने का प्रस्ताव किया गया है या कोई करार विद्यमान नहीं है या धारा 8(1) के अन्त में कोई विवाद विद्यमान नहीं है, इन प्रश्नों का निर्णय,

जैसाकि ऊपर बताया गया है, विवेकाधिकार के अधीन होगा और ये प्रस्ताव धारा 8 की प्रस्तावित उपधारा (4) और (5), के नीचे दिए गए खंडों में अन्तर्विष्ट हैं।

2.4.7 धारा 8 के अधीन किए गए निर्देश की स्थिति में कार्यवाही के रोकादेश के लिए उपबंध की व्यवस्था करना

गोष्ठियों में एक यह प्रश्न उठाया गया कि धारा 8 के अधीन माध्यस्थम के लिए किए गए निर्देश की स्थिति में न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष दायर किए गए किसी आवेदन का क्या होगा। आयोग का विचार है कि एक इस आशय की पृथक उपधारा जोड़ी जानी चाहिए कि धारा 8 के अधीन निर्देश किए जाने की स्थिति में न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष कार्यवाही रोकादेश के अधीन रहेगी और रोकादेश अधिकारिता संबंधी प्रश्नों पर न्यायिक प्राधिकरण के आदेश के परिणाम के अधीन रहेगा। उदाहरण के लिए, यदि करार को शून्य या अविद्यमान, या अप्रवर्तनीय घोषित कर दिया जाता है, न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष कार्यवाही का निपटान गुण-दोषों के आधार पर किया जाता रहेगा।

2.4.8 धारा 8 (3)

में कहा गया है कि इस धारा की उपधारा (1) के अधीन दिए गए आवेदन के उपरान्त भी और न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष मामले के लम्बित रहते हुए भी माध्यस्थम कार्यवाही आरम्भ की जा सकेगी या जारी रह सकेगी या माध्यस्थम पंचाट दिया जा सकेगा।

ऐसे कतिपय मामले हुए हैं जहां न्यायिक प्राधिकरण ने मामले को माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट किया है या विवाद को माध्यस्थों के लिए निर्दिष्ट करने का निर्देश किया है, किसी एक पक्षकार द्वारा पहले नियुक्त किए गए मध्यस्थ, विवाद के विषय में कार्यवाही जारी रखते हैं।

धारा 8 की उपधारा (3) के नीचे इस आशय का एक प्रावधान जोड़कर इस समस्या का समाधान करने का प्रस्ताव है कि न्यायिक प्राधिकरण का निर्णय पक्षकारों के लिए बाध्यकर होगा और अन्यथा नियुक्त किए गए मध्यस्थों को अपने कार्य निष्पादन को बंद करना होगा। उस पक्षकार सहित जो पहले ही माध्यस्थम अधिकरण नियुक्त कर चुका है, पक्षकारों को सुनने के पश्चात् पारित न्यायिक प्राधिकारी के आदेश को प्राथमिकता दी जाएगी।

यह ठीक है कि यदि न्यायिक प्राधिकरण यह मानता है कि कोई माध्यस्थम करार अथवा विवाद नहीं है, यह कि करार अकृत और शून्य है आदि, वहां यदि माध्यस्थम कार्यवाही पहले ही शुरू हो चुकी है उसे समाप्त करना होगा।

उपर्युक्त प्रावधान धारा 8 (3) के परन्तुक के रूप में दिए गए—

"प्रस्तावित धारा 8(6) भी यहां उद्धृत की गयी है परन्तु इसके बारे में पैरा 2.7.1 में पृथक रूप से चर्चा की गयी है।"

2.4.9 धारा 8 के लिए प्रस्तावित संशोधन निम्नलिखित है:—

मूल अधिनियम की धारा 8 में,—

(क) उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्—

"(1) उपधारा (4) तथा (5) के उपबंधों के अध्यधीन एक न्यायिक प्राधिकारी जिसके समक्ष किसी ऐसे मामले में कार्यवाही संस्थित की जाती है जो एक माध्यस्थम करार का विषय है, यदि कोई पक्षकार उसके बाद ऐसा आवेदन नहीं करता है जब विवाद के सार पर वह अपना प्रथम कथन प्रस्तुत कर रहा हो तो, जब तक कि ऐसे न्यायिक प्राधिकारी को प्रारंभिक विवाधक के रूप में उपधारा (4) में निर्दिष्ट किसी प्रश्न का निर्णय न करना हो, वह पक्षकारों को माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट कर सकता है।

(1क) न्यायिक प्राधिकारी जिसके समक्ष कार्यवाही संस्थित की जाती है, उपधारा (4) में दिए गए प्रश्नों का निर्णय करने के उद्देश्य से कार्यवाही को रोक सकेगा और इस प्रकार दिया गया रोकादेश उक्त उपधारा तथा उपधारा (5) के अधीन पारित किए गए आदेशों के परिणामों के अध्यधीन होगा।"

(ख) उपधारा (3) के अन्त में निम्नलिखित परन्तुक अन्तःस्थापित किया जाएगा, अर्थात्—

"परन्तुक यह कि इस प्रकार प्रारम्भ हुई माध्यस्थम कार्यवाही समाप्त समझी जाएगी यदि न्यायिक प्राधिकारी, सभी पक्षों को सुनने के पश्चात्, उपधारा (4) के अधीन इस आशय का आदेश पारित करता है, कि—

(क) माध्यस्थम के लिए निर्देश उस उपधारा के खंड (क) से (घ) में विनिर्दिष्ट किसी प्रश्न पर उसके निर्णय के आधार पर नहीं किया जा सकता; अथवा

(ख) यद्यपि माध्यस्थम के निर्देश किया जाना है, किंतु कार्यवाही एक भिन्न माध्यस्थम अधिकरण द्वारा की जाएगी।"

(ग) उपधारा (3) के पश्चात निम्नलिखित उपधाराएं अन्तःस्थापित की जाएंगी, अर्थात्—

"(4) जहां किसी पक्षकार द्वारा न्यायिक प्राधिकरण को एक आवेदन दिया गया है जिसमें निम्नलिखित प्रश्न उठाया गया हो कि—

(क) कोई विवाद विद्यमान नहीं है; या

(ख) माध्यस्थम करार अथवा उसका कोई खण्ड अकृत तथा शून्य अथवा अप्रवर्तनीय है; या

(ग) माध्यस्थम करार निष्पादित किए जाने के अयोग्य है; या

(घ) माध्यस्थम करार विद्यमान नहीं है।

तो न्यायिक प्राधिकारी उपधारा (5) के उपबंधों के अधीन रहते हुए उसका विनिश्चय कर सकेगा और समुचित आदेश पारित कर सकेगा

(5) जहां न्यायिक प्राधिकरण यह पाता है कि उपधारा (4) में उल्लिखित प्रश्नों पर इस कारण से विनिश्चय नहीं किया जा सकेगा कि,

(क) संबंधित तथ्य अथवा दस्तावेज विवादित है; या

(ख) मौखिक साक्ष्य लिया जाना आवश्यक है; या

(ग) इन प्रश्नों की जांच करने से मामले को माध्यस्थम के लिए निर्देशित करने में विलम्ब की संभावना है; या

(घ) प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए अनुरोध करने में अनावश्यक विलम्ब किया गया है; या

(ङ) प्रश्न का विनिश्चय करने से माध्यस्थम पर आने वाली खर्चों में पर्याप्त बचत होने की संभावना नहीं है; या

(च) इस बात के लिए पर्याप्त कारण नहीं है कि इन प्रश्नों का निर्णय इस स्तर पर ही क्यों किया जाए,

वहाँ वह उक्त प्रश्नों पर निर्णय देने से इंकार कर सकेगा और उक्त प्रश्नों को भी निर्णय के लिए माध्यस्थ अधिकरण को निर्देशित कर सकेगा।

(6) यदि न्यायिक प्राधिकारी ने यह विनिश्चय करता है कि यद्यपि माध्यस्थम करार विद्यमान है परन्तु वह अकृत और शून्य है अथवा अप्रवर्तनीय अथवा निष्पादित किए जाने के अयोग्य है और विधिक कार्यवाही को रोकने से इंकार करता है तो माध्यस्थम करार में कोई भी इस आशय का उपबंध, कि पंचाट किसी भी मामले के बारे में विधिक कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए एक पूर्ववर्ती शर्त है, उन कार्यवाहियों के बारे में किसी प्रकार से भी प्रभावी नहीं होगा।"

2.4.10. प्रस्तावित धारा 8 (6) स्कोट बनाम एवरी खंड

स्कोट बनाम एवरी खंड एक ऐसा खंड है जिसमें कोई भी विधायी कार्यवाही आरम्भ करने के लिए पहले पंचाट प्राप्त कर लेना आवश्यक है। ऐसे खंड का आशय यह है कि पक्षकार माध्यस्थम खंडों की उपेक्षा करके सीधे न्यायालय में न चले जाएं ताकि विरोधी पक्ष को किसी माध्यस्थम खंड की विद्यमानता पर आधारित अभिवचन करना पड़े। इंग्लैण्ड तथा भारत दोनों ने ही ऐसे खंडों को सही माना है।

तथापि, 1940 के अधिनियम की धारा 19 में न्यायालय द्वारा कतिपय परिस्थितियों में माध्यस्थम करार का पर्यवेक्षण करने के लिए उपबंध किया गया था। अतः पुराने अधिनियम को ऐसी परिस्थिति से भी निपटना पड़ा था जहां माध्यस्थम खंड का न्यायालय द्वारा अधिक्रमण कर दिया गया था, क्योंकि उस परिस्थिति में पक्षकार पंचाट प्राप्त नहीं कर सकता था। अतः पहले पंचाट प्राप्त करने की शर्त पूरी कर पाना असंभव होता। इस

प्रकार पुराने अधिनियम की धारा 36 में यह उपबंधित था कि यदि माध्यस्थम करार का अधिकमण कर दिया जाता है तो न्यायालय स्कॉट बनाम एवरी खंड का भी अधिकमण कर देगा। पुराने अधिनियम की धारा 37 (2) में आगे यह उपबंध भी किया गया था कि जहां तक समय सीमा का संबंध है, एक बार माध्यस्थम खंड और स्कॉट बनाम एवरी खंडों के अव्यवहारी हो जाने पर, अवधि की गणना वाद हेतुक की तिथि से की जाएगी जैसाकि सामान्यतया की जाती है। इस प्रकार धारा 37(2) धारा 36 की परिणामिक थी जो स्वयं में भी पुराने अधिनियम की धारा 19 के अधीन माध्यस्थम खंड के अधिक्रमण आदेश की पारिणामिक थी।

1996 के अधिनियम में भिन्नता है और उसमें माध्यस्थम खण्ड का अधिक्रमण करने के लिए पुराने अधिनियम की धारा 19 का समरूपी उपबंध नहीं है। इस प्रकार विधानमंडल ने धारा और धारा 37(2) के अनुरूप प्रावधान करने वाला उपबंध छोड़ दिया। यह बात समझ में आती है।

परन्तु इस धारा पर भी, जो एक ऐसी ही अन्य स्थिति का निर्देश करती है जो 1996 के मूल अधिनियम की धारा 8 में संशोधन के लिए हमारे द्वारा दिए गए सुझावों से उत्पन्न हो सकती है जिससे न्यायिक प्राधिकारी को इन प्रश्नों पर निर्णय करने का अधिकार प्राप्त हो जाएगा कि (एक) क्या कोई माध्यस्थम करार अकृत और शून्य है, (दो) अप्रवर्तनीय है या, (तीन) प्रवर्तन के अयोग्य है या (चार) कोई विवाद विद्यमान है या (पांच) माध्यस्थम खण्ड विद्यमान है। इन अनिश्चित परिस्थितियों में यदि (एक), (दो), और (तीन) के अधीन न्यायिक प्राधिकारी द्वारा यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि करार जो विद्यमान है अकृत और शून्य है या अप्रवर्तनीय या प्रवर्तन योग्य नहीं है, तब माध्यस्थम करार किसी प्रकार सहायक नहीं होगा और प्रारम्भ में पंचाट प्राप्त करना संभव नहीं होगा जैसाकि स्कॉट बनाम एवरी खण्ड में अपेक्षा की गई है। उस स्थिति में इस आशय का एक उपबंध करना होगा कि न्यायिक प्राधिकारी धारा 8 के अधीन विधिक कार्यवाही को रोकने से इंकार कर सकेगा और मामले का उसके गुण-दोष के आधार पर निर्णय करेगा। दूसरे शब्दों में, क्योंकि उपर्युक्त (एक), दो और (तीन) में उल्लिखित अनिश्चित परिस्थितियों में पंचाट पारित करना संभव नहीं है, यद्यपि माध्यस्थम खंड विद्यमान रहता है, ऐसा उपबंध करना आवश्यक है कि पूर्व शर्त के रूप में पंचाट प्राप्त करने का उपबंध लागू नहीं होगा जैसा कि स्कॉट बनाम एवरी खण्ड में व्यवस्था दी गई है। उपर्युक्त उल्लिखित (एक), (दो) और (तीन) में बतायी गई अनिश्चित परिस्थितियों में स्कॉट बनाम एवरी खण्ड को अकृत और शून्य बनाने का उपबंध करना होगा जैसाकि इंग्लिश अधिनियम, 1996 में दिया गया है।

इंग्लिश अधिनियम, 1996 में प्रस्तावित धारा 8 जैसा ही उपबंध विद्यमान है जो न्यायालय को यह निर्णय करने का अधिकार देता है कि कोई माध्यस्थम करार अकृत और शून्य या अप्रवर्तनीय है या प्रवर्तन के योग्य नहीं है। यदि इन तर्कों को स्वीकार कर लिया जाए, न्यायालय विधिक कार्यवाहियों को रोकने से इंकार कर सकेगा और कार्यवाहियों पर उनके गुण-दोषों के आधार पर निर्णय दे सकेगा। अतः इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 9(5) में एक विशेष उपबंध किया गया है कि यदि माध्यस्थम करार इनमें से किसी आधार पर अप्रवर्तनीय हो जाता है तो स्कॉट बनाम एवरी खण्ड लागू नहीं होगा। इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 9(5) में निम्नलिखित व्यवस्था की गई है:-

> "धारा 9(5) यदि न्यायालय विधिक कार्यवाहियों को रोकने से इंकार कर देता है तो किसी मामले की विधिक कार्यवाही संस्थित करने हेतु ऐसा उपबंध कि पंचाट एक पुरोभाव्य शर्त है, कार्यवाहियों के संबंध में प्रभावी नहीं होगा।"

अतः उपर्युक्त (एक), (दो) और (तीन) में उल्लिखित मामलों का निर्णय करने की शक्ति प्रदान करने वाली धारा 8 का संशोधन करने वाले प्रस्ताव की दृष्टि से, इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 9(5) जैसा उपबंध करना आवश्यक हो जाता है जिसमें यह व्यवस्था हो कि यदि न्यायिक प्राधिकरण यह निश्चित करे कि करार अकृत और शून्य, अप्रवर्तनीय तथा प्रवर्तन के योग्य नहीं है तो वह विधिक कार्यवाहियों को उनके गुण-दोषों के आधार पर निर्णय कर सकेगा और कार्यवाहियों को रोकने से इंकार कर सकेगा और यह कि पूरोभाव्य शर्त के रूप में पंचाट प्राप्त करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तदनुसार जैसाकि पैरा 2.4.9 में कहा जा चुका है, धारा 8 में उपधारा (6) अन्तःस्थापित करके ऐसा उपबंध करने का प्रस्ताव किया जाता है।

2.4.11 धारा 8 के अधीन उत्पन्न मामलों में पंचाट को अपास्त करने हेतु आवेदनों सहित सभी पश्चातवर्ती आवेदनों को प्रस्तुत करने के लिए एक फोरम के बारे में धारा 42 में पृथक उपबंध करने की आवश्यकता

प्रस्तावित धारा 42(3):

यहां हम 1996 के अधिनियम में रह गई एक कमी को पूरा करने का प्रयास कर रहे हैं क्योंकि यह ध्यान नहीं रखा गया था कि कार्रवाई प्रधान जिला न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालयों में जा सकती है। प्रश्न यह उठता है कि यदि माध्यस्थम अधिकरण द्वारा आवेदन की अनुमति दे दी जाती है और पंचाट पारित कर दिया जाता है तब क्या किया जाए और आपत्तियां या पश्चातवर्ती आवेदन कहां प्रस्तुत किए जाएं। इस पहलू पर धारा 42 पर की जाने वाली चर्चा में विचार किया जाएगा।

पुराने 1940 के अधिनियम के अधीन, धारा 2 (ड.) की अति सामान्य परिभाषा की दृष्टि से, पंचाट के प्रति आपत्तियां अधिनियम की धारा 39 के अधीन उसी न्यायालय में संस्थित की जा सकती हैं जिसने विधिक कार्यवाहियों को रोका था और मामला माध्यस्थम के लिए निर्देशित किया था। यहां धारा 2(1) (ड.) में न्यायालय की परिभाषा एक भिन्न रूप में दी गई है। यदि धारा 8 के अधीन कार्रवाई किसी न्यायिक प्राधिकारी के सम्मुख संस्थित की जाती है, जो प्रधान जिला न्यायालय का अधीनस्थ न्यायालय है, तब क्या होगा।

सर्वप्रथम, प्रथम दृष्टया कोई भी यही सोचेगा कि 1996 के अधिनियम के अधीन पंचाट के प्रति आपत्तियां उसी न्यायिक प्राधिकरण अर्थात अधीनस्थ न्यायालय, के समक्ष संस्थित की जाएंगी जिसने मामला निर्देशित किया था। परन्तु धारा 42 में केवल ऐसे न्यायालय का उल्लेख है जैसाकि धारा 2(1)(ड.) में परिभाषित है। दूसरे, "न्यायिक प्राधिकारी" अर्थ-न्यायिक सांविधिक प्राधिकारी सहित, शब्दों को दिए जाने वाले प्रस्तावित व्यापक अर्थ की दृष्टि से, पंचाट के प्रति आपत्तियां "न्यायिक प्राधिकारी" के सम्मुख दायर किए जाने के लिए निर्देशित करना संभव नहीं होगा, क्योंकि वे सही अर्थ में न्यायालय ही नहीं है और जो केवल अर्ध-न्यायिक सांविधिक प्राधिकारी ही हैं। साथ ही यह देखना भी आवश्यक है कि पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन एक समान रूप से एक ही न्यायालय में प्रस्तुत किए जायें (उस सीमा तक प्रस्तावित धारा 8क के अधीन मामलों को छोड़कर ऐसा ही होगा) हमने धारा 8 के संदर्भ में धारा 42 के अधीन उत्पन्न होने वाले इन दोनों पहलुओं का समाधान करने का प्रस्ताव किया है।

धारा 42 में यह अपेक्षा की गयी है कि यदि कोई आवेदन किसी एक न्यायालय में फाईल किया गया है तब सभी पश्चातवर्ती आवेदन, अधिनियम के अधीन, उसी न्यायालय में फाईल किए जाएंगे। धारा 8 के मामले में, जो किसी न्यायिक प्राधिकारी द्वारा, जिसकी मूल अधिकारिता है, निर्देश के बारे में है, यदि न्यायिक प्राधिकारी प्रधान न्यायालय या प्रधान न्यायाधीश का न्यायालय या मूल अधिकारिता वाला नगर सिविल न्यायालय या उच्च न्यायालय है तो धारा 42 के सभी प्रावधान लागू होंगे। धारा 8 के अधीन कोई कार्रवाई ऐसे न्यायालय के समक्ष भी हुई हो सकती है जो उपर्युक्त प्रधान न्यायालय से निम्नतर स्तर का हो। ऐसी परिस्थिति में हमारा प्रस्ताव है कि पश्चातवर्ती आवेदन, यथास्थिति, जिला या नगर के प्रधान न्यायालय में दायर किए जाने चाहिए जैसाकि ऊपर बताया गया है निम्नतर स्तर के न्यायालय में नहीं। इसी प्रकार यदि प्रारंभिक कार्यवाही जिला उपभोक्ता फोरम या राज्य आयोग या राष्ट्रीय आयोग के समक्ष हुई है, जिन सभी की मूल अधिकारिता है, और जहां प्राधिकारवान अधिकारियों ने माध्यस्थम के लिए निर्देश किया है, वहां सभी पश्चातवर्ती आवेदन उन अधिकरणों के समक्ष दायर नहीं किए जाने चाहिएं जिन्होंने माध्यस्थम के लिए निदेश किए हैं अपितु आवेदन धारा 2(1)(ड.) में परिभाषित न्यायालय में दायर किए जाने चाहिए। इस आशय से, हमने धारा 42 में रह गई एक कमी को दूर किया है और धारा 42 में एक उपधारा अर्थात धारा 42(3) जोडकर स्थिति को स्पष्ट किया है।

धारा 5 के अन्तर्गत हम जो कुछ कह चुके है उसे ध्यान में रखते हुए, धारा 8 में उल्लिखित आवेदनों पर अधिकारिता संबंधी प्रश्नों पर पारित ऐसे आदेशों को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन या लैटर्स पेटेंट या उच्च न्यायालय अधिनियम में या न्यायिक प्राधिकरण के लिए व्यवहार्य किसी विशेष विधि द्वारा उपलब्ध कराए गए किसी उपचार के अधीन चुनौती दिए जाने का प्रश्न ही नहीं उठता। इन सभी उपचारों को वर्जित रखा गया है। ठीक है, जहां न्यायिक प्राधिकारी उच्च न्यायालय के अधीनस्थ है वहां संभवतया भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन आवेदन दायर किया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र आयोग की रिपोर्ट में (देखें पूर्व उद्धृत पैरा 6263) संवैधानिक उपचार की उपलब्धता को स्वीकार किया गया है। अनुच्छेद 227 भी विवेकाधिकार पर निर्भर करता है।

जहां तक धारा 34(1) के अधीन शाखी आवेदनों तथा ऐसे मामलों में अन्य आवेदनों का संबंध है जहां माध्यस्थम के लिए निर्देश धारा 8 के अधीन किया जाता है उसके लिए पैरा 2.30.1 में धारा 42 तथा पैरा 2.30.3 और 2.30.6 में तथा 42 से संबंद्ध उपधारा (3) पर की गई चर्चा देखें।

2.5.1. प्रस्तावित धारा 89क: जहां न्यायालय में कार्यवाहियों के लम्बित रहते पक्षकार विवादों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित करने के लिए सहमत हो जाते हैं वहां निर्देशन के लिए पृथक उपबंध और धारा 42(4) के तत्स्थानी संशोधन।

1940 के अधिनियम की धारा 21 के अधीन एक विशिष्ट प्रावधान था जिसमें कार्यवाहियों के लम्बित रहते हुए, पक्षकारों के सहमत हो जाने पर न्यायालय को विवादों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित करने का अधिकार दिया गया था। वास्तव में, बहुत से मामलों में विचारण न्यायालय अथवा कई वर्ष तक मुकदमा चलते रहने के पश्चात, उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय मामलों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित करते हैं क्योंकि बाद में पक्षकार मुकदमे को शीघ्र निपटाने के विचार से इसके लिए सहमत हो जाते हैं। 1996 के अधिनियम में ऐसा उपबंध न होने से गम्भीर कठिनाइयां पैदा हुई। जैसाकि इस समय स्थित है। धारा 8, 11 और 16 केवल ऐसे मामलों में लागू होती है जहां पक्षकारों को न्यायालय में जाने से पहले ही उनके बीच "माध्यस्थम करार" उपलब्ध हुआ होता है। अब हम ऐसे मामले पर विचार कर रहे हैं जहां पक्षकार न्यायालय में जाने के पश्चात् विवादों का समाधान माध्यस्थम द्वारा कराने के लिए सहमत हो जाते हैं।

आस्ट्रेलियन मॉडल में, निःसंदेह, किसी ऐसी अनिश्चितता का कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं है जहां न्यायालय के समक्ष विधिक कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान किसी भी स्तर पर पक्षकार माध्यस्थम के लिए सहमत होते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि विचारण न्यायालय में मुकदमा लड़ने के पश्चात पक्षकार उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में अपील के स्तर पर माध्यस्थम के लिए जाने का निर्णय कर लेते हैं। ब्रिटिश कोलम्बिया अधिनियम, 1996 (1996 के अधिनियम का प्रारूपण करते समय जिसका अनुसरण किया गया बताया जाता है) (देखें डा॰पी॰सी॰ राव, माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, एक टिप्पणी 1997 संस्करण, पृष्ठ 9) में धारा 36 में 1940 के अधिनियम की धारा 21 के समान धारा 36 अन्तर्विष्ट है जिसका पाठ इस प्रकार है:—

"धारा 36 – न्यायालय आदेश द्वारा निर्देश

(1) न्यायालय किसी भी समय आदेश कर सकेगा कि समस्त मामलों का विचारण, कार्यवाही में उत्पन्न तथ्य का प्रश्न, आपराधिक कार्यवाही के अतिरिक्त, पक्षकारों द्वारा सहमत माध्यस्थ के समक्ष किया जाएगा यदि—

(क) सभी पक्षकार चाहते हों, किसी प्रकार की अक्षमता के कारण नहीं, और सहमत हैं;

(ख) कार्यवाही में ज्यूरी के समक्ष दस्तावेजों की लम्बी जांच पड़ताल अथवा वैज्ञानिक अथवा स्थानीय जांच कराया जाना अथवा न्यायालय द्वारा अपने अन्य साधारण अधिकारियों के माध्यम से जांच करायी जाना अपेक्षित है; या

(ग) विवाद का प्रश्न पूर्णतः या आंशिक रूप से लेखा संबंधी मामले से संबंधित है।"

यद्यपि ऐसे मामले से निपटने के लिए 1996 के अधिनियम में कोई ऐसा उपबंध नहीं है, उच्चतम न्यायालय ने धारा 11 में ऐसी शक्ति विवक्षित मानी है। न्यायालयों में वादों के संस्थित किए जाने के पश्चात माध्यस्थम के लिए किए गए करारों के बारे में कार्यवाही करने के लिए अब एक पृथक उपबंध कराने का प्रस्ताव किया गया है। यह ठीक है कि जैसा कि पीछे बताया जा चुका है, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 89 में जो कुछ प्रस्तावित है उससे यह भिन्न है (वह धारा अभी तक प्रभावी नहीं हुई है)। उस धारा से न्यायालय को यह अनुज्ञा होगी कि यदि न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है कि समाधान के तत्व विद्यमान है तो, पक्षकारों को माध्यस्थम, सुलह अथवा लोक अदालत अथवा किसी मध्यस्थ के लिए निर्देशित कर सकें। धारा 89 पक्षकारों की सहमति पर निर्भर नहीं है।

इस प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय में, इस प्रकार के दो मामले हैं। उच्चतम न्यायालय ने पी॰ आनन्दगजपति राजू बनाम पी॰वी॰जी॰ राजू 2000(4) सु. को. 539-ए.आई.आर 2000 सु.को. 1886 मामले में, जो उसके समक्ष उच्च न्यायालय से अपील में उनके समक्ष आया था, सिविल कार्यवाही निपटायी थी। तमिलनाडु बिजली बोर्ड बनाम सुमथी 2000(4) (एस.सी.सी. 543-ए.आई.आर 2000सु.को. 1603) मामले में उच्च न्यायालय ने रिट याचिका में एक मध्यस्थ नियुक्त किया था जिसमें बिजली से हुई दुर्घटना के कारण हुई मृत्यु के कारण तमिलनाडु बिजली बोर्ड से क्षतिपूर्ति का दावा किया गया था। न्यायालय द्वारा 1996 के अधिनियम के पश्चात् मामला माध्यस्थम के लिए निर्देशित किया गया था और पंचाट पारित हुआ था जो बाद में डिक्री हुआ। इसे उच्चतम न्यायालय में अपील में चुनौती दी गयी। बोर्ड ने यह तर्क दिया कि उच्च न्यायालय द्वारा संविधान के

अनुच्छेद 21 और 226 के आधार पर मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए था। पी० आनन्दगजपति राजू के मामले में दिए गए निर्णय के अनुसरण में यह तर्क रद्द कर दिया गया। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 8 न केवल वाद आरम्भ होने से पूर्व किए गए माध्यस्थम करारों के लिए लागू होती है अपितु वादों या कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान किए गए करारों पर भी लागू होती है।

उक्त सीमा तक समस्या का समाधान हो गया था। परन्तु उच्चतम न्यायालय ने अभी भी यही अभिनिर्धारित किया कि 1996 के अधिनियम की धारा 2(1)(ङ) के अधीन, पंचाट डिक्री को केवल उसी न्यायालय में चुनौती दी जा सकेगी जिस न्यायालय में अनुतोष के लिए वाद दायर किया गया है। इसका परिणाम यह होगा कि धारा 2(1)(ङ) में परिभाषित न्यायालय में मुकद्दमेबाजी फिर से आरम्भ हो जाएगी और फिर यह उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में जाएगी।

परामर्श-पत्र (उपाबंध-II) पर चर्चा के दौरान यह बताया गया था कि 1996 के अधिनियम की धारा 42 में यह अपेक्षा की गयी है कि आगे की कार्यवाही उसी न्यायालय में ले जाई जानी चाहिए और यह कि उच्चतम न्यायालय में उपर्युक्त आनन्दगजपति राजू मामले में यह निर्देश देते समय कि पंचाट धारा 2(1)(ङ) में परिभाषित प्रधान जिला न्यायालय में ही दायर किया जाना चाहिए। इस उपबंध पर ध्यान नहीं दिया।

किसी विवाद में उसके लिए एक पृथक धारा की व्यवस्था करने का निर्णय किया गया है। जिसमें लम्बित विधिक कार्यवाहियों में माध्यस्थम के लिए निर्देश करने का अधिकार होगा अर्थात किसी न्यायालय द्वारा वादों अथवा अपीलों अथवा रिट याचिकाओं को, यदि पक्षकार आवेदन देने के लिए सहमत हों, माध्यस्थम के लिए निर्देशित करने की शक्ति प्राप्त होगी। पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन जिले के प्रधान सिविल न्यायालय या नगर के प्रधान न्यायाधीश के नगर सिविल न्यायालय के समान या अवर न्यायालयों के मामलों को छोड़कर उसी न्यायालय में प्रस्तुत किया जाएगा जिसने माध्यस्थम के लिए निर्देश किया था। ऐसे मामलों में पश्चात्वर्ती आवेदन, पंचाट को अपास्त करने वाले आवेदनों सहित उपर्युक्त प्रधान न्यायालयों में दायर किए जाएंगे। ये मामले प्रस्तावित धारा 8क और धारा 42 के प्रस्तावित संशोधनों के अधीन आएंगे [देखें प्रस्तावित धारा 42(4) और उसके लिए प्रस्तावित स्पष्टीकरण]।

वास्तव में, विधि आयोग की 76वीं रिपोर्ट में, 1940 के अधिनियम की धारा 21 में संशोधन करने के संदर्भ में इस विषय पर चर्चा की गयी थी। आयोग ने सुझाव दिया था कि धारा 21 के शब्द "वाद" का विस्तार करके इसे "वाद या अपील" किया जाना चाहिए। परन्तु अब, तमिलनाडु बिजली बोर्ड के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए यह महसूस किया गया कि पुराने अधिनियम की धारा की भांति एक नया उपबंध होना चाहिए जिसके अन्तर्गत न केवल वाद और अपील अपितु न्यायालयों की वे अन्य विधिक कार्यवाहियां भी आ सकें जहां पक्षकार माध्यस्थम के लिए सहमत होते हों। हम इस लाभ को धारा 8 की भांति अर्ध-न्यायिक प्राधिकरणों के समक्ष कार्यवाहियों को भी दिए जाने के लिए तत्पर नहीं हैं। मूल अधिनियम, 1996 में न्यायिक प्राधिकरण शब्दों का प्रयोग है तथा फेचर इंजीनियर्स (ए.आई.आर 1997 सु.को. 533) के मामले उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत विधि के अर्ध-न्यायिक प्राधिकरणों को धारा 8 के अधीन लेने की अनुमति है। परन्तु, जब हम नए उपबंध का प्रस्ताव कर रहे हैं, हमारा प्रस्ताव नए उपबंध को न्यायालय में कार्यवाही के किसी भी स्तर पर विधिक कार्यवाही तक सीमित रखने का है। प्रस्तावित धारा 8क होगी। "विधिक कार्यवाही" शब्द का अर्थ स्पष्ट करने के लिए, जिसके अन्तर्गत किसी भी स्तर पर न केवल वाद, अपील या अन्य सिविल कार्यवाहियां ही आएंगी अपितु सिविल अधिकारों वाली रिट याचिकाओं की कार्यवाहियां भी आएंगी, धारा 8 के नीचे एक स्पष्टीकरण देने का है।

2.5.2 अतः नई धारा 8क अन्तःस्थापित करने का प्रस्ताव है जो निम्नलिखित है:

"8क. पक्षकार लम्बित विधिक कार्यवाहियों में माध्यस्थम की मांग कर सकेंगे

जहां, यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय में या किसी जिले के मूल अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय में या किसी नगर में मूल अधिकारिता वाले सिटी सिविल न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश के न्यायालय में या समन्वित अधिकारिता वाले किसी न्यायालय या ऐसे प्रधान न्यायालयों के किसी अवर न्यायालय में सभी पक्षकार अपने विवादों के समाधान के लिए कोई माध्यस्थम करार करते हैं, तब वह न्यायालय, जहां उक्त विधिक कार्यवाही लंबित है, माध्यस्थम के किसी पक्षकार द्वारा आवेदन दिए जाने पर, विधिक कार्यवाही के विषय से संबंधित विवादों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित करेगा।

स्पष्टीकरण: इस धारा के प्रयोजनों से "विधिक कार्यवाही" से इस धारा में अल्लिखित न्यायालयों में लंबित पक्षकारों के सिविल अधिकारों से संबंधित कोई कार्यवाही अभिप्रेत है चाहे संस्थित किए जाने के स्तर पर हो या अपील के स्तर पर अथवा पुनरीक्षण के और इसमें सिविल अधिकारों से संबंधित वे कार्यवाहियां भी सम्मिलित हैं जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन उच्च न्यायालय या आगे अपील के रूप में, यदि कोई हो, उच्चतम न्यायालय में संस्थित की गयी हों।"

2.5.3 प्रस्तावित धारा 8क की दृष्टि से धारा 42 (4) में एक विशिष्ट उपबंध करने और दो अपवाद रखने का प्रस्ताव है (देखें पैरा 2.30.4 और 2.30.6)

2.6.1. न्यायालय द्वारा अंतरिम उपाय आदि की मंजूरी: धारा 9, उपधारा (1) से (3) में पुनर्गठित की गई और इसमें उपधारा (4), (5) और (6) जोड़ी गई।

धारा 9 को परिवर्तित करने का प्रस्ताव नहीं है परन्तु इसे पुनर्गठित करने और धारा 9 का दुरुपयोग रोकने के लिए इसमें खण्ड (4), (5) और (6) जोड़ने का प्रस्ताव किया जा रहा है।

1996 के अधिनियम की वर्तमान धारा 9 का पाठ निम्नलिखित है:—

"9. न्यायालय द्वारा अन्तरिम उपाय आदि—

(1) एक पक्षकार माध्यस्थम करार के प्रस्तुत किए जाने के पश्चात किसी भी समय या माध्यस्थम कार्यवाही के दौरान या पहले, लेकिन धारा 36 के अनुसार इसके प्रवर्तनीय हो जाने के पहले न्यायालय के समक्ष एक आवेदन कर सकेगा—

(i) माध्यस्थम कार्यवाही के प्रयोजनों से कि अप्राप्तवय या विकृत चित्त व्यक्ति के लिए एक संरक्षक की नियुक्ति के लिए; या

(ii) निम्नलिखित मामलों में किसी के संदर्भ की कार्यवाही के अन्तरिम उपाय के लिए अर्थात—

(क) किसी भी माल के परीक्षण, अंतरिम अभिरक्षा या विक्रय जो माध्यस्थम करार की विषय-वस्तु है;

(ख) माध्यस्थम विवादास्पद रकम को प्राप्त करने के लिए;

(ग) किसी सम्पत्ति या वस्तु का निरोध, परिरक्षण या निरीक्षण जो माध्यस्थम में एक विवाद की विषय-वस्तु है या जिसके बारे में उसमें कोई भी प्रश्न पैदा हो सकता है और किसी पक्षकार के कब्जे में किसी भी भूमि या इमारत का कार्यभार संभालने के लिए किसी व्यक्ति को उपर्युक्त प्रयोजनों में से किसी के लिए प्राधिकृत करना या किसी भी नमूने के लिए जाने के लिए या किसी भी प्रेक्षण के प्रस्तुत किए जाने के लिए या किसी भी प्रयोग के लिए प्राधिकृत करना जो सम्पूर्ण सूचना या साक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयोजन से आवश्यक या समीचीन हो;

(घ) अंतरिम व्यादेश्या या रिसीवर की नियुक्ति;

(ङ) संरक्षण के ऐसे दूसरे उपाय जो न्यायालय को न्यायपूर्ण एवं सुविधाजनक प्रतीत हों,

और न्यायालय के आदेशों को प्रभावित करने के लिए वैसी शक्ति रखते हो जैसे कि उसे अपने समक्ष किसी कार्यवाही से संबंध में और उसके प्रयोजन से प्राप्त है।

1996 के अधिनियम की धारा 9 माध्यस्थम कार्यवाही के आरम्भ होने से पूर्व, या लम्बित रहने के दौरान या उसके पूरा हो जाने पर अंतरिम उपाय की मंजूरी देने के लिए न्यायालय की शक्ति के बारे में है। इस धारा के बारे में धारा 2(2) पर चर्चा के समय विस्तार से चर्चा की गई है और इसे ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए भी लागू किया गया है जहां माध्यस्थम स्थल भारत से बाहर है या माध्यस्थम स्थल माध्यस्थम करार में विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है। अब हम धारा 9 से संबंधित अन्य पहलुओं पर चर्चा करेंगे।

जहां तक अन्तरिम उपाय की मंजूरी देने वाले न्यायालय का संबंध है, यह वही न्यायालय होगा जो धारा 2(1)(ङ) की परिभाषा में आता है अर्थात किसी जिले में मूल अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय या किसी शहर के प्रधान न्यायाधीश का सिविल न्यायालय या मूल अधिकारिता वाला उच्च न्यायालय।

ऐसे सुझाव दिए गए हैं कि अधिनियम की धारा 9 का क्षेत्र इंग्लिश अधिनियम की धारा 44 के उपबंधों के समान स्तर पर लाया जाना चाहिए। परन्तु ऐसा महसूस किया गया है कि धारा 9(ङ) के इस आशय के उपबंध के कारण कि संरक्षण के ऐसे दूसरे अंतरिम उपाय जो न्यायालय न्यायपूर्ण एवं सुविधाजनक प्रतीत हों, धारा 9 में संशोधन करने की आवश्यकता नहीं रह जाती है परन्तु इसका पुनर्गठन आवश्यक है।

इस समय जो धारा 9 का स्वरूप है उसका अध्ययन करने से पता चलता है कि न्यायालय की व्यापक शक्तियां धारा के अंत में और सीमित शक्तियां धारा के आरम्भ में दी गई है। यह भ्रामक है और इसमें सुधार किया जाना चाहिए। धारा 9 यह दर्शाती है कि धारा में अवधारित "अन्तरिम उपाय" खंड (1) और खण्ड (2) में दिए गए हैं। खण्ड (2) के (क) से (ङ) तक उप-खण्ड है। खंड (2) में "संरक्षण" का निर्देश है और उप-खण्ड (क) से (ङ) तक को शासित करता प्रतीत होता है परन्तु यह एक ऐसा प्रभाव छोड़ता है कि (क) से (ङ) तक के उप-खण्डों में उल्लिखित अन्तरिम उपाय "संरक्षण" तक ही सीमित है अर्थात माध्यस्थम में विवाद की विषय-वस्तु के संरक्षण तक। तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि अधिनियम का आशय यह है कि माध्यस्थम आरम्भ होने से पूर्व या माध्यस्थम के दौरान या पंचाट के पश्चात् और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के अधीन पंचाट के प्रवर्तन से पूर्व के स्तरों पर पक्षकारों के लिए दूसरे पक्ष की अन्य सम्पत्तियों के बारे में आदेश प्राप्त करना, जैसे कुर्की या अस्थायी या अन्तरिम आज्ञापक व्यादेश आवश्यक होगा। वास्तव में, भारत के उच्चतम न्यायालय ने सुन्दरम फाइनेंस लिमिटेड बनाम एन॰ई॰पी॰सी॰ इंडिया लिमिटेड (1) 1999 (2) एस॰सी॰सी॰ 479-ए॰आई॰आर॰ 1999 सु॰को॰ 565, मामले में यह स्वीकार किया है कि धारा 11 के अधीन निर्देश करने के लिए दायर किए गए किसी आवेदन से पूर्व (1940 के अधिनियम के विपरीत) धारा 9 लागू की जा सकती है और रसैल ऑन आर्बिट्रेशन (21वां संस्करण) (1999) का उल्लेख करते हुए कहा है कि धारा 9 के अधीन न्यायालय मरेवा व्यादेश या अन्तरिम आज्ञापक व्यादेश भी मंजूर कर सकता है। यह भी बताया जा सकता है कि विभिन्न प्रकार के अन्तरिम उपाय धारा 41 और 1940 के अधिनियम की अनुसूची-दो से लिए गए हैं। धारा 41 माध्यस्थम कार्यवाही आरम्भ होने से पूर्व न्यायालय को व्यापक शक्तियां प्रदान करती है।

आयोग के विचार में, और जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने कहा है, वर्तमान अधिनियम का आशय 1940 के अधिनियम के अधीन प्रदान की गयी व्यापक शक्तियों को निकालना नहीं है। इस संबंध में धारा 9 के अंत में इंगित किया गया है जहां यह कहा गया है:

> "और न्यायालय को आदेशों को पारित करने के लिए वैसी शक्ति प्राप्त होगी जैसीकि उसे अपने समक्ष किस कार्यवाही के संबंध में और इसके प्रयोजन से प्राप्त है"

ये शब्द पुराने अधिनियम की धारा 41 से लिए गए हैं। धारा 9 के इस भाग में "वही शक्तियां" नामक शब्द आयोग के विचार में न तो निर्देशनीय है और न ही धारा 9 में, इन शब्दों से यह स्पष्ट होता है कि धारा 9 के अधीन न्यायालय को वे सभी शक्तियां प्राप्त होंगी जिनका वह "अपने समक्ष किसी कार्यवाही" के लिए प्रयोग करता है अर्थात सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस स्थान पर यह खण्ड रखा गया है उससे ऐसी धारणा बनने की संभावना रहती है कि "वही शक्तियां" नामक शब्द धारा 9 के खण्ड (2) में (क) से (ङ) तक में उल्लिखित श्रेणियों के लिए निर्देशनीय हैं। धारा 9 की संरचना में यह कमी प्रतीत होती है कि सीमित उल्लिखित शक्तियां धारा के आरम्भ में और व्यापक और विस्तृत शक्तियां धारा के अन्त में निर्दिष्ट की गई हैं। आयोग का विचार है कि धारा 9 के अन्तिम पैरे को उपधारा (2) के रूप में अन्तर्विष्ट करके इसमें सुधार किए जाने की आवश्यकता है।

2.6.2 वर्तमान धारा को निम्नलिखित रूप में पुनर्गठित करने का प्रस्ताव है:

न्यायालय द्वारा अंतरिम उपाय आदि:—

> "9 (1) एक पक्षकार माध्यस्थम पंचाट के प्रस्तुत किए जाने के पश्चात किसी भी समय या माध्यस्थ कार्यवाही के दौरान या पहले, लेकिन धारा 36 के अनुसार इसके प्रवर्तनीय होने से पहले न्यायालय के समक्ष अंतरिम उपायों के लिए आवेदन कर सकेगा।
>
> (2) न्यायालय को उपधारा (1) के अधीन आदेश पारित करने की वही शक्तियां प्राप्त होंगी जो उसे उसके समक्ष किसी कार्यवाही के संबंध में और इसके प्रयोजन के लिए प्राप्त हैं।

(3) कोई पक्षकार, विशेष रूप से और उपधारा (2) पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, न्यायालय में निम्नलिखित में से किसी के लिए आवेदन कर सकेगा, अर्थात्:—

(क) मध्यस्थम कार्यवाही के प्रयोजन से किसी अप्राप्तवय या विकृत चित्त व्यक्ति के लिए एक संरक्षक की नियुक्ति करने के लिए;

(ख) निम्नलिखित में से किसी मामले के संबंध में संरक्षण के अन्तरिम उपाय के लिए, अर्थात्—

(i) किसी भी माल के परिरक्षण, अंतरिम अभिरक्षा या विक्रय जो मध्यस्थम करार की विषय-वस्तु है;

(ii) माध्यस्थम विवादग्रस्त रकम को प्राप्त करने के लिए;

(iii) किसी सम्पत्ति या वस्तु का निरोध, परिरक्षण या निरीक्षण जो माध्यस्थम में एक विवाद की विषय-वस्तु है या जिसके बारे में कोई भी प्रश्न उत्पन्न पैदा हो सकता है और किसी पक्षकार के कब्जे में किसी भी भूमि या इमारत का कार्यभार संभालने के लिए किसी भी व्यक्ति को उपर्युक्त प्रयोजनों में से किसी के लिए प्राधिकृत करना या किसी भी नमूने के लिए जाने के या किसी भी प्रेक्षण के प्रस्तुत किए जाने के लिए या किसी भी प्रयोग के लिए जाने के लिए प्राधिकृत करना जो सम्पूर्ण सूचना या साक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयोजन से आवश्यक या समीचीन हो;

(iv) अंतरिम व्यादेश या रिसीवर की नियुक्ति;

(ग) संरक्षण के ऐसे दूसरे अंतरिम उपाय जो न्यायालय को न्यायपूर्ण एवं सुविधाजनक प्रतीत हों।

2.6.3 धारा 9 के अधीन एक अन्य पहलू प्रक्रिया महत्व का है। यदि अंतरिम आदेश कार्यवाहियों के आरम्भ होने से पूर्व किए जाते हैं तो क्या उन्हें संदेय जारी रहने दिया जाएगा चाहे पक्षकार जिसने अपने पक्ष में आदेश प्राप्त किया है, न्यायोचित समय सीमा में धारा 1 के अधीन मध्यस्थ की नियुक्ति कराने के लिए कार्यवाही नहीं करता है।

ऐसी किसी स्थिति को स्पष्ट करने के लिए धारा 9 में एक उपबंध अन्तःस्थापित करने का प्रस्ताव किया गया है जिसमें न्यायालय से यह अपेक्षा की गयी है कि वह मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए धारा 11 के अधीन अवधारित किए गए कदम उठाने के लिए धारा 9 के अधीन आवेदन करने के लिए एक विशिष्ट समय सीमा निर्धारित करेगा और यह शर्त भी निर्धारित करेगा कि यदि निर्धारित समय सीमा में ऐसे कदम नहीं उठाए गए तो स्वीकृत किए गए अंतरिम निदेश आतिल माने जाएंगे जब तक कि निर्धारित समय सीमा आगे नहीं बढ़ाई जाती। न्यायालय को, यदि आवश्यक हो, प्रत्यास्थापन आदेश पारित करने की शर्तें भी देने का प्रस्ताव किया गया है। इसलिए धारा 9 की प्रस्तावित उपधारा (1), (2) और (3) के पश्चात् उपधारा (4), (5) और (6) अन्तःस्थापित करने का भी प्रस्ताव किया गया है जिनका पाठ नीचे दिया जा रहा है:—

"(4) जहां कोई पक्षकार माध्यस्थम आरम्भ होने से पूर्व अंतरिम उपायों की मंजूरी के लिए उपधारा (1) के अधीन आवेदन करता है, तो न्यायालय उस पक्षकार को, जिसके पक्ष में अंतरिम उपाय की स्वीकृति दी गयी है, धारा 11 में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के लिए आदेश पारित होने की तिथि से 30 दिन के भीतर आवश्यक कदम उठाएगा।

(5) न्यायालय यह निदेश दे सकेगा कि उपधारा (4) में विनिर्दिष्ट 30 दिन की अवधि के भीतर यदि ऐसे कदम नहीं उठाए जाते हैं तो उपधारा (2) और (3) के अधीन स्वीकृत अंतरिम उपाय उक्त अवधि के पूरा हो जाने पर आतिल समझे जाएंगे।

परन्तु यह कि न्यायालय कदम उठाने में विलम्ब के लिए पर्याप्त कारण दर्शाए जाने पर उक्त अवधि का विस्तार कर सकेगा।

(6) जहां अंतरिम उपाय स्वीकृत करने वाला कोई आदेश उपधारा (5) के अधीन आतिल हो जाता है वहां न्यायालय प्रत्यास्थापन के लिए ऐसे आदेश पारित कर सकेगा जो वह पक्षकार के विरुद्ध, जिसके पक्ष में इस धारा के अधीन अंतरिम उपाय स्वीकृत किया गया था, उचित समझे।

एक यह सुझाव दिया गया था कि धारा 11 के स्तर पर अर्थात् धारा 2(1)(ङ) न्यायालय स्वमेव ही मध्यस्थ नियुक्त करने के लिए सक्षम होना चाहिए। यह बताया गया कि पक्षकारों को धारा 11 के अधीन उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में भेजे जाने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें अतिरिक्त व्यय करना पड़ेगा और धारा 11 के अधीन नियुक्ति के प्रयोजन से उच्च न्यायालय तक यात्रा करनी पड़ेगी यदि नियुक्ति में कोई सहमति नहीं हो पाती है।

आयोग का विचार है कि यह बहुत ही तर्कसंगत है परन्तु अब 1996 के अधिनियम की योजना में परिवर्तन करना संभव नहीं है। असहमति की स्थिति में पक्षकारों को धारा 11 के अधीन नियुक्ति के लिए, यथास्थिति, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या भारत के मुख्य न्यायाधीश के पास जाना पड़ेगा। इसलिए, हम न्यायालय द्वारा निदेश किए जाने के लिए धारा 11 में कोई उपबंध कर सकने की स्थिति में नहीं हैं जैसाकि धारा 2(1)(ङ) में परिभाषित किया गया है।

एक यह सुझाव दिया गया है कि धारा 9 के अधीन कार्यवाही के स्तर पर भी न्यायालय को अधिकारिता संबंधी प्रश्न पर, यदि उठाया जाए, पहले निर्णय करने का अधिकार होना चाहिए। ब्लिपफ्क फाइनेंस लिमिटेड बनाम एलाइड रैसिन्स एण्ड कैमिकल्स लिमिटेड 2000 सी एल सी 293 (कलकत्ता) मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि धारा 9 के प्रवर्तन के लिए माध्यस्थम करार का होना आवश्यक है विवाद का विद्यमान होना नहीं। आयोग के विचार में, न्यायालय के लिए धारा 9 के अधीन अंतरिम उपाय की स्वीकृति देने से पूर्व अधिकारिता संबंधी प्रश्नों पर प्राथमिक प्रश्नों के रूप में निर्णय करना आवश्यक नहीं है। क्योंकि अंतरिम उपाय की स्वीकृति देना स्वविवेक पर निर्भर है और इस स्वविवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, यह समझा जाता है कि न्यायालय अधिकारिता संबंधी प्रश्न पर प्रथम दृष्टया मामला बनता है या नहीं सहित अन्य विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखता है। इसलिए, इस बारे में कोई उपबंध करने की आवश्यकता नहीं है।

2.7.1. प्रस्तावित धारा 10क, धारा 11(ङ क) और धारा 13–कारोबारी संबंध रखने वाले किसी पक्षकार के कर्मचारी या किसी व्यक्ति का मध्यस्थ होने के लिए अनर्हर होना:

धारा 13 पर हुई चर्चा के दौरान यह एक ऐसा विषय रहा था जिस पर सदस्यों द्वारा दृढ़ तथा भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किए गए। यह बताया गया था कि सरकार सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों तथा सांविधिक निगमों के साथ होने वाली संविदा में एक इस आशय का खण्ड जोड़ना सामान्य बात है कि मध्यस्थ सदैव ही, यथास्थिति, सरकार या सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम या सांविधिक निगम का कोई कर्मचारी होगा। वास्तव में, कतिपय संविदाओं में यह कहा जाता है कि यदि विभाग का कर्मचारी नहीं होगा तो माध्यस्थम ही नहीं होगा। यह भी बताया गया है कि कर्मचारी को मध्यस्थ नियुक्त करने की यह पद्धति अधिनियम की धारा 18 को ध्यान में रखते हुए समाप्त करनी होगी जिसमें पक्षकारों के साथ 'समान व्यवहार' की बात कही गयी है। धारा 18 का पाठ इस प्रकार है:—

> "धारा 18: पक्षकारों का समान व्यवहार: पक्षकारों के साथ समानता का व्यवहार किया जाएगा और प्रत्येक पक्षकार को अपने मामले को प्रस्तुत करने का पूर्ण अवसर दिया जाएगा।

धारा का पहला भाग सामान्य समानता का उल्लेख करता है और वह दूसरे भाग से पूर्णतया स्वतंत्र है जिसमें माध्यस्थम के दौरान समान अवसर की बात कही गयी है।

यह सत्य है कि 1940 के अधिनियम के अधीन उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि के अन्तर्गत यदि पक्षकार यह जानते हुए सहमत हो जाते हैं कि उनमें से एक का कर्मचारी मध्यस्थ होगा तो पक्षकार स्वतंत्रता न होने के आधार पर मध्यस्थ को चुनौती नहीं दे सकेंगे (देखें सैक्रेट्री बनाम मुनीस्वामी 1988 एस॰सी॰सी॰ 651 और नान्दयाल कारपोरेशन स्पिनिंग मिल्स बनाम के॰वी॰ मोहन, 1993 (2) एस॰सी॰सी॰ 654, यह पहले इंग्लिश विधि भी थी।

परन्तु यह बताया गया है कि यू॰के॰ एक्ट 1950 की धारा 24 में न्यायालय को राहत मंजूर करने की शक्ति दी गयी थी जहां यह महसूस किया गया था कि माध्यस्थम निष्पक्ष नहीं है और निष्पक्ष नहीं हो सकेगा। धारा 24(1) का पाठ निम्नलिखित है:—

> "धारा 24(1) जहां किन्हीं पक्षकारों के बीच किसी करार में यह प्रावधान होता है कि उनके बीच भविष्य में उत्पन्न होने वाले विवाद करार में उल्लिखित मध्यस्थ को निर्देशित किए जाएंगे और विवाद उत्पन्न होने

के पश्चात् कोई पक्षकार इस आधार पर कि करार में उल्लिखित मध्यस्थ निष्पक्ष नहीं है या नहीं हो सकेगा, मध्यस्थ के प्राधिकार का प्रतिसंहरण करने के लिए या किसी अन्य पक्षकार को या मध्यस्थ को माध्यस्थम कार्यवाही करने से रोकने के लिए व्यादेश प्राप्त करने हेतु अनुमति प्रदान करने के लिए आवेदन करता है तो आवेदन इस आधार पर नहीं नकारा जा सकेगा कि उक्त पक्षकार करार करते समय यह जानता था या उसे जानना चाहिए था कि मध्यस्थ करार के किसी पक्षकार से उसके संबंध होने के कारण या निर्देशित विषय से उसका कोई संबंध होने के कारण निष्पक्ष नहीं रह सकेगा।"

आईसीएसी नियमों में भावी मध्यस्थ से निम्नलिखित प्रकट करने की अपेक्षा की गयी है:—

"क्या किसी पक्षकार या उसके काउंसेल के साथ भूतकालिक या वर्तमान में वित्तीय, व्यवसायिक, सामाजिक या किसी अन्य प्रकार के संबंध हैं और क्या ऐसे संबंधों का स्वरूप इस प्रकार का है कि उसका प्रकट किया जाना मानदण्ड..... के अनुसरण के लिए आवश्यक है.....(इस प्रकार का है कि पक्षकारों के विचारों में मध्यस्थ की निष्पक्षता पर प्रश्न उठाया जा सके)"

कतिपय विधियों में केवल निष्पक्षता का उल्लेख किया गया है जैसाकि 1996 के यूकेएक्ट में जबकि मॉडल विधि के अनुच्छेद 12(2) में निष्पक्षता और स्वतंत्रता का निर्देश किया गया है। भारतीय अधिनियम की धारा 12(1) में दोनों का ही निर्देश किया गया है।

फाकहार्ड तथा अन्य (देखें पैरा 1028) ने कहा है कि विनिश्चयता मस्तिष्क की एक स्थिति है जबकि स्वतंत्रता तथ्य या विधि की स्थिति है। पक्षपात कुछ मामलों में स्वतंत्र निर्णय को प्रभावित कर सकता है। कुछ सीमा तक ये एक दूसरे को अतिव्याप्त करते हैं।

स्वीडिश माध्यस्थम अधिनियम की धारा 8 में निष्पक्षता के तीन पहलुओं का उल्लेख किया गया है।

(क) विवाद के परिणाम के विष्कर्ष के रूप में महत्वपूर्ण लाभ या अहित की आशा करेगा।

(ख) जहां मध्यस्थ का उससे निकट का संबंध है और वह कम्पनी का निदेशक है या अन्य कोई संबंध है या अन्यथा किसी पक्षकार का या किसी व्यक्ति का प्रतिनिधि जो महत्वपूर्ण लाभ चाहता है या विवाद के विष्कर्ष स्वरूप कोई अहित चाहता है।

(ग) जहां मध्यस्थ ने विवाद में एक स्थिति ग्रहण कर ली है, विशेषज्ञ के रूप में अथवा अन्यथा, या विवाद में उसका मामला तैयार करने या मामले की कार्यवाही चलाने में किसी पक्षकार को सहयुक्त कर लिया है।

फ्रांस के न्यायालय ने स्वतंत्रता के बारे में निम्नलिखित उल्लेख किया है (देखें फारहार्ड तथा अन्य पैरा 1029):

"मध्यस्थ की स्वतंत्रता उसकी न्यायिक भूमिका में अनिवार्य है, जब से नियुक्त किए जाने पर वह न्यायाधीश का दर्जा संभालता है, जिसे पक्षकारों से निर्भरता का संबंध वर्जित है। इसके अतिरिक्त, स्वतंत्रता को चुनौती देने के लिए जिन परिस्थितियों का सहारा लिया जाता है उन परिस्थितियों से भौतिक और बौद्धिक संबंधों की विद्यमानता के माध्यम से ऐसी परिस्थिति हो सकती है जिससे किसी पक्षकार के हित में पक्षपात का निश्चित खतरा पैदा करके माध्यस्थम निर्णय प्रभावित हो जाएगा।"

पैरा 1030 में, लेखक ने एक कर्मचारी, जिसे तकनीकी सहमती संदत्त परामर्शदाता या ऐसा व्यक्ति परामर्श के लिए संदाय किया जाता हो जिसे स्वतंत्र मध्यस्थ नहीं माना जा सकता। उन्होंने कहा है कि निम्नलिखित परिस्थितियों में मध्यस्थ बहुत से मामलों में स्वतंत्र नहीं रहे हैं।

(एक) जहां माध्यस्थम कार्यवाहियों के समय किसी मध्यस्थ को, माध्यस्थम के किसी पक्षकार को परामर्श या तकनीकी सहायता देने हेतु, व्यक्तिगत रूप में संदाय दिया गया है।

(दो) करार, जिसमें उसे प्रतिस्थापित मध्यस्थ नियुक्त किया गया है, प्रस्तुत करने के हस्ताक्षर करते समय, मध्यस्थ किसी कम्पनी के संदत्त सलाहकार का कार्य कर रहा है जो उसी ग्रुप की है जो माध्यस्थम का एक पक्षकार है।

(तीन) जहां मध्यस्थ अपना पंचाट घोषित करने के पश्चात् किसी पक्षकार द्वारा उसी दिन नियुक्त किया गया है।

यह सिद्धान्त पक्षकार की मध्यस्थ की स्वतंत्रता या निष्पक्षता की प्रति न्यायोचित संदेह पर आधारित है। मॉडल विधि में "न्यायोचित संदेह" शब्दों का प्रयोग किया गया है (खण्ड 11 अनुच्छेद 12)। यह न्यायोचित व्यक्ति का न्यायोचित संदेह है।

परामर्शी-पत्र (उपाबंध-II) में यह सुझाव दिया गया था कि जहां तक सरकार, सरकारी उपक्रमों या सांविधिक निगमों का संबंध है, इन उपबंधों को यथावत रहने दिया जाना चाहिए परन्तु जहां तक गैर-सरकारी पक्षकारों का संबंध है, उनके कर्मचारियों, परामर्शदाताओं या उनके साथ कारोबारी संबंध रखने वाले व्यक्तियों को मध्यस्थ नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। यह भेद इस तथ्य पर आधारित था कि गैर-सरकारी रोजगार में नियोक्ता द्वारा कार्यवाही किए जाने का खतरा सरकारी कर्मचारियों की तुलना में बहुत अधिक है।

जिन्होंने सरकार की ओर से भाग लिया, उनका मत था कि ऐसे खण्ड बने रहने चाहिए। यह बताया गया था कि कतिपय संगठनों में ठेकेदारों को लाभ हुआ है जैसाकि आंकड़ों से पता चलता है। विकल्प के रूप में यह सुझाव भी दिया गया है कि सरकार अन्य विभागों तथा सरकारी संगठनों के अधिकारियों को मध्यस्थ नियुक्त किया जाना चाहिए। बाद के इस विकल्प के प्रति एक यह आपत्ति की गई कि उसी विभाग के अधिकारियों को नियुक्त करने के पीछे एक कारण यह था कि विभाग में उनके अनुभव का लाभ उठाया जा सकता था। वाद-विवाद में इस बारे में सभी एक मत थे कि गैर-सरकारी पार्टियों के लिए ये खण्ड प्रवर्तनीय नहीं होने चाहिए।

आयोग ने महसूस किया कि जहां तक प्राईवेट पार्टियों का संबंध है, उनका अपने कर्मचारियों पर तथा परामर्शदाताओं पर पूरा नियंत्रण रहता है। सरकारी क्षेत्र में सेवा नियमों के अधीन पर्याप्त सुरक्षोपाय किए गए हैं और कार्यवाही भी उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनरीक्षा के अध्यधीन होती है। प्राईवेट पार्टियों तथा सरकारी क्षेत्र के बीच अन्तर किया जाना अनुचित है। आयोग ने यह भी महसूस किया कि ऐसे खण्डों को शून्य बनाने वाला उपबंध अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के लिए लागू नहीं होना चाहिए जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में है।

इस प्रश्न पर निष्ठापूर्वक विचार करने के पश्चात् हमारा यह मत है कि जहां तक प्राईवेट पार्टियों का संबंध है, कर्मचारियों से सलाहकारों या कारोबारी संबंध रखने वालों को मध्यस्थ नियुक्त किए जाने में समर्थ बनाने वाले खण्ड प्रतिबंधित किए जाने चाहिए और ऐसे पक्षकारों के बीच होने वाले करारों के इन खण्डों को, भारत में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों को छोड़कर, अप्रवर्तनीय माना जाना चाहिए।

यह सुझाव दिया गया था कि डच विधि निःसंदेह अधिक स्पष्ट है और यह पक्षकार को माध्यस्थम करार से परे, जिसमें माध्यस्थम की नियुक्ति के लिए एक पक्षकार को विशेष स्थिति प्राप्त होती है, न्यायालय का आदेश प्राप्त करने की अनुमति देती है (देखें अनुच्छेद 1028 नीदरलैण्ड कोड ऑफ सिविल प्रोसीजर) इसी प्रकार, यह कहा गया था जर्मन माध्यस्थम विधि, जो अनसिट्राल मॉडल से भिन्न है, में एक समान नियम अपनाया गया है। अनुच्छेद 1034, पैरा 2 जैड पी ओ में कहा गया है:—

> "यदि माध्यस्थम करार में एक पक्ष को अधिकरण के गठन के बारे में विशेष अधिकार दिए गए हैं जिससे दूसरे पक्ष का अहित होता है तो, दूसरा पक्ष न्यायालय से किए गए मनोनयन या मनोनयन की सहमत प्रक्रिया से भिन्न एक या एक से अधिक मध्यस्थों को नियुक्त करने के लिए अनुरोध कर सकता है। पक्षकार को माध्यस्थम अधिकरण के गठन की जानकारी होने के दो सप्ताह के भीतर ऐसा अनुरोध कर दिया जाना चाहिए। धारा 1032 उपधारा 3 यथावश्यक परिवर्तन सहित लागू होगी।"

(देखें 1998 रिलो. आर्बि. 291 और 15 जे अन्तर्राष्ट्री. आर्बि. 85 (1998) 1 अन्त. आर्बि.-रिवी 121 (1998) इस भाग में (फाकहार्ड, 1999 संख्या 464, 465 भी देखें)। फकहार्ड (देखें पैरा 787) का संदर्भ दिया गया था कि विधि में विशेष उपबंध न होने पर भी एक पक्ष को विशिष्ट अधिकार देने वाला खण्ड उस देश की सम्यक् प्रक्रिया या लोकनीति के विपरीत समझा जाएगा जिस देश में ऐसे पंचाट का प्रवर्तन करने के लिए अनुरोध किया गया है। इसके समर्थन में बहुत से मामले उद्धृत किए गए हैं। निष्पक्ष विचारण की प्रक्रियात्मक लोकनीति का सिद्धांत लागू होता है और यह संदेश यूरोपीयन कन्वेंशन के आर्टि. 6 जैसी इन्टरनेशनल कन्वेंशन से लिया गया है जो निष्पक्ष विचारण के मूल अधिकार का निर्देश करता है। यद्यपि कन्वेंशन केवल न्यायालयों

के लिए लागू होती है परन्तु न्यायालयों ने पंचाटों के विरुद्ध कार्यवाहियों ने इस भाव को बनाए रखा है। निःसंदेह आई.सी.सी. पी.आर., भारत भी जिसका सदस्य है, में भी ऐसा ही न्यायालयों द्वारा अपनाया जाने वाला निष्पक्षता का सिद्धान्त अन्तर्विष्ट है।

इस स्तर पर यह महसूस किया गया था कि जर्मन विधि का उपबंध अपनाया जा सकता है। परन्तु यदि किसी व्यक्ति को किसी सरकारी कर्मचारी के मध्यस्थ बनने के प्रति आपत्ति उठाने की अनुमति दी जाती है तब, यह महसूस किया गया कि प्रत्येक मामले में न्यायालय में आवेदन-देकर आपत्ति उठायी जाने की संभावना रहेगी और इस बात की पूरी संभावना रहेगी कि सरकारी उपक्रमों के बारे में ऐसे खण्डों वाले मध्यस्थमों को न्यायालय द्वारा रोकादेश दे दिए जाएंगे। अतः आयोग ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या ऐसे खण्डों को उन मामलों में भी अप्रवर्तनीय माना जाए जहां सरकार या सरकारी उपक्रम या सांविधिक निगम करारों में इस आशय का एक खण्ड सम्मिलित कर देते हैं जिससे कि उनके अपने कर्मचारी या सलाहकार आदि एकमात्र मध्यस्थ होंगे। यह महसूस किया गया कि ऐसे विवादों के मामले में, जैसाकि ऊपर बताया जा चुका है, विशेष व्यवहार किए जाने की आवश्यकता है और इन्हें प्राइवेट पार्टियों की स्थिति में नहीं रखा जा सकता प्राईवेट पार्टियां अपने कर्मचारियों, सलाहकारों आदि पर अधिक नियंत्रण रखती हैं। ऐसे कर्मचारियों आदि के विरुद्ध कार्यवाही करने का अधिकार भी न्यायिक पुनरीक्षा के अधीन रहता है। अतः यह महसूस किया गया कि इन विवादों के मामले में ऐसे खण्डों को अप्रवर्तनीय बनाने की आवश्यकता नहीं है। अतः यह निर्णय किया गया है कि सरकार, सरकारी उपक्रमों या सांविधिक निगमों के मामले में इन खण्डों को अप्रवर्तनीय नहीं बनाया जाना चाहिए। किसी भी स्थिति में, धारा 13 के अधीन चुनौती देने का वर्तमान उपबंध सदैव रहेगा और पीड़ित पक्ष उसका उपयोग कर सकेगा। परन्तु माध्यस्थम अधिकरण के आदेश द्वारा पक्षपात के तर्क को रद्द करने के आदेश को सरकार के कर्मचारियों आदि तथा अन्य विवादों के मामले में पंचाट पारित किए जाने के पश्चात् चुनौती दी जा सकेगी।

परिणामतः, धारा 13 में संशोधन नहीं किया गया है और एक निम्नलिखित नई धारा 10क जोड़ने का प्रस्ताव किया गया है:

2.7.2 मूल अधिनियम की धारा 10 के बाद निम्नलिखित धारा अन्तःस्थापित की जाएगी अर्थात्:

"10 क (1) उपधारा (2) के प्रावधानों के अध्यधीन जहां किसी माध्यस्थम करार में एक खंड अन्तर्विष्ट है जो पक्षकारों में से किसी पक्षकार को अपने या अपने संगठन के किसी कर्मचारी या परामर्शदाता या सलाहकार या किसी अन्य व्यक्ति को, जिसका उससे या उसके संगठन से वाणिज्यिक संबंध हो, मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने का अधिकार देता है, उस सीमा तक ऐसा खंड अमान्य होगा।

(2) उपधारा (1) के उपबंध निम्नलिखित पर लागू नहीं होंगे:—

(क) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में किसी करार (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं)।

(ख) किसी माध्यस्थम करार में कोई खंड, जिससे केन्द्रीय या राज्य सरकार या सरकारी क्षेत्र का उपक्रम या सांविधिक निकाय या सांविधिक निगम या अन्य सार्वजनिक प्राधिकरण, यथास्थिति, अपने किसी कर्मचारी या परामर्शदाता या सलाहकार या किसी अन्य व्यक्ति, जिसका उससे वाणिज्यिक संबंध हो, को माध्यस्थम के रूप में नियुक्त करता है, अमान्य होगा।"

2.7.3 प्रस्तावित धारा 10 क के संदर्भ में धारा 11 में प्रस्तावित उपधारा (5 क) द्वारा धारा 11 में संगत परिवर्तन किए गए हैं।

2.8.1 माध्यस्थों की नियुक्ति-धारा 11 के अन्तर्गत विविध मुद्दे:

संगोष्ठी में विचार-विमर्श के दौरान धारा 11 के अन्तर्गत अनेक मुद्दे उठाए गए थे, अर्थात् क्या अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के मामले में धारा 11 के अन्तर्गत आवेदन-पत्र "भारत के मुख्य न्यायमूर्ति" या "उच्चतम न्यायालय" को प्रस्तुत किए जाने हैं; क्या आंतरिक माध्यस्थम के मामले में धारा 11 के अन्तर्गत आवेदन पत्र "उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति" या "उच्चतम न्यायालय" को प्रस्तुत किए जाने हैं; अन्य शब्दों में, क्या मध्यस्थों की नियुक्ति प्रशासनिक पक्ष या न्यायिक पक्ष में की जानी चाहिए? यदि धारा 11 के अन्तर्गत आदेश "प्रशासनिक" होंगे तो क्या न्यायालय का हस्तक्षेप कम होगा; ये अधिकारी "नामोद्दिष्ट व्यक्ति" के रूप में कार्य कर रहे हैं; या उन्हें

नामोद्दिष्ट व्यक्ति के रूप में कार्य करता हुआ माना जा सकेगा। इसलिए, अनुच्छेद 226 भी उपलब्ध नहीं होगा यदि आदेश "न्यायिक पक्ष" पर दिए जाते हैं तो क्या न्यायालय का हस्तक्षेप कम होगा? धारा 11 के अन्तर्गत यदि आदेश न्यायिक पक्ष पर दिए जाते हैं तो क्या इससे माध्यस्थम के समय और लागत में बचत होगी। इसलिए, क्या अधिकारिता मुद्दों, यदि उठाए जाते हैं, पर धारा 11 आवेदन पत्रों में न्यायिक पक्ष पर उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय लिया जाना चाहिए या अपने विवेक से वे उन पर निर्णय लेने से मना कर सकेंगे। क्या धारा 11 लचीले प्रावधान से ऐसी कोई संभावना है जिससे उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय केवल अधिकारिता मुद्दों पर ही निर्णय लेंगे, यदि अनावश्यक विलम्ब के बिना उन पर निर्णय लिया जा सकता है तथा जहां संबंधित कागजात प्रस्तुत कर दिए जाते हैं तथा किसी मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता नहीं होती है। क्या ये लचीली प्रक्रिया जैसी कि धारा 8 के अन्तर्गत कार्यवाही किए जा रहे इसी प्रकार के मुद्दों के मामले में है, धारा 11 में अन्तःस्थापित नहीं की जानी चाहिए?

अन्य उठाया गया मुद्दा धारा 11(4) और (5) में निर्धारित समय अनुसूची से संबंधित है। क्या उसे अनिवार्य माना जाना चाहिए? क्या धारा 11(6) के अन्तर्गत भी समय सीमाएं नियत की जानी चाहिए?

ये विभिन्न मुद्दे हैं जो धारा 11 के अन्तर्गत हमारे समक्ष उठाए गए हैं।

2.8.2 धारा 11 के अन्तर्गत आदेश–क्या स्वरूप से प्रशासनिक है:

क्या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या उनके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्तियों द्वारा अधिनियम की धारा 11 के अन्तर्गत पारित आदेश प्रशासनिक हैं या नहीं, यह प्रश्न कोंकण रेलवे मामला सं॰ 1 [ए॰आई॰आर॰ 2000, एस॰सी॰डब्ल्यू॰ 2960-2000(7) एस॰सी॰सी॰ 201] में उच्चतम न्यायालय के समक्ष आया था। तीन न्यायाधीशों की पीठ ने यह निर्णय दिया था कि ये आदेश स्वरूप में प्रशासनिक हैं।

कोंकण रेलवे मामला सं॰ II ए॰आई॰आर॰ 2000, एस॰सी॰डब्ल्यू॰ 3908-2000(8) एस॰सी॰सी॰ 159 में इस प्रश्न कि क्या प्रारम्भिक मुद्दों पर धारा 11 के स्तर पर निर्णय लिया जा सकता है, जो बड़ी पीठ जो निर्णय हेतु भेजा गया था। जब यह मामला संविधान पीठ [2001(4) एस॰सी॰ए॰एल॰ई॰ 225] के समक्ष आया तो पांच न्यायाधीशों की पीठ ने दोनों पक्षों के वकीलों की दलीलों को सुना कि धारा 11 के अंतर्गत आदेश स्वरूप से प्रशासनिक है। तथापि, न्यायालय ने इस प्रश्न पर विद्वान महान्यायवादी को नोटिस जारी किया कि क्या पक्षकारों द्वारा उठाए गए प्रारंभिक मुद्दों पर प्रशासनिक पक्ष पर इस स्तर पर निर्णय लिया जा सकता है।

इसलिए, विधिक स्थिति अब स्पष्ट है कि धारा 11 के अंतर्गत भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उनके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्ति या उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति या उनके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्ति द्वारा पारित आदेश प्रशासनिक आदेश है।

2.8.3 धारा 11 स्तर पर उठाए गए प्रारम्भिक या आधिकारिक मामले–क्या किसी प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा निर्णय लिया जा सकता है:

यह प्रश्न कि क्या धारा 11 के स्तर पर यदि पक्षकार प्रारम्भिक मामले उठाते हैं जैसे (i) अब कोई विवाद नहीं है क्योंकि ठेकेदार ने यह लिखित में दिया है कि उसका कोई दावा नहीं है, या (ii) स्वीकार्य मामले से संबंधित विवाद है, या (iii) केवल वित्तीय माध्यस्थ नियुक्त किया जाना चाहिए, या (iv) इस समय कोई माध्यस्थम करार नहीं है, या (v) मध्यस्थम करार निष्प्रभावी और असमाप्य है, या प्रवर्तन के लिए वैध या सक्षम नहीं है।

तथापि, इस संबंध में हम यह निर्दिष्ट कर सकते हैं कि आई॰सी॰सी॰ नियम, 1998 के अंतर्गत आई॰सी॰सी॰ न्यायालय मध्यस्थों की नियुक्ति करता है तथा इसके द्वारा नियुक्त मध्यस्थों का निर्णय जांच के लिए आई॰सी॰सी॰ न्यायालय को प्रस्तुत किया जाता है। आई॰सी॰सी॰ न्यायालय एक गैर-सरकारी निकाय है जिसका पक्षकार प्रायः अंतर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के लिए सहारा लेते हैं। यह कोई विधिक न्यायालय नहीं है जिसे किसी राज्य द्वारा किसी संविधि के अंतर्गत स्थापित किया गया है। यह एक संस्था है जो माध्यस्थम सुविधा कराती है। अनुच्छेद 6(2) के अंतर्गत आई॰सी॰सी॰ न्यायालय प्रारंभिक मामले देखता है तथा यदि यह निर्णय लेता है कि माध्यस्थम के आई॰सी॰सी॰ नियम के अंतर्गत कोई माध्यस्थम या करार नहीं है तो यह मध्यस्थों की नियुक्ति करने के लिए मना कर सकता है। हम आई॰सी॰सी॰ नियम के अनुच्छेद 6(2) का संदर्भ ले सकते हैं। इसे निम्नवत् पढ़ा जा सकेगा:—

''अनुच्छेद 6(2) यदि प्रतिवादी अनुच्छेद 5 द्वारा की गई व्यवस्था के अनुसार उत्तर नहीं देता है या यदि कोई पक्षकार माध्यस्थम करार की विद्यमानता, वैधता या व्याप्ति के संबंध में कोई या अधिक तर्क देता है तो न्यायालय तर्क या तर्कों की ग्राह्यता या गुण-दोष के प्रति किसी पूर्व प्रभाव के बिना यह निर्णय ले सकेगा कि माध्यस्थम कार्यवाही होगी यदि प्रथम दृष्ट्या इस बात की संतुष्टि होती है कि आई॰सी॰सी॰ के माध्यस्थम नियमों के अंतर्गत माध्यस्थम करार किया जा सकेगा। ऐसे मामले में माध्यस्थम अधिकरण की अधिकारिता के संबंध में कोई निर्णय माध्यस्थम अधिकरण द्वारा स्वयं लिया जाएगा। यदि न्यायालय इस बात से संतुष्ट नहीं है तो पक्षकारों को यह घोषित करना होगा कि माध्यस्थम कार्यवाही नहीं की जा सकती है। ऐसे मामले में किसी भी पक्षकार को अधिकारिता वाले न्यायालय से यह पूछने का अधिकार होगा कि क्या माध्यस्थम करार हेतु कोई बाध्यता है या नहीं।''

इस प्रकार, रेडफर्न और हन्टर ने माध्यस्थम पर अपनी पुस्तक (पैरा 5.34) में इसी मामले पर अपने विचार निम्नवत व्यक्त किए हैं:—

''जब माध्यस्थम अधिकरण के अधिकार-क्षेत्र का प्रश्न उठता है तो दो स्तरीय प्रक्रिया अपनाई जाती है। प्रथम स्तर पर यदि कोई पक्षकार माध्यस्थम की विद्यमानता, वैधता या करार की गुंजाइश से संबंधित कोई या अधिक तर्क देता है तो आई॰सी॰सी॰ के न्यायालय को प्रथम दृष्ट्या ऐसे करार [आई॰सी॰सी॰ माध्यस्थम नियम 6(2)] की विद्यमानता के संबंध में अपने आप को संतुष्ट करना चाहिए। यदि वह संतुष्ट हो जाता है कि ऐसा कोई करार विद्यमान है, तो आई॰सी॰सी॰ के न्यायालय को मध्यस्थता की अनुमति देनी चाहिए ताकि दूसरे स्तर पर माध्यस्थम अधिकरण द्वारा माध्यस्थम अधिकरण के अधिकार क्षेत्र के संबंध में स्वयं कोई निर्णय लिया जायेगा।''

फाकहार्ड और अन्यों (1994) ने भी अपने पुस्तक (पैरा 8.54) में इसी मामले का उल्लेख किया है जो निम्नवत है:—

''अंतर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में इन दो विचारों के बीच एक तीसरी व्याख्या है, न्यायालय को केवल इस बात का सत्यापन करना चाहिए कि खंड स्पष्ट रूप से अमान्य नहीं है क्योंकि जहां ऐसा कोई संकेत नहीं है कि माध्यस्थम खंड विद्यमान है, किसी मध्यस्थ की नियुक्ति करना उपयुक्त नहीं होगा। न्यायालय को ऐसे मामलों में जहां माध्यस्थम में स्पष्ट रूप से कोई संविदात्मक आधार नहीं है तथा पंचाट को किसी अधिकार क्षेत्र में मान्यता प्रदान किए जाने का अवसर नहीं है, स्वत: ही मध्यस्थों की नियुक्ति नहीं करनी चाहिए।''

अत: यह स्पष्ट है कि आई॰सी॰सी॰ नियम और इस दृष्टिकोण से सहमत विधिवेत्ता की राय कि धारा 11 के स्तर पर प्रारम्भिक मामलों का निर्णय लेना स्वीकार्य है। यदि ऐसे मामलों पर इस स्तर पर निर्णय ले लिया जाता है तो यह पर्याप्त रूप से लाभप्रद होगा क्योंकि इस स्तर पर निर्णय लेने से पक्षकारों के लिए समय और व्यय की बचत होगी। जैसाकि फाकहार्ड और अन्यों ने बताया है कि जब मध्यस्थों की नियुक्ति करने के लिए आवेदन-पत्र दिए जाते हैं तो ''स्वत: नियुक्ति'' करने का प्रश्न ही नहीं उठता। नियुक्ति प्राधिकारी सामान्यतया तभी विचार करता है जब मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए कोई मामला प्रस्तुत किया जाता है तथा उस स्तर पर उपलब्ध अविवादित तथ्यों पर ही ऐसे निर्णय लिए जा सकते हैं।

आयोग का विचार यहां भारत में माध्यस्थम के दूसरे महत्वपूर्ण पहलू का उल्लेख करने का है। ऐसा नहीं है कि भारत में माध्यस्थम में विलंब पंचाट के स्तर से पूर्व न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने के कारण होता है। आयोग के विचार से भारत में अधिकांश माध्यस्थम में पंचाट पारित होने से पूर्व जहां कहीं विलंब होता है, वह अधिकांशतया मध्यस्थों की ओर से और माध्यस्थम में लगे वकीलों की ओर से विलंब किए जाने के कारण होता है। नए अधिनियम के अंतर्गत भी माध्यस्थम के पूरा होने में वर्षों लग जाते हैं। 1940 के पुराने अधिनियम के अंतर्गत अर्थात् 1940 के अधिनियम की धारा 16, 30 और 31 के कारण पंचाट के स्तर के पश्चात् न्यायालय के हस्तक्षेप के कारण हुए विलंब की शिकायत को समझा जा सकता है।

माध्यस्थम में विलंब जो माध्यस्थम की लागत को प्रभावित करता है:

दूसरा अधिक महत्वपूर्ण पहलू माध्यस्थमों में भारी व्यय होना है जबकि न्यायालयों में मामलों पर निर्णय लेने वाले न्यायाधीशों को राज्य द्वारा भुगतान किया जाता है, मध्यस्थों का मामला भिन्न है। पक्षकारों को मध्यस्थों को भी

शुल्क का भुगतान करना पड़ता है। मामला चाहे न्यायालयों के समक्ष हो या मध्यस्थों के समक्ष अधिवक्ताओं के शुल्क का भुगतान तो करना ही पड़ता है। आजकल मध्यस्थों को भुगतान किए जाने वाला शुल्क बहुत अधिक है। हमने अधिवक्ताओं और मध्यस्थों पर दृष्टिकोण प्राप्त किए हैं किंतु हमें पक्षकारों के हित को भी ध्यान में रखना होगा।

इसके अतिरिक्त, इस बात पर विचार किए जाने की आवश्यकता है, उस समय क्या होता है यदि मध्यस्थों की नियुक्ति स्वत: हो जाती है तथा यदि धारा 11 के अंतर्गत नियुक्ति प्राधिकारी को किसी अन्य बात पर विचार नहीं करना चाहिए।

आज मध्यस्थों के समक्ष प्रचलित प्रक्रिया यह है कि प्रथम सुनवाई में वादी को अपने समर्थन में अपना दावा विवरण और कागजात प्रस्तुत करने का निदेश दिया जाता है। दूसरी सुनवाई में विपक्षी पक्षकार को अपने उत्तर और कागजात प्रस्तुत करने का निदेश दिया जाता है। तत्पश्चात तीसरी सुनवाई में वादी अपने प्रत्युत्तर प्रस्तुत करता है। सामान्यतया, प्रत्येक स्तर पर कम से कम दो या तीन स्थगन होते हैं। कभी-कभी अंतरिम निदेशों के लिए आवेदन पत्र भी प्रस्तुत किए जाते हैं। इसलिए आज पहले अवसर पर अधिकार-क्षेत्र के किसी प्रश्न पर विचार करने का सामान्यतया प्रश्न नहीं उठता जब तक कि कम से कम 6 स्थगन न आ जाएं। यदि प्रतिवादी राज्य या सरकारी क्षेत्र का कोई उपक्रम है, तो स्थगनों की संख्या निश्चित रूप से अधिक होगी। पक्षकार प्रत्येक सुनवाई के लिए मध्यस्थों को शुल्क का भुगतान करते हैं जो कि हजारों रुपए होता है।

यदि वास्तव में यह पक्षकार का तर्क होता है कि कोई विवाद नहीं है जिसे माध्यस्थम को भेजा जा सकता है (क्योंकि ठेकेदार ने "अनापत्ति पत्र" दिया है) या यदि यह तर्क है कि इस विवाद को माध्यस्थम से "स्वीकार" किया जाता है या यदि कोई व्यक्ति कहता है कि वह माध्यस्थम के लिए कोई पक्षकार नहीं है या माध्यस्थम करार विद्यमान नहीं है, तो इस प्रकार के मामलों को सामान्यतया कम से कम पांच या छः स्थगन हो जाने के बाद ही सुनवाई के लिए लिया जाता है। तब तक बड़ी मात्रा में धनराशि माध्यस्थम शुल्क के रूप में देय हो जायेगी या उसका भुगतान कर दिया गया होगा। इसलिए, लागत घटक भी पक्षकारों के लिए महत्वपूर्ण है तथा इसे अविचारित नहीं छोड़ा जा सकता है।

अंत में, यदि सरकार या सरकारी क्षेत्र के उपक्रम के पास यह दिखाने के लिए स्पष्ट कागजात है कि इस समय कोई विवाद नहीं है या विवाद "स्वीकार्य मद" से संबंधित है, या यदि कोई व्यक्ति कहता है कि वह माध्यस्थम करार के लिए कोई पक्षकार नहीं है तो माध्यस्थम की खर्चीली प्रक्रिया सदैव प्रारंभ रखने का कोई कारण नहीं है। इन पहलुओं का रेडफर्न और अन्य में विशेष रूप से उल्लेख किया गया है तथा इसी प्रकार के मामले पर धारा 8 (पैरा 2.41) के अन्तर्गत हमारी चर्चा में उल्लेख किया गया है। इसलिए हमें यह देखना होगा कि धारा 11 स्तर या धारा 8 स्तर पर अनावश्यक विलम्ब किए बिना इन मामलों का निर्णय कर लिया जाए तथा इन प्रारम्भिक मामलों की जांच से मध्यस्थों की नियुक्ति में विलम्ब न हो।

इस समय हमें इन पहलुओं को देखना होगा।

वास्तव में, तीन श्रेणियों के मामलों में माध्यस्थम होता है:

(i) जहां दोनों ओर के पक्षकार मध्यस्थों के लिए सहमत होते हैं या जहां पक्षकार मध्यस्थ नियुक्त करने हेतु एकपक्षीय रूप से प्राधिकृत होता है, तथा धारा 11 के अन्तर्गत मध्यस्थ की नियुक्ति करता है।

(ii) जहां पक्षकार धारा 11 के अन्तर्गत भारत के न्यायामूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायामूर्ति के पास जाते हैं क्योंकि पक्षकारों में सहमति नहीं हो पाती है।

(iii) जहां लंबित वाद या अन्य कार्यवाही में धारा 8 के अन्तर्गत विपक्षी पक्षकार माध्यस्थम करार पर निर्भर होता है।

बाद की दोनों स्थितियों अर्थात (ii) और (iii) में नियुक्ति के लिए आवेदन-पत्र न्यायाधीश के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तथा आयोग की राय में, यह लाभप्रद है (जैसाकि आई॰सी॰सी॰ न्यायालय के समक्ष), यदि इन मामलों पर प्रारम्भिक मामलों के रूप में तुरन्त निर्णय ले लिया जाता है-बशर्ते कि उन पर अधिक विलम्ब किए बिना निर्णय लिया जा सकता है-ताकि इससे पक्षकारों की काफी बचत हो सके। फाकहार्ड द्वारा विशेष

रूप से उल्लेख किए गए इस पहलु का इसी प्रकार के मामले में धारा 8 के अन्तर्गत हमारी चर्चा में उल्लेख किया गया है।

2.8.4 प्रारम्भिक मामलों पर तभी निर्णय लिया जा सकता है यदि कुछ शर्तों का पालन किया जाता है। (जैसाकि धारा 8 के मामले में है)

इसलिए, आयोग का प्रस्ताव है कि यह सावधानी बरती जाए कि इन मामलों पर यदि संभव हो तो धारा 11 स्तर पर ही निर्णय ले लिया जाए तथा यह भी कि इसमें कोई विलम्ब न हो। आयोग का विचार मध्यमार्ग प्रक्रिया अपनाने का है जैसाकि अनेक प्रतिष्ठित न्यायाधीशों द्वारा मुम्बई द्वारा संगोष्ठि में सुझाव दिया था तथा जैसाकि भारतीय व्यापारी प्रकोष्ठ, मुम्बई द्वारा सुझाव दिया गया है। प्रक्रिया इस प्रकार है, यदि अधिकारिता मामलों पर उन कागजातों के आधार पर निर्णय लिया जा सकता है जिन पर कोई विवाद नहीं है और किसी मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है तथा यदि जांच में समय लगने की संभावना नहीं है तो ऐसे मामलों में ही न्यायालय द्वारा धारा 8 या धारा 11 के स्तर पर निर्णय लिए जाने की स्वीकृति है यदि कागजातों के संबंध में कोई विवाद है या मौखिक साक्ष्य लिए लाने की आवश्यकता है या विलम्ब होने की संभावना है तो न्यायाधीश द्वारा अधिकारिक मामलों को भी उन मध्यस्थों को भेजना होगा जिन्हें नियुक्त किए जाने का प्रस्ताव है। आयोग की राय में ऐसी प्रक्रिया से एक ओर अनावश्यक व्यय से बचने और दूसरी ओर विलम्ब से बचने में संतुलन आएगा।

इसलिए, आयोग ने महसूस किया है कि ऐसी स्थितियों में अतिरिक्त कठोर शर्तें लगानी होंगी जैसाकि धारा 8 के अन्तर्गत किया गया है–जैसाकि इंग्लिश आर्बिट्रेशन एक्ट, 1996 की धारा 32(2) के अन्तर्गत है, अर्थात, न्यायाधीश, यदि वह प्रारम्भिक मामलों पर निर्णय लेना चाहता है, को यह संतुष्टि करनी होगी कि:—

(i) प्रश्नों के निर्धारण से लागत में परिहार्य बचत होने की संभावना हो;

(ii) इन मामलों के निर्णय के लिए आवेदन-पत्र विलम्ब किए बिना प्रस्तुत किए गए हो;

(iii) इस बात के अनेक कारण हैं कि इन मामलों का निर्णय उस स्तर पर कर लिया जाना चाहिए;

(iv) इन मामलों पर निर्णय लेने में विलम्ब होने की संभावना न हो।

हमारे विचार से मुम्बई संगोष्ठि में प्रस्तावित ऐसा लचीला प्रावधान विलम्ब के बारे में प्रकट की गई आपत्ति का उचित प्रकार से समाधान करेंगे। यदि उठाया गया मामला साधारण है ताकि जिसका निर्णय कागजातों, जो कि विवादों में नहीं है, के आधार पर मौखिक साक्ष्य के बिना लिया जा सकता है, यह बेहतर होगा कि न्यायाधीश, जो धारा 8 या 11 के आवेदन-पत्रों को देख रहे हैं, प्रारम्भ में ही उन पर निर्णय ले लें न कि छः स्थगनों के बाद मध्यस्थों द्वारा निर्णय लिए जाने हेतु सभी मामलों को स्पष्ट रूप से छोड़ दें। इसलिए, जब भी धारा 11 या धारा 8 के अन्तर्गत आवेदन-पत्र प्रस्तुत किए जाते हैं तो मध्यस्थों की स्वतः नियुक्ति किए जाने की आवश्यकता नहीं है। आयोग को प्रत्येक सुनवाई के लिए मध्यस्थों द्वारा लिए गए शुल्क की सामान्य दरों की जानकारी है। चाहे यह अकेले मध्यस्थ का मामला हो या तीन मध्यस्थों का, वादियों की बचत निश्चित रूप से ऐसा मुद्दा है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। अनुभव से पता चलता है कि यदि एक पक्षकार सरकार या सरकारी क्षेत्र का उपक्रम है तो कोई भी सार्वजनिक धनराशि की चिन्ता नहीं करता है जो मध्यस्थम के व्यय पर खर्च की जाती है। उपरोक्त के अनुसार यदि विलम्ब की ओर ध्यान दिया जाता है तो उपरोक्त प्रक्रिया से न्याय का उद्देश्य पूरा हो जायेगा तथा विलम्ब के आधार पर प्रक्रिया का संभवतः विरोध नहीं हो सकेगा।

इस प्रकार, प्रस्तावित लचीले प्रावधान से यदि प्रारम्भिक मामलों का धारा 11 या धारा 8 के अन्तर्गत नियुक्ति के स्तर पर निर्णय कर लिया जाता है जैसाकि आईसीसी न्यायालय में किया जाता है तो कोई विरोध नहीं हो सकेगा। वास्तव में, धारा 8(4) और (5) में तथा धारा 11 की उपधारा (13), (14) (देखिए पैरा 2.8.15) में हमारे द्वारा प्रस्तावित प्रावधान आईसीसी नियमों में भी एक संशोधन है।

2.8.5 धारा 11 के अन्तर्गत यदि प्रारम्भिक मामलों पर निर्णय नहीं लिया जाता है तो उत्पन्न कठिनाइयां-उदाहरण

इस विषय से अलग होने से पूर्व उपरोक्त प्रक्रिया के समर्थन के लिए हम 1996 के अधिनियम के

अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय के दो या तीन निर्णयों का संदर्भ ले सकते हैं। वेलिंग्टन एसोसिएट लिमिटेड बनाम किरीट मेहता (ए॰आई॰आर॰ 2000 एस॰सी॰ 1379) में धारा 11 आवेदन पत्र के स्तर पर प्रतिवादी के लिए यह बहस की गयी थी कि संबंधित खंड जिस पर याचिकादाता द्वारा माध्यस्थम खंड के रूप में, विश्वास व्यक्त किया गया था, इसके होने के बावजूद एक माध्यस्थम खंड नहीं था तथा यह केवल पक्षकारों को भविष्य में माध्यस्थम के लिए सहमत होने की अनुमति देता है। न्यायालय ने तुरन्त निर्णय दिया कि यह खंड एक माध्यस्थम खंड नहीं है और धारा 11 आवेदन पत्र को खारिज कर दिया । यह मामला समाप्त हो गया। यदि इस प्रकार के साधारण मामले को मध्यस्थों को भेजा जाता और छः से अधिक स्थगनों के बाद वे इस पर निर्णय लेते तो इस पर अनावश्यक विलम्ब और व्यय होता।

दातर स्विचगियर मामले (ए॰आइ॰आर॰ 2000 एस॰सी॰डब्ल्यू॰ 3925)-2000 सप्ली-(2) जे॰टी॰ 226 में भी किसी मध्यस्थ की नियुक्ति करने के लिए विपक्षी पक्ष से धारा 11(6) के अन्तर्गत किए गए आवेदक के अनुरोध को माना नहीं गया था तथा विपक्षी पक्षकार द्वारा पर्याप्त विलम्ब के बाद एक मध्यस्थ की नियुक्ति की गई थी। तत्पश्चात् ; आवेदक ने धारा 11 के अन्तर्गत एक याचिका दायर की थी जिसमें न्यायालय द्वारा नियुक्त किए जाने की मांग की गई थी तथा यह तर्क दिया गया था कि विपक्षी पक्षकार ने उपयुक्त समय के अन्दर मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं की थी, उक्त नियुक्ति गलत थी तथा इसलिए न्यायालय धारा 11 के अन्तर्गत किसी मध्यस्थ की नियुक्ति कर सकेगा। विपक्षी पक्षकार ने यह तर्क दिया कि मध्यस्थ की नियुक्ति करने संबंधी अनुरोध पर कार्यवाही करने के लिए धारा 11(6) में कोई समय सीमा नहीं है तथा धारा 11(4) और 11(5) में नियत की गई अवधि धारा 11(6) पर लागू नहीं होती है और अन्यथा भी यह अनिवार्य नहीं है। ऐसे मामले में, न्यायालय विपक्षी पक्षकार द्वारा प्रारम्भ में नियुक्त किए गए मध्यस्थ को नजरअंदाज करके स्वत: ही एक मध्यस्थ की नियुक्ति करता है यद्यपि विलम्ब से तो यह प्रश्न उठेगा कि कौन सा मध्यस्थ योग्यता से इस मामले पर निर्णय लेगा। ऐसा एक मामला दिल्ली उच्च न्यायालय के समक्ष आया है जैसाकि दिल्ली उच्च न्यायालय के एक सेवानिवृत्त न्यायाधीश ने हमें बताया है जो कि ऐसे मध्यस्थों में से एक मध्यस्थ था। इस मामले का संदर्भ केवल यह बताने के लिए दे रहे हैं कि यदि प्रशासनिक पक्ष पर धारा 11 आवेदनों को कोई न्यायाधीश भी देखता है तो भी कुछ विशिष्ट स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसके लिए न्यायालय को मध्यस्थ की नियुक्ति करने से पूर्व कुछ मुद्दों पर निर्णय लेना होगा।

एक दूसरे मामले मलायासियन एयर लाइन्स 2000(7) स्केल 724 में भी मुख्तारनामा, जिस पर भारतीय स्टाम्प अधिनियम के अनुसार उचित प्रकार से स्टाम्प नहीं लगाई गई थी, के अन्तर्गत मुख्तारनामा धारक द्वारा आवेदन पत्र प्रस्तुत करने पर आपत्ति व्यक्त की गई थी। आवेदक दण्ड और स्टाम्प शुल्क अदा करने के लिए सहमत था। संबंधित प्राधिकारी के समक्ष शुल्क और दण्ड का भुगतान करने के लिए पक्षकारों को स्वीकृति प्रदान करने हेतु एक आदेश पारित किया जाना था। जब तक स्टाम्प शुल्क के मुद्दे का निर्णय नहीं हो जाता तब तक मध्यस्थ की तुरन्त नियुक्ति करना संभव नहीं था।

इसी प्रकार, अनेक स्थितियां उत्पन्न हो सकती है जहां विभिन्न मुद्दों पर, जिन्हें धारा 11 या धारा 8 के स्तर पर उठाया जाता है, कुछ निर्णय लेना आवश्यक हो जाता है।

किन्तु यदि हम प्रक्रिया में सुधार कर लेते हैं जिससे उपरोक्त विलम्ब को समाप्त किया जा सकेगा, तो न्यायाधीश को धारा 11 के स्तर पर विभिन्न मुद्दों पर निर्णय लेने की शक्ति होगी तथा माध्यस्थम में विलम्ब के आधार पर व्यक्त की गई आपत्ति का कोई मतलब नहीं रह जाएगा।

जहां तक धारा 11 आवेदन पत्रों में आदेशों के विरुद्ध अपील आदि दायर करने में विलम्ब का संबंध है, हम इन प्रश्नों को अलग से लेंगे। हमें यह प्रदर्शन करना होगा कि यदि न्यायाधीश का आदेश न्यायिक आदेश के बजाय प्रशासनिक आदेश है तो न्यायालय हस्तक्षेप के स्तरों की संख्या अधिक होगी। दुर्भाग्यवश इस समस्या की विभिन्न शाखाओं का उन लोगों द्वारा गहराई से अध्ययन नहीं किया गया है, जिन्होंने विद्यमान उपबंधों को बनाये रखने हेतु हमसे अनुरोध किया था। हम मुद्दों का संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

उपरोक्त चर्चा का परिणाम यह है कि धारा 11 आवेदन पत्रों के स्तर पर जैसाकि आई॰सी॰सी॰ नियमों के अन्तर्गत है, न्यायाधीश प्रारम्भिक मुद्दों, जो उत्पन्न हो सकते हैं, पर निर्णय ले सकता है। इससे पर्याप्त व्यय और समय की बचत होगी। तथापि, मुद्दों पर निर्णय लेने की प्रक्रिया का दुरूपयोग नहीं किया जाना चाहिए। एक लचीले प्रावधान की व्यवस्था करनी होगी। जैसाकि मुम्बई संगोष्ठी में सुझाव दिया गया था कि न्यायाधीश

प्रारम्भिक मुद्दों पर निर्णय तभी लेगा यदि उन पर अविवादित कागजातों के आधार पर निर्णय लिया जा सकता है तथा जहां किसी मौखिक साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है और यदि न्यायाधीश ऐसा महसूस करता है कि जाँच पर्याप्त रूप से साधारण है तथा इससे विलम्ब नहीं होगा और यह महसूस करता है कि इससे लागत में बचत होगी।

2.8.6 धारा 11 के अन्तर्गत आदेश की तुलनात्मक लाभ या हानियां - प्रशासनिक आदेश या न्यायिक आदेश

आयोग को परामर्श-पत्र के बड़ी संख्या में उत्तर प्राप्त हुए हैं। जहां तक धारा 11 का संबंध है, कुछ ने सुझाव दिया है कि धारा 11 के अन्तर्गत आदेश "प्रशासनिक" ही रहने चाहिए तथा "भारत का मुख्य न्यायमूर्ति" या "उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्ति" या उनके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्ति शब्द ऐसे ही रहने चाहिए। कुछ अन्य लोगों ने सुझाव दिया कि यदि अधिकार क्षेत्र के कतिपय प्रारम्भिक मुद्दों को उस स्तर पर ही हल किया जा सकता है (बशर्ते मौखिक साक्ष्य आवश्यक न हो), यह बेहतर होगा कि "उच्चतम न्यायालय" या "उच्च न्यायालय", यथास्थिति, द्वारा न्यायिक पक्ष पर आदेश जारी किए जाएं। विशेष रूप से भारतीय व्यापारिक प्रकोष्ठ द्वारा आयोजित मुम्बई संगोष्ठी में अनेक सेवानिवृत्त न्यायाधीशों और अन्य लोगों ने भाग लिया। वास्तव में, भारतीय व्यापारिक प्रकोष्ठ ने विद्यमान धारा 11 में अन्तःस्थापित करने के लिए प्रावधान का प्रारूप प्रस्तुत किया।

परामर्श-पत्र के अनेक उत्तरों में आयोग को यह सावधानी बरतने के लिए कहा गया कि उसे "1940 अधिनियम माईंडसेट" को ध्यान में नहीं रखना चाहिए बल्कि अनसिट्राल मॉडल को ध्यान में रखना चाहिए। दिन की समाप्ति पर, आयोग ने ऐसा महसूस किया कि "1940 अधिनियम माईंडसेट" नहीं होना चाहिए, यदि वैकल्पिक सुझावों से अनसिट्राल मॉडल में सुधार किया जा सकता है तो अन्य वैकल्पिक सुझावों को भी ग्रहण किया जाना चाहिए। अनेक देशों ने, जिन्होंने मॉडल विधि को आधार के रूप में अपनाया है, अपनी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए कुछ परिवर्तन किए है। हमें "1940 अधिनियम माईंडसेट" नहीं अपनाना चाहिए, इसका मतलब यह नहीं है कि हमें सोच-विचार करना ही बन्द कर देना चाहिए और मॉडल विधि में सुधार लाने के प्रयास नहीं करने चाहिए। इस प्रकार उद्देश्यपरक विचार कि पक्षकारों के लिए क्या बेहतर होगा जो माध्यस्थम की मांग करते है न तो "1940 अधिनियम माईंडसेट" का अनावश्यक अनुपालन ही समग्र रूप से "अनसिट्राल माईंडसेट" बनाये रखने की अनावश्यक उत्सुकता वांछनीय है।

इस समय, हमें उन लोगों को यह दिखाना होगा, जिन्होंने यह सुझाव दिया है कि "1940 अधिनियम माईंडसेट" से दूर रहा जाए, उन्होंने वास्तव में एक या दूसरे विकल्पों को अपनाने से होने वाले लाभ और हानियों का गहराई से अध्ययन नहीं किया है। वे लोग, जो यह मानकर चलते है कि यदि धारा 11 के आदेश न्यायिक पक्ष पर पारित किए जाते है तो, न्यायालय का अनावश्यक हस्तक्षेप होगा। आयोग महसूस करता है कि उन्होंने विस्तार से इस मामले को नहीं देखा है बल्कि उन्होंने किसी प्रकार के पूर्वधारित विचारों के आधार पर ही ऐसे विचार व्यक्त किए थे। अतः आयोग यह महसूस करता है कि वैकल्पिक सुझावों के व्यवहारिक लाभ और हानियों की विस्तार-पूर्वक जांच किए जाने की आवश्यकता है।

हम सर्वप्रथम उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वीकार किए गए इस सिद्धान्त को लेते हैं कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति द्वारा धारा 11 के अन्तर्गत जारी किए गए आदेश "प्रशासनिक आदेश" हैं। उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्ति या उनके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्तियों द्वारा धारा 11 के अन्तर्गत जारी किए गए आदेशों की भी स्थिति भी यही है।

कोंकण रेलवे मामला सं॰ 1 के बाद भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालयों में अनेक रिट याचिकाएं दायर की गई जिनमें उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्ति या उनके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्तियों के आदेशों पर आपत्ति व्यक्त की गई। इनमें से अधिकांश याचिकाएं राज्य या सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों द्वारा दायर की जाती हैं जिसमें मुख्य न्यायाधीश या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्ति द्वारा मध्यस्थ की नियुक्ति के आदेश पर आपत्ति व्यक्त की जाती है। सामान्यतया निम्नलिखित मुद्दे उठाए जाते हैं:—

(i) कि विवाद "स्वीकार्य" मामलों से संबंधित है;

(ii) कि ठेकेदार ने भुगतान के लिए रसीद पर हस्ताक्षर कर दिए हैं और यह स्वीकार किया है कि उसका और कोई दावा नहीं है;

(iii) केवल एक विभागीय अधिकारी को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया जाना चाहिए था या कि यदि कोई विभागीय मध्यस्थ नहीं नियुक्त किया जाता था तो कोई माध्यस्थम नहीं होना चाहिए।

2.8.7 भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का आदेश

अब भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्ति के प्रशासनिक आदेश या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्ति के प्रशासनिक आदेश की विधिक मामले के रूप में अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत न्यायिक समीक्षा की जा सकती हैं। यह हो सकता है कि न्यायमूर्ति के प्रशासनिक आदेश को अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत तुरन्त चुनौती न दी जा सके किन्तु इसे अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत चुनौती दी जा सकती है। किन्तु कोंकण रेलवे मामला के 1 में यह स्वीकार किया गया था कि मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं की गई थी, पक्षकार अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत परमादेश की रिट कर सकते हैं वास्तव में, परमादेश जारी करने से पूर्व मुख्य न्यायमूर्ति के आदेश को रद्द करना होगा और इसे परिदृश्य से अलग करना होगा। प्रारम्भ में, जब तक मध्यस्थ की नियुक्ति न करने संबंधी प्रशासनिक आदेश को रद्द नहीं किया जाता तब तक परमादेश जारी करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

यदि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का आदेश एक 'प्रशासनिक प्राधिकारी' का आदेश है तो अधिनियम की धारा 5, जो कार्यवाहियों में मध्यक्षेप करने से किसी न्यायिक प्राधिकरण को प्रतिषेध करती है, का उपयोग नहीं किया जाएगा क्योंकि आदेशों को प्रशासनिक पक्ष पर धारा 11 के अन्तर्गत न्यायमूर्ति द्वारा पारित किया जाता हैं। किसी भी विषय में धारा 5 अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत आवेदन पत्र को प्रतिषेध नहीं कर सकती है। रिट याचिका में भी एक न्यायमूर्ति के निर्णय पर दो विद्वान न्यायधीशों की पीठ के समक्ष प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है और तत्पश्चात इस मामले को अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायायलय को भेजा जा सकता है। इस प्रकार, प्रशासनिक पक्ष पर उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय में न्यायमूर्ति द्वारा धारा 11 के अन्तर्गत दिए गए आदेश के बाद धारा 226 के अन्तर्गत आवेदन पत्र से शुरू होकर तीन स्तरों से होकर मुकदमेबाजी तक जा सकता है।

यदि धारा 11 के अन्तर्गत इन आदेशों को प्रशासनिक पक्ष पर, न्यायमूर्ति द्वारा पारित किए जाने के बजाय न्यायिक पक्ष पर न्यायालय द्वारा पारित किया जाता है तो स्थिति क्या होगी? क्या यह अधिक लाभप्रद है?

अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में धारा 11 के अन्तर्गत आदेश के मामले में – यदि आदेश 'उच्चतम न्यायालय' (और प्रशासनिक पक्ष पर भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्ति द्वारा नहीं) अर्थात दो या अधिक न्यायाधीशों की पीठ द्वारा न्यायिक पक्ष पर पारित किया जाता है, उसके बाद अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय में किसी रिट याचिका के दायर करने का प्रश्न ही नहीं उठता। वास्तव में, 'उच्चतम न्यायालय' का आदेश अंतिम तथा सभी पर बाध्य हो जाएगा। स्पष्ट रूप से तीन स्तरीय मुकदमेबाजी, जो संभव है यदि आदेश प्रशासनिक पक्ष पर है, से तुरन्त बचा जा सकता है। निश्चित रूप से यह बेहतर विकल्प है।

इसी प्रकार, यदि धारा 11 आवेदन पत्रों में आईसीएसी॰ मॉडल के अन्तर्गत प्रारम्भिक मामलों का प्रशासनिक पक्ष के बजाए न्यायिक पक्ष पर निर्णय किया जाता है तो अधिकारिता मामले पर उच्चतम न्यायालय का निर्णय धारा 11 स्तर ही अंतिम हो जाएगा तथा इसके बाद अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत एक न्यायमूर्ति के समक्ष, तत्पश्चात एक पीठ के समक्ष तथा तत्पश्चात अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत ऐसे आदेशों के विरुद्ध मुकदमेबाजी के तीन स्तरों से स्पष्ट रूप से बचा जाता है।

2.8.8 उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्ति के आदेश

जहां तक धारा 11 के अन्तर्गत भारतीय नागरिकों के बीच केवल आंतरिक माध्यस्थम के मामले का संबंध है, यदि आदेश प्रशासनिक पक्ष पर है, भारत के संविधान के अन्तर्गत इसे न्यायाधीश के समक्ष, तत्पश्चात खण्ड पीठ (चूंकि धारा 5 प्रशासनिक आदेशों पर लागू नहीं होती है) तथा उच्चतम न्यायालय के समक्ष धारा 226 के अन्तर्गत चुनौती दी जा सकती हैं यदि धारा 11 के अन्तर्गत आदेश न्यायिक पक्ष पर उच्च न्यायालय द्वारा पारित किया जाता है तो यह अधिनियम की धारा 11 के अन्तर्गत एक न्यायिक आदेश है यदि इसे उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश द्वारा पारित किया जाता है तो भी धारा 5, जो खण्ड पीठ को अपील वर्जित करती है, जिसे हम स्पष्टीकरण अन्तःस्थापित करके स्पष्ट करने जा रहे हैं, के कारण खण्ड पीठ को कोई अपील नहीं की

जाएगी। केवल अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत ही अपील की जाएगी। यदि प्रारम्भ में कुछ उच्च न्यायालयों में प्रक्रिया के नियमों के अनुसार खण्ड पीठ द्वारा धारा 11 के अन्तर्गत आदेश पारित किया जाता है, इसके विरुद्ध अन्य प्रतिविधान अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत ही हैं। इस प्रकार, प्रशासनिक पक्ष पर न्यायालय द्वारा आदेश, एकल न्यायाधीश, एक खण्ड पीठ और तत्पश्चात उच्चतम न्यायालय के समक्ष अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत नयी रिट याचिका में न्यायिक समीक्षा के अध्यधीन होगा। यदि यह न्यायिक पक्ष पर है तो स्थिति यह होगी कि अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत केवल एक अपील की जाएगी। यह भी लाभप्रद है।

लाभों का सार यह कि जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों माध्यस्थम का संबंध है यदि धारा 11 के अन्तर्गत आदेश न्यायिक पक्ष पर है, उनमें मुकदमेबाजी के सभी तीन स्तरों को वर्जित किया जाता है तथा जहां तक भारतीय नागरिकों के बीच केवल आंतरिक माध्यस्थम का संबंध है, तीन स्तरों के बावजूद अनुच्छेद 136 के अन्तर्गत मुकदमेबाजी का केवल एक स्तर है।

स्पष्ट रूप से उपरोक्त चर्चा से यह सिद्ध होता है कि वे लोग, जो धारा 11 के अन्तर्गत आदेशों की विद्यमान स्थिति को प्रशासनिक पक्ष पर अधिक लाभप्रद मानते हैं उन्हें हो सकता है दो विकल्पों के लाभ या हानि के पहलु की पूर्ण जानकारी न हो। इसलिए, आयोग की राय में धारा 11 के अन्तर्गत आवेदन पत्र भारत में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के मामलों में उच्चतम न्यायालय को "न्यायिक पक्ष" पर प्रस्तुत किए जाने हैं। तथा केवल आंतरिक माध्यस्थम के मामले में उच्च न्यायालय को प्रस्तुत किए जाने हैं ।

वास्तव में, अनसिट्रल मॉडल में व्यवस्था है कि अनुच्छेद 11 के अन्तर्गत आवेदन पत्र "न्यायालय" के समक्ष रखे जाने चाहिए। अनसिट्रल मॉडल के आधार पर दूसरे देशों ने भी कानून बनाये हैं, इन आवेदन पत्रों पर निर्णय लेने हेतु न्यायालयों को शक्तियां प्रदान की हैं [देखिए मॉडल कानून का अनुच्छेद 11(4), कनेडियन अधिनियम, 1985 का अनुच्छेद 11, कोरियन अधिनियम, 1999 का अनुच्छेद 11, स्वीडिश अधिनियम, 1999 की धारा 14 और न्यूजीलैण्ड अधिनियम, 1996 की अनुसूची 1 का अनुच्छेद 11]।

आयोग के विचार से हाल का आईरिश अधिनियम, 1996 हमें सही मार्ग निर्देश प्रदान करता है। आईरिश अधिनियम, जो उच्च न्यायालय के अध्यक्ष या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्ति को इनका और अन्य आवेदन पत्रों का निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करता है, में यह व्यवस्था है कि आवेदन पत्र "उच्च न्यायालय" को प्रस्तुत किए जाने चाहिए तथा यह व्यवस्था करता है कि उच्च न्यायालय का मतलब न्यायालय के अध्यक्ष या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्ति से है। यह स्पष्ट है कि आवेदन पत्र केवल "न्यायिक पक्ष" पर ही है।

आईरिश अधिनियम, 1996 के संबंधित प्रावधान निम्नलिखित हैं:—

"धारा 6 (1) उच्च न्यायालय अनुच्छेद 6 के प्रयोजन के लिए विनिर्दिष्ट है और अनुच्छेद 9 के प्रयोजन के लिए न्यायालय है तथा अनुच्छेद 27, 35 और 36 के प्रयोजन के लिए सक्षम अधिकारिता का न्यायालय है।

(2) उपधारा (1) में निर्देशित किए गए अनुच्छेद के अन्तर्गत उच्च न्यायालय के कार्य और धारा 7, 11(7) और (9) तथा (14) के अन्तर्गत इसके कार्य निम्न के द्वारा निष्पादित किए जाएंगे:—

(क) उच्च न्यायालय के अध्यक्ष, या

(ख) अध्यक्ष द्वारा नामनिर्दिष्ट उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, बशर्ते कि इसके लिए नियम बनाए गए हों।"

उपरोक्त को देखते हुए आयोग ने प्रस्ताव किया है कि "भारत का मुख्य न्यायमूर्ति" शब्दों के स्थान पर "उच्चतम न्यायालय" शब्द और "उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति" शब्दों के स्थान पर "उच्च न्यायालय" शब्द प्रतिस्थापित करके धारा 11 को उपयुक्त रूप से संशोधित किया जाए।

2.8.9 क्या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा नामोदिष्ट व्यक्ति है

परामर्शी पत्र के एक उत्तर में यह अनुरोध किया गया था कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति केवल नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में कार्य कर रहे हैं, जब वे मध्यस्थों की नियुक्ति करने के लिए धारा 11 के अन्तर्गत अपनी शक्तियों का उपयोग कर रहे हों और यह वे अपनी "व्यक्तिगत क्षमता" में कर रहे हैं तथा अपनी अधिकारिता क्षमता में नहीं और संवैधानिक अधिकारी के रूप में नहीं तथा ऐसे आदेश सांविधिक

अपीलीय या पुनरीक्षण के अन्तर्गत न्यायिक समीक्षा के लिए भी/भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत भी अध्यधीन नहीं है। यदि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति प्रशासनिक प्राधिकारी भी नहीं हैं किन्तु अपनी व्यक्तिगत क्षमताओं में धारा 11 के अन्तर्गत आदेश पारित कर रहे हैं, वे भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत भी उपचार अपवर्जित कर सकते हैं।

वास्तव में, आयोग महसूस करता है कि ये प्राधिकारी नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में कार्य कर रहे हैं, यह धारा 11 में इस स्पष्टीकरण को अन्तःस्थापित भी कर सकता है कि इन प्राधिकारियों को नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में शक्तियों का उपयोग करने वाला समझा जाना चाहिए ताकि अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत भी न्यायालय के अध्यक्षेप का कोई विस्तार नहीं हो सकेगा। एक ऐसी स्थिति आदर्श होगी और उस स्थिति से बेहतर होगी, जहां आदेशों को ''प्रशासनिक'' या ''न्यायिक'' के रूप में भी माना गया था।

किन्तु यहां कठिनाई यह है कि कोंकण रेलवे सं॰ 1 में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा है कि ध ारा 11 के अन्तर्गत आदेश स्वरूप में ''प्रशासनिक'' है और यह भी बताया गया है कि परमादेश की रिट भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या उनके द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्तियों को जारी की जा सकती है। इसलिए, आदेशों को इन न्यायमूर्तियों द्वारा अपनी निजी क्षमता में पारित आदेशों के स्तर तक लाने में कठिनाई है।

सेन्ट्रल टाकिज लिमिटेड बनाम द्वारका प्रसाद (ए॰आई॰आर॰ 1961 एस॰सी॰ 606) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय और इसमें दिए गए निम्नलिखित पैरा की ओर ध्यान आकर्षित किया गया था:

> ''एक नामोदिष्ट व्यक्ति ऐसा व्यक्ति है जिसे विशेष व्यक्ति के रूप में बताया जाता है या उल्लेख किया जाता है जैसाकि किसी वर्ग के सदस्य के रूप में जाने गए व्यक्ति के विपरीत या विशेष गुण वाले व्यक्ति के रूप में (देखिए ओसबोर्नस कोनसाइज लॉ डिक्शनरी, चौथा संस्करण, पृष्ठ 253)।''

उच्चतम न्यायालय ने यह पाया कि:

> ''पारथासारथी नायडू बनाम कोटेश्वरा राव आई, एल॰आर॰ 47 मद्रा॰ 369 (ए॰आई॰आर॰ 1924 मद्रा॰ 561) (एफ बी) में सचवबे सी जे के शब्दों में नामोदिष्ट व्यक्ति ऐसे व्यक्ति हैं जिनका चयन न्यायाधीशों के रूप में अपनी निजी क्षमता में कार्य करने के लिए किया जाता है।''

यह आदेश का पैरा है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत के मुख्य न्यायाधीश या उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश नामोदिष्ट व्यक्ति हैं। किन्तु हमारी राय में यह पैरा सहायता नहीं कर सकता यदि इन कारणों को ध्यान में रखा जाता है कि क्यों धारा 11 में मुख्य न्यायाधीश को मध्यस्थों की नियुक्ति हेतु प्राधिकारी के रूप में पदनामित किया जाता है – अर्थात अपनी संवैधानिक क्षमता में उनके द्वारा की गई मध्यस्थ की नियुक्ति से अधिक विश्वास उत्पन्न होगा।

हमारी राय में, यह नहीं कहा जा सकता है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का धारा 11 के अन्तर्गत कार्य करने के लिए चयन किया जाता है न कि न्यायमूर्ति के रूप में अपनी क्षमता में बल्कि न्यायमूर्ति के रूप में केवल अपनी निजी क्षमता में। आयोग की राय में, यह स्वीकार करना संभव नहीं है कि उच्चतर न्यायालयों के न्यायाधीशों के रूप में अपनी संवैधानिक क्षमता से बाहर भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति का चयन विधान मंडल द्वारा किया जाता है। इन अधिकारियों का अपने कार्यभार के कारण विशेष रूप से चयन किया जाना प्रतीत होता है और इसे विचार से मध्यस्थों की नियुक्ति की प्रक्रिया में अधिक विश्वास प्रदान करना है और विशेष रूप से इन उच्च अधिकारियों द्वारा नियुक्त किए गए मध्यस्थों कि स्वतंत्रता और निष्पक्षता के बारे में उन विदेशी नागरिकों या कम्पनियों को आश्वस्त करना है जो अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम करार (जब माध्यस्थम का पद भारत में हो) के लिए एक पक्षकार हो सकते हैं। इस पृष्ठभूमि में यह स्वीकार करना कठिन है कि इन उच्च पदस्थ न्यायिक अधिकारियों को, इनके कानूनी पद को ध्यान में रखते हुए नहीं बल्कि धारा 11 के अन्तर्गत, चयन किया जाता है। जनरल टॉकिज के मामले में यह तर्क कि जिला मजिस्ट्रेट को उत्तर प्रदेश (अस्थायी) किराया और बेदखली नियन्त्रण अधिनियम (1947 का 3) के अन्तर्गत शक्तियां विनिहित की गई थीं, नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में खारिज कर दिया गया था।

2.8.10 यह अनुचित होगा यदि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्ति को सांविधिक रूप से "नामोदिष्ट व्यक्ति" माना जाना:

तब प्रश्न यह उठता है कि क्या तब भी हम धारा 11 में एक स्पष्टीकरण जोड़कर "भारत के मुख्य न्यायमूर्ति' तथा मुख्य न्यायमूर्तियों को "नामोदिष्ट व्यक्ति" के रूप में "धारणा" का प्रावधान कर सकते हैं। आयोग महसूस करता है कि यह वास्तव में कठिन है। जनरल यौकिंग मामले में, उच्चतम न्यायालय ने पार्थसारथी नायडू बनाम कोटेश्वर राव (एआईआर 1924 मद्रा 369) में मद्रास उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय को अनुमोदित किया था। वह मामला निर्वाचन आयुक्त के रूप में जिला न्यायाधीश को शक्तियां प्रदान करने से संबंधित है। उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि जिला न्यायाधीश नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में कार्य कर रहा था। महाबलेश्वरप्पा बनाम गोपालस्वामी मुदालियर (एआईआर 1935 मद्रास पृष्ठ 673) में इसी उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के बाद के निर्णय से यह पता चलता है कि 1924 के निर्णय के बाद, मद्रास सरकार ने संबंधित निर्वाचन नियमों में नियम 1(3) में धारणा प्रावधान किया था जिसमें जिला न्यायाधीश को "नामोदिष्ट व्यक्ति" के रूप में माना गया था तथा सरकारी क्षमता में कार्य करने के लिए नहीं। नया नियम निम्नवत था:—

"इन नियमों के अन्तर्गत अधिकारिता का प्रयोग करते हुए एक निर्वाचन आयोग को ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने हेतु नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में माना जाएगा न कि न्यायाधीश या अन्य सरकारी अधिकारी के रूप में, यथास्थिति, अपनी क्षमता में कार्य करने के लिए नहीं।"

धारणा प्रावधान के बावजूद, उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने महाबलेश्वरप्पा के मामले में यह निर्णय दिया कि यह प्रावधान सहायता नहीं करता है तथा यह कि अधिनियम के अन्तर्गत जिला न्यायाधीश द्वारा प्रयोज्य कार्यों के कारण, वह न्यायिक क्षमता में कार्य कर रहा था तथा नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में कार्य नहीं कर रहा था, वह दंड प्रक्रिया संहिता (1898) की धारा 195 और 471 के प्रयोजन हेतु वैध रूप से शिकायत कर सकता है और वह अभी भी न्यायिक क्षमता में कार्य करता रहेगा। दिरजी बनाम गोप (ए.आई.आर. 1941 पटना 65) में पटना उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए गए थे जहां मुख्य न्यायाधीश और न्यायाधीशों हेरिज फजल अली, मनोहर लाल और फजल अली ने यह पाया कि यह नामोदिष्ट व्यक्ति का कार्यात्मक पहलु था, यह महत्वपूर्ण था और जहां न्यायालय के अधिकारी ने कहा कि एक जिला न्यायाधीश से जिला न्यायाधीश के रूप में नहीं बल्कि नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में कतिपय मामलों में निर्णय लेने की अपेक्षा की जाती है, वह अभी भी कानून में कुछ विशेष प्रावधान करने के कारण एक न्यायालय है जो इस मामले में निर्णय लेने के लिए उसे प्राधिकृत कर रहा है।

यह 1996 अधिनियम की धारा 11 उपधारा (7) में "निर्णय" शब्द का उपयोग करता है। अतः इसी अनुरूपता पर यदि हम यह बताते हुए धारणा प्रावधान का भी प्रयोग करते हैं कि धारा 11 में न्यायाधीशों को नामोदिष्ट व्यक्ति माना जाए, उनके आदेश अभी भी अनुच्छेद 226 के अधीन होंगे जैसाकि कोंकण रेलवे मामला सं० 1 में निर्णय लिया गया था कि केवल नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में प्रशासनिक प्राधिकारी का उल्लेख करके कठिनाई से बचा जा सकता है। यदि "न्यायिक प्राधिकारी" को धारणा प्रावधान के जरिये नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में जाना जा सकता है, तब इसी प्रकार प्रशासनिक प्राधिकारी को भी धारणा प्रावधान का प्रयोग करके केवल निजी क्षमता में कार्य करने वाले व्यक्ति के रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता है। उक्त पदनाम के बाद भी, कार्यात्मक गतिविधियां उसे प्रशासनिक प्राधिकारी के रूप में बनाए रखती है (कोंकण रेलवे मामला सं० 1 में निर्णय लिए गए सिद्धान्त के अनुसार और महाबलेश्वरप्पा मामले में लिए गए निर्णय के अनुसार)।

इसके अतिरिक्त, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को धारा 11 के अन्तर्गत कतिपय प्रारम्भिक मामलों में निर्णय लेना है जैसा कि आई.सी.सी. नियम, 1998 के अनुच्छेद 6 के अन्तर्गत आई.सी.सी. न्यायालय द्वारा किया जा रहा है, तत्पश्चात् प्रश्न यह उठता है कि क्या मुख्य न्यायमूर्ति को अभी भी केवल निजी क्षमता में नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में कार्य करते रहने के लिए कहा जा सकता है। इसके अलावा, अनेक राज्यों में विभिन्न उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा बनायी गई स्कीमों के अन्तर्गत मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा पदनामित व्यक्तियों में उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश या जिला न्यायाधीश शामिल हैं तथा यह संबंधित दावों के धन संबंधी मूल्यों पर निर्भर करता है। इन परिस्थितियों में, आयोग के लिए इस तर्क को स्वीकार करना कठिन है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को कानून द्वारा नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में माना जा सकता है अर्थात् जब वे मध्यस्थों की नियुक्ति करते हैं या ऐसी नियुक्ति के लिए दूसरे व्यक्ति

या प्राधिकारी को इन मामलों को भेजते हैं, तो वे कुल मिलाकर अनुच्छेद 226 के कार्यक्षेत्र से उसे बाहर रखने के लिए निजी क्षमता में कार्य कर रहे हैं।

ऐसे मामलों के बीच विभेद है, जहां माध्यस्थम करार के अन्तर्गत पक्षकार किसी मध्यस्थ की नियुक्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य मंडल, इन्टरनेशनल चैम्बर ऑफ कामर्स (आई॰सी॰सी॰) या इन्टरनेशनल सेन्टर फोर अल्टरनेट डिस्प्यूट रिजोलुशन (आई॰सी॰ए॰डी॰आर॰) या वाणिज्य मंडल को प्रस्तुत करने हेतु तुरन्त सहमत हो जाते हैं और धारा 11 के अन्तर्गत मामले, जहां कानून भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति को मध्यस्थों की नियुक्ति करने की शक्तियां प्रदान करता है तथा मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए दूसरे व्यक्ति या प्राधिकारी को पदनामित करने हेतु उसे प्राधिकृत करता है। इस प्रकार, यदि कानून उच्च न्यायालयों न्यायाधीशों के रूप में अपने पद के कारण इन शक्तियों का प्रयोग करने हेतु इन उच्च संवैधानिक कृत्यकारियों को भेजा गया है तो इस तर्क को स्वीकार करना कठिन है कि वे नामोदिष्ट व्यक्ति हैं।

उपरोक्त कारणों के लिए हमें यह स्वीकार करना होगा कि धारा 11 में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों को नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में नहीं गृहित किया जा सकता और यदि उन्हें नामोदिष्ट व्यक्ति गृहित करके कानूनी कल्पना की जा सकती है जो कोंकण रेलवे मामला सं॰ 1 में जो निर्णय लिया गया है, उसे ध्यान में रखते हुए प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए संवैधानिक कृत्यकारियों के रूप में उनके स्तर से बाहर लाना कठिन होगा और इसलिए, उन्हें संविधान के अनुच्छेद 226 के कार्यक्षेत्र से बाहर नहीं रखा जा सकता है।

जैसाकि पहले ही उल्लेख किया गया है, मुख्य मुद्दे पर वापिस आते हुए स्थिति यह है कि प्रशासनिक से न्यायिक अधिकारिता में परिवर्तन करके, जहां तक भारत में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम का संबंध है, उपायों के तीन स्तरीय अधिक्रम को परिवर्जित किया जा सकता है और अनुच्छेद 226 पूर्णतया परिवर्जित हो जाएगा। जहां तक भारतीय नागरिकों के बीच केवल घरेलू माध्यस्थम का संबंध है, धारा 5 और धारा 5 में प्रस्तावित स्पष्टीकरण के कारण यह मुकदमेबाजी के तीन स्तरों से कम होकर एक स्तरीय उपाय रह जाएगा। इस प्रकार, वादी के लिए प्रशासनिक प्राधिकारियों या नामोदिष्ट व्यक्ति के रूप में इन कृत्यकारियों को बनाए रखने का सुझाव उपयुक्त नहीं है।

2.8.11 धारा 11(4), 11(5) और 11(6) की आज्ञापक या निदेशात्मक प्रकृतिः

प्रश्न यह उठा है कि क्या धारा 11(4) और 11(5) में समय सीमाएं आज्ञापक हैं तथा क्या 11(6) में समय सीमाएं निर्धारित की जानी है।

धारा 11(4) में यह व्यवस्था है कि यदि कोई पक्षकार दूसरे पक्षकार से मध्यस्थ नियुक्त करने हेतु अनुरोध प्राप्त होने से 30 दिन के भीतर ऐसा करने में असफल रहता है या जहां दो या अन्य नियुक्त मध्यस्थ अपनी नियुक्ति की तारीख से 30 दिन के अन्दर तीसरे मध्यस्थ पर सहमत नहीं होते हैं तो मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट कोई व्यक्ति या संस्था मध्यस्थों की नियुक्ति के संबंध में आदेश पारित कर सकते हैं।

धारा 11(5) में इसी प्रकार की समय सीमा है इसमें यह व्यवस्था है कि एक मात्र मध्यस्थ के साथ माध्यस्थम में धारा 11(2) में निर्दिशित किए गए किसी करार के असफल रहने पर यदि पक्षकार दूसरे पक्षकार से मध्यस्थ पर सहमत होने के लिए एक पक्षकार द्वारा किए गए अनुरोध की प्राप्ति से 30 दिन के अन्दर ऐसा करने हेतु सहमत नहीं होता है तो एक पक्षकार के अनुरोध पर मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा नियुक्ति की जाएगी। प्रश्न यह उठा है कि क्या धारा 11(4) और धारा 11(5) 30 दिन की समय सीमा (जिसे 60 दिन तक बढ़ाये जाने का हमारा विचार है) आज्ञापक है? नगिनभाई सी॰ पटेल बनाम यू॰ओ॰आई॰ [1999(2), मुम्बई सी॰ आर॰ 1999(2) माध्यस्थम एल.आर. 343], डी.एम.एल. लिमिटेड बनाम एम.टी.एन.एल. एवं अन्य, 2000(2) माध्यस्थम एल.आर. 190(दिल्ली) में धारा 11(4) और (5) में विहित 30 दिन की सीमा आज्ञापक अधिनिर्धारित की गई थी और यदि नोटिस प्राप्त करने वाले पक्षकार ने नोटिस प्राप्त करने के 30 दिन के भीतर कोई कार्यवाही नहीं की तो वह संविदा के अन्तर्गत मध्यस्थ नियुक्त करने का उसका अधिकार समपहृत हो जाएगा। शर्मा एण्ड कम्पनी बनाम प्रमुख इंजीनियर, सेना मुख्यालय, नई दिल्ली, 2000(2) माध्यस्थम एल॰आर॰ 31(ए.पी.) में धारा 11(6) के अन्तर्गत इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया है। तथापि, दतार स्विच गियर लिमिटेड बनाम टाटा फाइनेन्स लिमिटेड, 2000(3) माध्यस्थम एल.आर.

447 (एस्सी॰)-200 अनुपूरक (2) जेटी॰ 226) में उच्चतम न्यायालय ने धारा 11 की उपधारा (4) और (5) के विपरीत धारा 11(6) के अन्तर्गत एक मामले में कार्यवाही की थी जिसमें कोई समय सीमा विहित नहीं की गई थी। न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि यह निर्णय लेना अनिवार्य नहीं है कि क्या धारा 11(4) और (5) के अन्तर्गत समय सीमा आज्ञापक है या नहीं। यह निर्णय दिया गया कि धारा 11(6) के अन्तर्गत उस उपधारा में कोई समय सीमा नियत नहीं की गई थी, विपक्षी पक्षकार में निहित किया मध्यस्थ नियुक्त करने का अधिकार 30 दिन के बाद भी अधिनिर्धारित नहीं किया जाता है बशर्ते कि प्रथम पक्षकार के समक्ष विपक्षी पक्षकार द्वारा नियुक्ति की गई हो अर्थात् नियुक्ति के लिए नोटिस देने वाले पक्षकार ने धारा 11 के अन्तर्गत अपना अभ्यावेदन प्रस्तुत किया हो।

यह सुझाव दिया गया है कि (i) कि जहां तक धारा 11(4) और (5) का संबंध है, उच्च न्यायालयों का दृष्टिकोण सही है और यह कि 30 दिन की अवधि, जिसे बढ़ाकर 60 दिन करने का हमारा प्रस्ताव है, को आज्ञापक माना जाना चाहिए, (ii) यह कि जहां तक धारा 11(6) का संबंध है, कुछ समय सीमा विहित की जाए जो कि आज्ञापक होगी। दूसरी ओर वाद-विवाद में भाग लेने वाले कुछ लोगों द्वारा यह बताया गया था कि धारा 11(4) और धारा 11(5) के अन्तर्गत शक्ति को आज्ञापक नहीं माना जाना चाहिए और धारा 11(6) के अन्तर्गत कोई अवधि विहित नहीं की जानी चाहिए।

हम पहले धारा 11(4) और धारा 11(5) को देखेंगे तथा तत्पश्चात् धारा 11(6) को अलग से लेंगे।

2.8.12 धारा 11(4) और धारा 11(5)

अधिकांश मामलों में यह बताया गया है कि मध्यस्थ की नियुक्ति करने के लिए नोटिस प्राप्त करने वाला पक्षकार महीनों तक कोई उत्तर नहीं भेजता है। यदि यह सरकारी विभाग या सरकारी क्षेत्र का उपक्रम या एक कानूनी निकाय है तो कोई भी उत्तरदायित्व नहीं लेना चाहता। इस प्रकार दूसरा पक्षकार उलझन में पड़ जाता है कि धारा 11 के अन्तर्गत क्या और कब न्यायालय में जाना चाहिए। वास्तव में, पहले पक्षकार के धारा 11 के अन्तर्गत न्यायालय में जाने के पश्चात् उपरोक्त प्राधिकरण दावा करते हैं कि उन्हें अपने कर्मचारी को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त करने का अधिकार है। इस प्रकार का आचरण उचित प्रतीत नहीं होता है।

जहां तक धारा 11(4) और धारा 11(5) का संबंध है, आयोग का यह दृष्टिकोण है कि यह अवधि 60 दिन होनी चाहिए और इसे आज्ञापक माना जाना चाहिए। इसलिए, यह विचार किया जाता है कि अनुरोध प्राप्त करने के पश्चात् यदि विहित समय के भीतर मध्यस्थों की नियुक्ति नहीं की जाती है तो नियुक्ति का अधिकार, यदि कोई हो, उस पक्षकार को प्रदान किया जाता है, जिसे नोटिस जारी किया जाता है, तो किया गया प्रावधान अधिनिर्धारित हो जाएगा।

2.8.13 धारा 11(6)

धारा 11(6) में, संबद्ध प्रावधान तीन खंडों में है और इसे निम्नवत् पढ़ा जाए:—

"धारा 11(6) जहां पक्षकारों द्वारा पाई गई करार किसी नियुक्ति की प्रक्रिया के अधीन—

(क) एक पक्षकार उस प्रक्रिया के अधीन अपेक्षित रूप में कार्य करने में असफल रहता है; या

(ख) पक्षकार या दो नियुक्त मध्यस्थ उस प्रक्रिया के अधीन उनसे अपेक्षित किसी करार पर पहुंचने पर असफल रहते हैं; या

(ग) एक संस्था को सम्मिलित कर एक पक्षकार उस प्रक्रिया के अधीन ये या उसको सौंपे गए किसी कृत्य को करने में असफल हो जाता है।

एक पक्षकार आवश्यक कार्यवाही करने के लिए मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था से अनुरोध कर सकेगा जब तक नियुक्ति प्रक्रिया पर नियुक्ति प्राप्त करने के लिए दूसरे माध्यमों का प्रावधान नहीं करता है।"

किन्तु दतार स्विच गियर मामले में उच्चतम न्यायालय ने धारा 11(6) के तहत यह निर्णय दिया कि जहां तक धारा 11(6) के अन्तर्गत अन्य पक्षकार न्यायालय में नहीं जाते है, पक्षकार धारा 11(6) में निर्देशित उपाय कर सकते हैं। धारा 11(6) के संबंध में आयोग का प्रस्ताव है कि यदि नियुक्ति प्रक्रिया से सहमति व्यक्त की

जाती है किन्तु उस प्रक्रिया के अधीन कोई उपाय नहीं किए गए हैं तो उक्त उपायों के अधिकार को अधित्यजन करना माना जाएगा। आयोग किसी अन्य समय सीमा पर विचार नहीं कर रहा है।

यदि दूसरा पक्षकार अपने मध्यस्थ की नियुक्ति नहीं करता है तो एक पक्षकार द्वारा नियुक्त किए गए मध्यस्थ को एकल मध्यस्थ के रूप में जानने हेतु प्रावधान करने के लिए इंग्लिश-अधिनियम, 1996 की धारा 17 पर आधारित बम्बई संगोष्ठी में एक सुझाव भी दिया गया था। आयोग का ऐसे प्रावधान की सिफारिश करने का इरादा नहीं है। धारा 11(4) द्वारा इस स्थिति को प्रचुर मात्रा में कवर किया गया है।

2.8.14 धारा 42 और धारा 11

जहां तक न्यायिक पक्ष पर उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय को धारा 11 के अधीन आवेदन-पत्र प्रस्तुत किए जाने का प्रश्न है, धारा 42 में यह प्रावधान करने की आवश्यकता है कि उत्तरवर्ती आवेदन पत्र कहां प्रस्तुत किए जाने हैं। धारा 42 की प्रस्तावित उपधारा (5) में यह व्यवस्था की गयी है। उस उपधारा के अन्तर्गत यदि माध्यस्थम भारत में है और सम्पत्ति भारत में है तो उत्तरवर्ती आवेदन-पत्र प्रस्तावित धारा 2(1) (ङ) में विनिर्दिष्ट न्यायालयों में प्रस्तुत किए जाने हैं अर्थात् जिले या शहर में प्रधान न्यायालय या उच्च न्यायालय के मूल पक्ष, यह न्यायालयों की आर्थिक सीमाओं पर निर्भर करता है (देखिए पैरा 2.30.5 और 2.30.6)

2.8.15 धारा 11 में सुधार लाने के लिए सिफारिशें

उपरोक्त को देखते हुए धारा 11 में निम्नवत सुधार लाए जाने का प्रस्ताव है:

प्रधान अधिनियम की धारा 11 में

(क) उपधारा (4) में—

(i) खंड (क) और (ख) में "तीस दिन" शब्दों के स्थान पर "साठ दिन" शब्द रखे जाएंगे।

(ii) "मुख्य न्यायाधीश या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा पक्षकार के अनुरोध पर नियुक्ति की जाएगी" शब्दों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रखे जाएंगे:—

"यदि ऐसी नियुक्ति उक्त अवधि के भीतर नहीं की जाती है तो ऐसी नियुक्ति करने के अधिकार का अधित्यजन करना माना जाएगा और उच्च न्यायालय द्वारा नामनिर्दिष्ट पक्षकार या किसी व्यक्ति या संस्था या इसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था के अनुरोध पर नियुक्ति की जाएगी।

(ख) उपधारा (5) के स्थान पर निम्नलिखित उपधाराएं रखी की जाएंगी, अर्थात्:—

"(5) एकल मध्यस्थ के साथ किसी माध्यस्थम में उपधारा (2) में निर्देशित करार के असफल होने पर यदि पक्षकार ऐसी सहमति के लिए दूसरे पक्षकार से एक पक्षकार द्वारा अनुरोध प्राप्त होने से 60 दिन के भीतर मध्यस्थ पर सहमति होने पर असफल रहती है तो ऐसी नियुक्ति करने के अधिकार का अधित्यजन करना माना जाएगा, यदि ऐसी नियुक्ति उक्त अवधि के भीतर नहीं की जाती है और उच्च न्यायालय या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा नियुक्ति की जाएगी।

(5 क) जहां माध्यस्थम करार में अन्तर्विष्ट नियुक्ति प्रक्रिया धारा 10 क की उपधारा (1) के अधीन अमान्य हो जाती है, पक्षकार किसी एक पक्षकार से अनुरोध प्राप्त होने के 60 दिन के भीतर किसी मध्यस्थ की नियुक्ति हेतु सहमत हो सकते है।

परन्तु यह कि जहां पक्षकार 60 दिन की उक्त अवधि के भीतर किसी मध्यस्थ पर सहमत होने हेतु असफल रहते है तो उच्च न्यायालय या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा एक पक्षकार के अनुरोध पर नियुक्ति की जाएगी।"

(ग) उपधारा (6) में —

"एक पक्षकार आवश्यक कार्यवाही करने के लिए मुख्य न्यायाधीश या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था से अनुरोध कर सकेगा जब तक नियुक्ति प्रक्रिया पर नियुक्ति प्राप्त करने के लिए दूसरे

माध्यमों का प्रावधान नहीं करता है" शब्दों के स्थान पर निम्नलिखित शब्द रखे जाएंगे, अर्थात्:—

"और जहां पक्षकारों द्वारा सहमति व्यक्त की गई नियुक्ति प्रक्रिया के अनुसार ऐसे उपाय नहीं किए जाते हैं तो ऐसे उपाय करने के अधिकार को अधित्यक्त करना माना जाएगा और आवश्यक उपाय करने के लिए पक्षकार उच्च न्यायालय या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था से अनुरोध कर सकते हैं जब तक कि नियुक्ति प्रक्रिया प्राप्त करने के लिए दूसरे माध्यमों का प्रावधान नहीं करता है।"

(घ) उपधारा (7) में –

(i) कोष्ठक और आंकड़े "उपधारा (5)" शब्द के पश्चात् "कोष्ठक, आंकड़े और पत्र या "उपधारा (5 क)" शब्द अन्त: स्थापित किए जाएंगे;

(ii) "मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था" शब्दों के स्थान पर "उच्च न्यायालय या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था" शब्दों को रखा जाएगा।

(ङ) उपधारा (8) में "मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था" शब्दों के स्थान पर "उच्च न्यायालय या उसके द्वारा पदाभिहित किसी व्यक्ति या संस्था शब्दों को प्रतिस्थापित किया जाएगा।

(च) उपधारा (9) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्—

"(9) एक अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वाणिज्यिक हो या नहीं) में एकल या तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति के मामले में, उच्चतम न्यायालय या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था पक्षकारों की राष्ट्रीयता से भिन्न राष्ट्रीयता के एक मध्यस्थ की नियुक्ति कर सकेगा जहां पक्षकार विभिन्न राष्ट्रीयता के होते हैं"।

(छ) उपधारा (11) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्—

"जहां एक से अधिक अनुरोध विभिन्न उच्च न्यायालयों या उनके नामनिर्दिष्टों के समक्ष उपधारा (4) या उपधारा (5) या उपधारा (6) के अधीन किए गए है वहां उच्च न्यायालय या उनके नामनिर्दिष्ट, जिसके समक्ष सुसंगत उपधारा के अधीन प्रथम अनुरोध या निवेदन किया गया है, अकेले निवेदन पर विनिश्चय करने के लिए सक्षम होगा।"

(1) उपधारा (12) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्—

"12 (क) जहां उपधारा (4), (5), (6), (7), (8) और (10) में निर्देशित किए गए मामले उद्भूत होते है, उन सभी उपधाराओं में "उच्च न्यायालय" के निर्देश अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वाणिज्यिक हो या नहीं) में उद्भूत होते हैं, का अर्थान्वयन "उच्चतम न्यायालय" को एक निर्देश के रूप में किया जाएगा।"

(ख) जहां उपधारा (4), (5), (6), (7), (8) और उपधारा (10) में निर्देशित किए गए मामले उद्भूत होते हैं, उन उपधाराओं में "उच्च न्यायालय" को निर्देश का अर्थान्वयन उच्च न्यायालय को निर्देश के रूप में किया जाएगा जिसकी प्रादेशिक परिसीमाओं के भीतर धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ङ) में निर्देशित की गई प्रधान सिविल न्यायालय या शहर सिविल न्यायालय के प्रधान न्यायमूर्ति के न्यायालय, यथास्थिति, स्थित है और जहां उच्च न्यायालय स्वयं उस उच्च न्यायालय के उस खंड में निर्देशित किया गया एक न्यायालय है।"

"(13) जहां कोई प्रश्न कर रहे पक्षकार द्वारा इस धारा के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय, यथास्थिति एक आवेदन-पत्र प्रस्तुत किया जाता है—

(क) कि इस समय कोई विवाद नहीं है;

(ख) कि माध्यस्थम करार या इसका कोई खंड अकृत और अमान्य या अप्रवर्तनीय है;

(ग) कि माध्यस्थम करार पालन किए जाने हेतु असमर्थ है;

(घ) कि माध्यस्थम करार विद्यमान नहीं है।

उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय, यथास्थिति, उपधारा (14) के प्रावधानों के अध्यधीन, इसका निर्णय ले सकेंगे।

(14) यदि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय, यथास्थिति, यह सोचता है कि उपधारा (13) के अधीन उठाए गए प्रश्नों पर निर्णय नहीं लिया जा सकता है, क्योंकि–

(क) संबंधित तथ्य या कागजात विवादित है; या

(ख) मौखिक साक्ष्य पेश किया जाना आवश्यक है; या

(ग) इन प्रश्नों की जांच से माध्यस्थम के लिए निर्देश में विलम्ब होने की संभावना है; या

(घ) प्रश्न का निर्णय लेने हेतु अनुरोध में अनावश्यक विलम्ब हुआ था माध्यस्थम की लागत; या

(ङ) प्रश्न पर निर्णय से माध्यस्थम की लागत में पर्याप्त बचत होने की संभावना नहीं है; या

(च) इस बात के पर्याप्त कारण हैं क्योंकि इन प्रश्नों का इस स्तर पर निर्णय लिया जाना चाहिए था।

यह उक्त प्रश्नों पर निर्णय लेने हेतु मना कर सकेगा और उक्त प्रश्नों का माध्यस्थम अधिकरणों को निर्देशित भी कर सकेगा।''

2.9.1 मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए चुनौती के आधार/प्रस्तावित मध्यस्थों द्वारा और ब्यौरा प्रस्तुत किया जाना है: धारा 12

धारा 12 मध्यस्थ की नियुक्ति को चुनौती के आधार से संबंधित है जबकि धारा 13 प्रक्रिया को चुनौती से संबंधित है।

धारा 12(1) यह बताती है कि एक व्यक्ति, जो एक मध्यस्थ के रूप में उसकी संभाव्य नियुक्ति के संगत में पहुंचता है तब यह लिखित तौर पर उन सभी परिस्थितियों को प्रकट करेगा जिनमें ''उसकी स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में न्यायोचित संदेहों को जन्म देने की संभावना पायी जाती है'' धारा 12 की उपधारा (2) माध्यस्थम कार्यवाहियों के दौरान मध्यस्थ पर भी यह उत्तरदायित्व डालती है। धारा 12 की उपधारा (3) पक्षकार एक मध्यस्थ को तभी चुनौती दे सकेगा यदि (क) वे परिस्थितियां विद्यमान हैं जो उसकी स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में न्यायोचित संदेहों को जन्म देती है, या (ख) वह पक्षकारों द्वारा किए गए करार की योग्यताओं को धारण नहीं करता है। उपधारा (4) अपने स्वयं के द्वारा नियुक्त मध्यस्थ को निर्देशित करती है और उसे इन्हीं कारणों पर ही चुनौती दी जा सकती है जिसकी उसे नियुक्त किए जाने के पश्चात् जानकारी होती है।

धारा 10क के संबंध में, जहां दोनों पक्षकार गैर सरकारी पक्षकार है तथा जहां एक पक्षकार सरकारी या सरकारी क्षेत्र का उपक्रम या कानूनी निकाय भी है, नामित मध्यस्थों की निरर्हता या बल्कि स्वतंत्रता की कमी के प्रश्न पर खंडों के संबंध में अलग से विचार किया गया है जिससे कर्मचारी या किसी व्यक्ति, जिसका कुछ व्यापारिक संबंध हो, की नियुक्ति की जा सकेगी।

2.9.2 अब हम धारा 12 के अधीन कतिपय अन्य पहलुओं का उल्लेख करेंगे। जहां तक धारा 12(1) का संबंध है, यह कहा जाता है कि ''परिस्थितियां'' जिन्हें मध्यस्थ को प्रकट करता है, वे हैं, जिन्हें वह संगत समझता है, जिनसे उसकी स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में न्यायोचित संदेह उत्पन्न होते हैं। कुल मिलाकर, परिस्थितियां अधिकतर उसकी व्यक्तिगत जानकारी में होती है और जब तक सभी संगत तथ्यों को प्रकट करने का उत्तरदायित्व हो, उनको सीमित किए बिना जो उनके विचार से, न्यायोचित संदेह उत्पन्न कर सकती है, तब तक अनुचित अधिनिर्णय होने की संभावना है। दूसरे शब्दों में धारा 12(1)को कुछ और विशिष्ट बनाया जा सकता है जैसा कि आई॰सी॰सी॰ नियमों में है।

पूर्व आई॰सी॰सी॰ नियमों में मध्यस्थ को यह प्रकट करना अपेक्षित है।

''क्या किसी पक्षकार या उनके किसी सलाहकार के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई पूर्व या वर्तमान संबंध विद्यमान है, चाहे यह वित्तीय, व्यवसायिक, सामाजिक या अन्य प्रकार का हो।''

व्यापारिक या व्यवसायिक संबंध या मध्यस्थ के विषय मामले के साथ संबंध या इसका परिणाम या किसी विवाद में पूर्व संबंध को महत्वपूर्ण मामले के रूप में माना गया है जिन्हें मध्यस्थों द्वारा प्रकट किया जाना है। इसलिए, धारा 12(1) में कुछ शब्द जोड़कर धारा 12 में अनिश्चितता को दूर करना उपयुक्त होगा। ऐसे परिवर्धन के बाद, धारा 12(1) को निम्नवत पढ़ा जा सकेगा:-

"(1) जब एक व्यक्ति मध्यस्थ के रूप में उसकी संभाव्य नियुक्ति के संगत में पहुंचता है तब वह लिखित तौर पर उन सभी परिस्थितियों को प्रकट करेगा जैसे कि किसी पक्षकार या उनके किसी सलाहाकार के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष कोई पूर्व या वर्तमान संबंध विद्यमान, चाहे यह वित्तीय, व्यापारिक, व्यवसायिक, सामाजिक या अन्य प्रकार का हो या विवादित विषय-वस्तु के संबंध में जिनसे उसकी स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में न्यायोचित संदेह उत्पन्न हो जाने की संभावना है"।

2.10.1 धारा 13- पक्षपात या निरर्हता के अभिवचन को अस्वीकृत करने संबंधी माध्यस्थम अधिकरण के अन्तवर्ती आदेश के विरुद्ध धारा 37(2) में अपील करने के लिए प्रावधान करने हेतु अनुरोध को अस्वीकृत करना; धारा 34(2) में प्रस्तावित स्पष्टीकरण

यद्यपि धारा 37(2) के अधीन धारा 37(2) के अधीन अन्तवर्ती अपील के लिए ठोस अभिवचन थे, हमने अभिवचन को अस्वीकृत कर दिया है जैसा कि निम्नवत उल्लेख किया गया है, निश्चित रूप से विद्यमान स्थिति स्पष्ट करने के लिए धारा 34(2) में स्पष्टीकरण-II जोड़ा जाता है।

यहां मुख्य बहस यह है कि धारा 13 को मॉडल विधि के अनुरूप बनाया जाना चाहिए और यह कि यदि मध्यस्थों के पक्षपात या निरर्हता का अभिवचन उठाया जाता है तो इसे मध्यस्थों द्वारा प्रारम्भिक मुद्दे के रूप में इसका निर्णय लिया जाना चाहिए तथा यदि अभिवचन को स्वीकार नहीं किया जाता है तो अपील का तत्काल अधिकार दिया जाना चाहिए।

जहां मध्यस्थ ने पक्षपात या निरर्हता के अभिवचन को स्वीकार कर लिया है, न्यायालय को प्रस्तुत किए गए आवेदन-पत्र पर विचार नहीं किया जाता है और ऐसा करना ठीक भी है। जहां मध्यस्थ अभिवचन से स्वयं सहमत है, कोई अपील करने की आवश्यकता नहीं है, उसे केवल वापिस लेना है।

धारा 13(4) के अन्तर्गत धारा 12 में निर्देशित आधारों पर पक्षपात के अभिवचन को माध्यस्थम अधिकरण द्वारा अस्वीकृत किए जाने पर माध्यस्थम कार्यवाहियों को जारी रखना अपेक्षित है। धारा 13(5) में प्रतिविधान यह है कि माध्यस्थम अधिकरण द्वारा अभिवचन को अस्वीकृत पर पंचाट के बाद प्रश्न उठाया जा सकता है और यह कहा जाता है कि यह उचित प्रक्रिया नहीं है तथा यदि अन्ततः न्यायालय द्वारा अभिवचन को मान लिया जाता है तो इससे अन्ततः धन और समय की बर्बादी हो सकती है। यह भी बताया जाता है कि यदि धारा 13(5) में धारा 34 के अधीन न्यायालय को प्रस्तुत किए जाने के पश्चात पंचाट को आक्षेप करने के लिए आवेदन पत्र पर विचार किया जाता है तो इन आधारों पर पंचाट पर प्रश्न करने के किसी ऐसे अधिकार को धारा 34 में शामिल किया गया है। यह कहा जाता है कि धारा 34(2)(v) स्थिति के अनुरूप नहीं है। इसके अलावा, धारा 34 में उपयोग किया गया शब्द "केवल" धारा 13(5) के अधीन प्रावधानों के संबंध में खंडन करता है। इसलिए, धारा 34(2) को स्पष्टीकरण-II जोड़कर विद्यमान स्थिति को स्पष्ट करने हेतु संशोधित किया जाना है। स्पष्टीकरण के माध्यम से यह स्पष्ट करने के लिए धारा 34 में एक प्रावधान करने का प्रस्ताव है कि माध्यस्थम अधिकरण द्वारा पक्षपात के अभिवचन को अस्वीकृत करने के आदेश पर आवेदक प्रश्न कर सकता है, जैसाकि धारा 13(5) द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई है। यद्यपि यह धारा 13(5) में इस प्रतिविधान का उल्लेख किया गया है, इसे धारा 34 में छोड़ दिया गया है। इसके अतिरिक्त, धारा 34(2) में "केवल" शब्द के प्रयोग ने संदेह उत्पन्न किया है। इसलिए, धारा 34(2) के नीचे एक स्पष्टीकरण जोड़ने का प्रस्ताव है जो निम्नवत है:-

उपधारा (2) में "स्पष्टीकरण" को "स्पष्टीकरण-I के रूप में संख्यांकित किया जाएगा और स्पष्टीकरण को इस प्रकार संख्यांकित देने के पश्चात् निम्नलिखित स्पष्टीकरण अन्तःस्थापित किया जाएगा, अर्थात्-

"स्पष्टीकरण-II: संदेहों को दूर करने के लिए यह घोषणा की जाती है कि उपधारा (1) के अधीन माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने की मांग करते हुए आवेदक माध्यस्थम अधिकरण निम्न निर्णयों पर प्रश्न करने के अभिवचन को शामिल कर सकता है।

(i) धारा 13 की उपधारा (2) के अधीन दी गई चुनौती;

(ii) धारा 16 की उपधारा (2) या उपधारा (3) के अधीन किया गया अभिवचन।"

2.10.2 अब प्रश्न यह है कि क्या पक्षपात या निरर्हता के अभिवचन को स्वीकृत करने के संबंध में माध्यस्थम अधिकरण के निर्णय के विरुद्ध धारा 37 के अधीन न्यायालय में तत्काल अपील करने की व्यवस्था करना वांछनीय है या क्या पंचाट के बाद ही ऐसी चुनौती दी जा सकती है? यदि पक्षपात या निरर्हता के अभिवचन को अस्वीकृत करने संबंधी निर्णय को चुनौती दी जाती है, क्या धारा 13(4) में यह कहा जाना चाहिए कि न्यायालय में निर्णय के लंबित होने पर माध्यस्थम अधिकरण "होगा" शब्द को प्रतिस्थापित करके, माध्यस्थम कार्यवाहियां कर सकता है।

इंगलिश अधिनियम, 1996 में माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष माध्यस्थम अधिकरण को चुनौती देने और उस पर लिए गए निर्णय के लिए कोई प्रावधान अन्तर्विष्ट नहीं है। दूसरी ओर धारा 24 में माध्यस्थम अधिकरण को हटाने के लिए न्यायालय के समक्ष प्रक्रिया की व्यवस्था है। मॉडल विधि और 1996 अधिनियम में माध्यस्थमों को हटाने के लिए किसी सीधे प्रस्ताव की व्यवस्था नहीं है।

अनुच्छेद 13 में मॉडल विधि में पक्षपात या निरर्हता के अभिवचन को अस्वीकृत करने के संबंध में माध्यस्थम अधिकरण के अंतवर्ती आदेश के विरुद्ध तत्काल अपील करने की व्यवस्था की जाती है जबकि उपरोक्त प्रतिविधान को धारा 13 के साथ-साथ धारा 37 की उपधारा (2) में 1996 अधिनियम में जोड़ा जाता है।

2.10.3 इस अभिवचन की कि जब पक्षपात या निरर्हता के अभिवचन को अस्वीकृत कर दिया जाता है, धारा 34 या धारा 37 के अधीन किसी अपील की व्यवस्था न करने में धारा 13(4) माध्यस्थम या विभेदकारी है, को एम० मोहन रेड्डी बनाम यू०ओ०आई०, 2000(1) माध्यस्थम एल०आर०-39(ए पी) में नकार दिया गया है। माध्यस्थम की नियुक्ति को चुनौती देने संबंधी एक रिट याचिका को अधिनियम के अधीन प्रक्रिया के दृष्टिकोण से बनाए रखने योग्य नहीं माना गया था (देखिए, पंजाब विद्युत बोर्ड बनाम इण्डेन लिमिटेड 2000(1) पुणे एल०आर०4)। मुम्बई उच्च न्यायालय ने किटिकू इम्पोर्टस ट्रेड प्राइवेट लिमिटेड बनाम सावित्री मेटल्स लिमिटेड, 1949(2) माध्यस्थम एल०आर० 405) में यह निर्णय लिया कि जहां पक्षपात के अभिवाक को अस्वीकृत किया जाता है वहां प्रतिविधान तब तक इंतजार करता है जब तक कि पंचाट पारित नहीं हो जाता है और तत्पश्चात् पंचाट को चुनौती देना है तथा अधिनियम का भाव और स्कीम न्यायालय द्वारा तत्काल हस्तक्षेप करने, जिसके कारण कार्यवाहियों पर रोक लग जाएगी, से रोकना है। निश्चित रूप से अनूप टैक्नीकल इक्यूपमेंट प्राइवेट लिमिटेड बनाम मैसर्स गणपति कोऑपरेटिव हाउसिंग सोसाइटी, (ए०आई०आर० 1999 मुम्बई 219) में इसी न्यायालय द्वारा यह निर्णय दिया गया था कि माध्यस्थम अधिकरण के निर्णय को अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत चुनौती दी जा सकती है। अनूप टैक्नीकल इक्यूपमेंट प्राइवेट लिमिटेड मामले में मुम्बई उच्च न्यायालय के इस निर्णय से सहमत होना हमारे लिए संभव नहीं है।

सेवानिवृत्त न्यायाधीशों और अधिवक्ताओं के साथ परामर्शी पत्र पर विभिन्न चर्चाओं में, दो भिन्न दृष्टिकोण उभरे हैं, एक दृष्टिकोण में कहा गया है कि यदि कोई तत्काल अपील नहीं की जाती है और यदि पंचाट को अन्ततः अपास्त किया जाता है तो यह धन और समय की बर्बादी होगी। दूसरा दृष्टिकोण सामान्य रूप से प्रभावशाली है कि न्यायालय के तत्काल हस्तक्षेप से पंचाट के विरुद्ध तुच्छ विरोध प्रकट किए जाएंगे। पहले दृष्टिकोण का इस तथ्य को ध्यान में रखकर समर्थन किया गया कि मॉडल विधि में भी इसी प्रकार का प्रावधान है और हटाने के लिए कोई प्रावधान भी नहीं है। धारा 15 में भी ऐसी स्थिति को शामिल किया गया है।

यह सच है कि मॉडल विधि में, अनुच्छेद 13(3) में पक्षपात पर मध्यस्थ के निर्णय के विरुद्ध अपील करने और उसे चुनौती देने, जो 30 दिन के अन्दर न्यायालय में दी जा सकती है, के तत्काल अधिकार की व्यवस्था है। यह भी कहा जाता है कि न्यायालय के निर्णय पर आगे अपील की जानी चाहिए। न्यायालय में अनुरोध लंबित होने पर, माध्यस्थम अधिकरण (चुनौती दिए गए मध्यस्थ सहित) माध्यस्थम कार्यवाहियां जारी रख सकता है और पंचाट कर सकता है। परामर्शी पत्र (अनुबंध-II) में धारा 37 में इस प्रावधान को जोड़े जाने का प्रस्ताव है और यह भी कि धारा 13(4) में 'रखेगा' शब्द के स्थान पर 'सकेगा' शब्द प्रतिस्थापित किया जाना है।

कोई तत्काल अपील नहीं के प्रस्तावकों द्वारा यह सुझाव दिया गया है कि यदि धारा 13(4) में 'रखेगा' शब्द के स्थान पर 'सकेगा' शब्द प्रतिस्थापित किया जाता है तो इससे समस्या का समाधान नहीं हो सकेगा क्योंकि माध्यस्थम अधिकरण अधिकांश मामलों में जब इसके निर्णयों को चुनौती दी जा रही है, निर्णय नहीं ले सकेगा। दूसरी ओर, भारतीय कानूनी पत्रिकाओं में लेख छपे हैं जिनमें सुस्पष्ट रूप से यह सुझाव दिए जा रहे हैं कि "पक्षपात" इतना संगीन मामला है जिसे तत्काल चुनौती न दिए जाने से रोका नहीं जा सकता है।

यह सच है कि अनेक देशों ने मॉडल विधि को अंगीकार कर लिया है जिसमें पक्षपात के अभिवाक को अस्वीकृत करने संबंधी आदेश में विरुद्ध तत्काल अपील करने तथा माध्यस्थम अधिकरण द्वारा कार्यवाहियां जारी रखने के संबंध में "सकेगा" शब्द का प्रयोग करने की व्यवस्था की गयी है (देखिए जर्मन माध्यस्थम अधिकरण, 1998 की धारा 1037(3), आस्ट्रेलिया अधिनियम की अनुसूची की धारा 13(3), आयरलैण्ड अधिनियम, 1998 की अनुसूची का अनुच्छेद 13(3), न्यूजीलैण्ड अधिनियम, 1999 की पहली अनुसूची का अनुच्छेद 1393)।

यू०एल० कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में मॉडल विधि अपनाने के इस प्रश्न पर विचार भी किया (देखिए पैरा 121 से 134) और अन्त में यह निर्णय लिया कि यदि पक्षपात के अभिवाक को स्वीकृत कर लिया जाता है, तो तत्काल अपील की जानी चाहिए। उसने विभिन्न विकल्पों पर विचार किया। उसने इस अभिवाक (पैरा 122 में) पर विचार किया कि यदि अनुच्छेद 13(3) को हटा दिया जाता है तो 'विलम्बकारी युक्तियों का जोखिम कम'' हो जाएगा। उसने उन अभिवाकों पर भी विचार किया कि अनुच्छेद 13(3) एकल माध्यस्थम या अधिकांश मध्यस्थ जिनके विरुद्ध पक्षपात का अभिवाक उठाया गया है, के मामले को, किसी भी दर पर, सीमित कर सकेगा। दूसरा सुझाव यह था कि यह अधिकरण पर छोड़ देना चाहिए कि जब पक्षपात के अभिवाक को अस्वीकृत किया गया हो तो क्या न्यायालय के तत्काल हस्तक्षेप की अनुमति दी जाए या नहीं। दूसरी ओर, ये सुझाव (पैरा 123) थे कि न्यायालय का निर्णय लंबित होने पर, माध्यस्थम अधिकरण को कार्यवाही करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि इस प्रकार कार्यवाही जारी रखने से समय और लागत की अनावश्यक बर्बादी होगी, यदि बाद में न्यायालय चुनौती की पुष्टि करता है या यदि न्यायालय स्थगन देता है, इसे आगे नहीं जाना चाहिए। इन सभी सुझावों पर विचार करने के पश्चात्, यू०एस० कमीशन ने यह पाया कि तथापि, प्रचलित दृष्टिकोण मॉडल विधि के अनुच्छेद 13 में अपनाई गई प्रणाली को बनाए रखना था क्योंकि यह अवरोध या विलम्बकारी युक्तियों को रोकने की आवश्यकता और समय तथा धन की बर्बादी से बचने की इच्छा के बीच स्पष्ट संतुलन बनाए रखेगा।

तत्काल अपील की व्यवस्था करने हेतु कतिपय लेखकों के विचारों पर हमारे समक्ष विश्वास भी व्यक्त किया गया था। अनसिट्राल मॉडल विधि, 1996 पर कॉमेंट्री में श्री ऐरन ब्रोचिस ब्लुवर ने निःसंदेह कहा:-

'कार्य समूह के चौथे सत्र में, एक संकल्प लिया गया था जो, एक ओर इस तत्संबद्ध जोखिम के साथ न्यायालय का तत्काल सहारा लेने की अनुमति प्रदान करता है कि ऐसे सहारे में विलम्बकारी युक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है और दूसरी ओर, माध्यस्थम अधिकरण को माध्यस्थम कार्यवाहियां जारी रखने की स्वीकृती प्रदान करता है (परन्तु बाध्य नहीं करता)। इससे अधिकरण या तो कार्यवाहियां जारी रखकर विलम्बकारी प्रयोजनों के लिए अन्यायोचित चुनौती पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव को सीमित करता है या कार्यवाहियों को अस्थगित करता है, जहां वह समझता है कि पंचाट, जिसे अनुच्छेद 34 के अधीन अपास्त किया जा सकेगा, पर समय और धन बर्बादी करने के जोखिम की तुलना में चुनौती के प्रश्न को अलग हटाकर पक्षकारों के हितों की बेहतर रक्षा हो सकेगी।'

यू०एस० प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए (जो कुछ राज्यों के अलावा अनसिट्राल नहीं है), जहां मामलों को तत्काल हस्तक्षेप और जहां पक्षपात के अभिवाक को अस्वीकृत कर दिया जाता है, रेडफर्न और हन्टर कहते हैं कि वहां प्रक्रिया असंतोषजनक है क्योंकि पक्षकारों को पंचाट किए जाने तक निर्णय को चुनौती देने की अनुमति नहीं दी जाती है उन्होंने फ्लोरसिन्थ इंक बनाम रिकहोटे (750 एफ 2 डी 174(1984), इन्ट बनाम मोबिल ऑयल कारपोरेशन (583 एफ अनुपूरक 1092 (1984) और मोरेलाइट कांस्ट्रक्शन कारपोरेशन बनाम न्यूयार्क सिटी डिस्ट्रिक्ट कारपेन्टरस बेनीफिट फंडस, 748 एफ 2 डी 79 (1984) में निर्देशित पैरा 4.65 में इसका उल्लेख किया है जो निम्नलिखित है:-

'इसका मतलब है कि अधिकरण के गठन के संबंध में वैध विरोध प्रकट करने वाले पक्षकार को 'ऑन दा रिकार्ड' विरोध करना होगा और तत्पश्चात पंचाट को चुनौती देने से पूर्व मामले के समाप्त होने तक इंतजार करना होगा (यदि चुनौती सफल होती है तो समय और धन की तत्संबंध बर्बादी के साथ)"।

इस संदर्भ में उन्होंने निम्नवत सुझाव दिए हैं (पैरा 5.42):

'सामान्यतया माध्यस्थम अधिकरण के लिए उपयुक्त प्रक्रिया अधिकारिता पर अन्तरिम पंचाट जारी करना है, यदि ऐसा करने के लिए कहा जाए। इससे पक्षकार यह जान पाते है कि प्रारम्भिक स्तर पर उनकी स्थिति क्या है और इससे माध्यस्थम कार्यवाहियों, जो अविधिमान्य सिद्ध होती है, पर समय और धन की बचत होगी।"

पक्षपात या निरर्हता के अधिवाक को अस्वीकृत करने संबंधी माध्यस्थम अधिकरण के आदेश के विरुद्ध धारा 37 की उपधारा (2) के अधीन तत्काल अपील की व्यवस्था के पक्ष में उपरोक्त तर्क सशक्त है और यह दुर्भाग्यपूर्ण होगा यदि कोई पंचाट पारित हो जाने के पश्चात ही अधिवाक् की अस्वीकृति का प्रश्न करता है, आयोग महसूस करता है कि यदि तत्काल अपील की व्यवस्था की जाती है तो पक्षकार, जो माध्यस्थम कार्यवाहियों में विलम्ब करना चाहता है, लगभग प्रत्येक मामले में कार्यवाहियों के प्रारम्भ होने से पूर्व ही पक्षपात या अन्य अरर्हता के अधिवाक के संबंध में माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष आक्षेप प्रस्तुत करेगा, और तत्पश्चात धारा 37(2) के अधीन अपील दायर करेगा। यदि हम यह भी कहते हैं कि अपील लंबित रहने पर, माध्यस्थम कार्यवाहियां जारी रह सकेंगी, अधिकांश मामलों में माध्यस्थम अधिकरण अपील के परिणाम का इंतजार करता रह सकेगा। काफी विचार-विमर्श के पश्चात, आयोग की यह राय है कि जहां धारा 13 के अधीन उठाया गया पक्षपात या निर्हता का अधिवाक माध्यस्थम अधिकरण द्वारा अस्वीकृत कर दिया जाता है, धारा 37 के अधीन तत्काल अपील करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। इसलिए, धारा 13 के अधीन उत्पन्न उपरोक्त स्थिति के लिए धारा 37(2) में कोई संशोधन करने पर विचार नहीं किया जाता है।

2.11.1 मध्यस्थ के आदेश की समाप्ति: धारा 14 और 15

धारा 14 और 15 मध्यस्थ के आदेश की समाप्ति से संबंधित हैं। यह सुझाव दिया था कि उनका शुल्क नियत करने के लिए प्रावधान किया जाना चाहिए। यह सुझाव स्वीकार किया जाता है।

यह सुझाव दिया गया है कि धारा 15(2) में जब तक नियमों में अन्यथा व्यवस्था न हो, मध्यस्थ के आदेश की समाप्ति की तारीख से 30 दिन के भीतर स्थानापन्न मध्यस्थ की नियुक्ति संबंधी प्रावधान नियम किया जा सकेगा। इस सुझाव को भी स्वीकार किया जाता है। धारा 14 और 15 में प्रस्तावित संशोधन निम्नवत् है:

2.11.2 मूल अधिनियम की धारा 14 में, उपधारा (3) के पश्चात निम्नलिखित उपधारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:

'जहां मध्यस्थ का आदेश समाप्त कर दिया गया है, न्यायालय ऐसे मध्यस्थ को देय शुल्क की मात्रा का निर्णय ले सकेगा।'

2.11.3 मूल अधिनियम की धारा 15 में

(क) उपधारा (2) में "एक प्रतिस्थापित मध्यस्थ की नियुक्ति की जाएगी" शब्दों के स्थान पर "एक प्रतिस्थापित मध्यस्थ की 30 दिन के भीतर नियुक्ति की जाएगी" शब्दों को प्रतिस्थापित किया जाएगा।

(ख) उपधारा (4) के पश्चात निम्नलिखित उपधारा अंतःस्थापित की जाएगी अर्थात्:-

"(5) जहां मध्यस्थ का आदेश समाप्त कर दिया गया है, न्यायालय ऐसे मध्यस्थ को देय शुल्क की मात्रा का निर्णय ले सकेगा।"

2.12.1 धारा 16धारा 16 की उपधारा (2) और (3) के अधीन अधिवचन अस्वीकृत करने संबंधी मध्यस्थम अधिकरण के अंतवर्ती आदेश के विरुद्ध धारा 37(2) में अपील के अधिकार के लिए अनुरोध अस्वीकृत

1996 के अधिनियम की धारा 16 मॉडल विधि के अनुच्छेद 16 पर आधारित है किंतु मॉडल विधि के अनुच्छेद 16 के कतिपय पहलुओं को 1996 अधिनियम में छोड़ दिया गया है। विचार-विमर्श धारा 16 में उन पहलुओं को शामिल करने के प्रश्न पर है ताकि धारा को मॉडल विधि के अनुच्छेद के अनुरूप लाया जा सके।

भारतीय अधिनियम 1996 की धारा 16 को निम्नवत पढ़ा जाए:-

धारा 16: (1) माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम करार होने या न होने की वैधता के बारे किसी भी आक्षेपों पर विनिर्णय व्यवस्था को सम्मिलित कर स्वत: की अधिकारिता पर नियम बना सकेगा और उस प्रयोजन के लिए-

(क) कोई माध्यस्थम खंड जो एक किसी संविदा भाग रूप है, संविदा के अन्य निबंधनों से स्वतंत्र किसी करार के रूप में माना जाए; और

(ख) माध्यस्थम अधिकरण का ऐसा कोई विनिश्चय कि संविदा शून्य एवं अकृत है, माध्यस्थम खंड को विधित: अवैधानिकता नहीं करेगा।

(2) एक अभिवचन कि माध्यस्थम अधिकरण को अधिकारिता नहीं है, प्रतिरक्षा के कथन के प्रस्तुत किए जाने के बाद नहीं उठाया जाएगा। इतने पर भी, एक पक्षकार का अपवचन मात्र इस प्रकार के एक अभिवचन को प्रस्तुत करने में नहीं किया जाएगा क्योंकि वह नियुक्ति किया है या एक माध्यस्थ की नियुक्ति में भाग लिया है।

(3) एक अभिवचन कि माध्यस्थम अधिकरण इसके प्राधिकारी के विस्तार से अधिक नहीं हो रहा है, को त्यों ही उठाया जाएगा ज्यों ही इसके प्राधिकार के परे अभिकथित मामले को माध्यस्थम कार्यवाही के दौरान प्रस्तुत किया जाएगा है।

(4) ....

(5) माध्यस्थम अधिकरण या तो उपधारा (2) या उपधारा (3) में निर्दिशित किए गए किसी अभिवचन पर विनिश्चय करेगा और जहां इस प्रकार का एक माध्यस्थम अधिनिर्णय, अभिवचन को अस्वीकृत करने का तथा एक माध्यस्थम पंचाट तैयार करने का विनिश्चय करता है।

(6) इस प्रकार के माध्यस्थम पंचाट द्वारा व्यथित कोई पक्षकार धारा 34 के अनुसार ऐसे एक माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन कर सकेगा।

यह धारा दो भागों में है।

2.12.2 पहला भाग माध्यस्थम करार के होने या न होने की वैधता की बाबत किसी भी आक्षेपों को सम्मिलित कर स्वत: की अधिकारिता पर नियम बनाने के लिए माध्यस्थम अधिकरण को शक्ति प्रदान करने से संबंधित है। दूसरा भाग यह है कि माध्यस्थम खंड मुख्य संविदा का स्वतंत्र होगा और यदि मुख्य करार शून्य एवं अकृत भी हो जाता है, माध्यस्थम करार बना रहेगा। 1940 अधिनियम के अधीन माध्यस्थम अपने स्वयं की अधिकारिता पर अधिनिर्णय के लिए शक्ति का उपयोग भी करता है परंतु उस अधिनियम के अधीन यह शक्ति विवक्षित थी जैसाकि विधि द्वारा मान्यता प्रदान की जा रही है यद्यपि इसके लिए कोई विशेष प्रावधान नहीं था।

2.12.3 जहां तक धारा 16 के दूसरे भाग का संबंध है, यह माध्यस्थम खंड की स्वायत्ता से संबंधित है। इस सिद्धांत को हेमैन बनाम डार्विन्स 1942 ए सी 356 में हाउस ऑफ लार्डस द्वारा स्वीकार किया गया था परंतु धारा 16(1) की शर्तों में यह सिद्धांत हार्बर ऐस्यूरेन्स कंपनी (यूके) लिमिटेड बनाम कन्सा जनरल इन्टरनेशनल इंस्यूरेंस कंपनी लिमिटेड 1993 क्यू बी 701 में इंग्लिश न्यायालयों द्वारा स्वीकार किया गया था जैसाकि ----------एस्यूरेंस कंपनी (---------) लिमिटेड बनाम के -------- जनरल इन्टरनेशनल इंस्यूरेंश कंपनी लिमिटेड 1993 (3) डब्ल्यूएलआर 897 में अपीलीय न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि की गयी थी।

मॉडल विधि में, अनुच्छेद 16 में केवल तीन खंड अंतर्विष्ट हैं। इसके खंड (1) और (2) 1996 के भारतीय अधिनियम की धारा 16 के खंड (1) से (4) के अनुरूप हैं परंतु मॉडल विधि में एक और उप-खंड (3) अंतर्विष्ट है और जो 1996 के भारतीय अधिनियम की धारा 16 में अनुपस्थित है। मॉडल विधि के अनुच्छेद 16 के खंड (3) को निम्नवत पढ़ा जाए जो विद्यमान विचार-विमर्श से किसी हद तक संबद्ध है:-

> "16(3). माध्यस्थम अधिकरण या तो प्रारम्भिक प्रश्न या गुणागुण पर पंचाट में इस अनुच्छेद के पैरा (2) में निर्देशित अभिवचन पर नियम बना सकेगा यदि माध्यस्थम अधिकरण प्रारम्भिक प्रश्न के रूप में यह नियम बनाता है कि इसकी अधिकारिता है, उस विनिश्चय व्यवस्था के नोटिस को प्राप्त करने के पश्चात 30 दिन के भीतर कोई पक्षकार अनुरोध कर सकता है, न्यायालय इस मामले पर विनिश्चय के लिए अनुच्छेद में विनिर्दिष्ट करता है, किस विनिश्चय पर अपील नहीं की जाएगी, ऐसे अनुरोध के लंबित होने पर माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम कार्यवाहियां जारी रख सकेगा और पंचाट तैयार कर सकेगा।"

1996 के भारतीय अधिनियम में इस प्रकार का प्रावधान अंतर्विष्ट नहीं है। धारा 16 में यदि अभिवचन अस्वीकृत हो जाता है जैसाकि मॉडल विधि में है, मध्यस्थ प्रारंभिक मामलों के रूप में या न्यायालय के तत्काल हस्तक्षेप के लिए उपरोक्त मुद्दों पर विनिश्चय कर सकेंगे। अधिनियम की धारा 37(2)(क) के अधीन धारा

16(2) या (3) में निर्देशित अधिवचनों को स्वीकार करते हुए मध्यस्थों के आदेश के विरुद्ध ही न्यायालय को एक अपील की जाती है परंतु जहां उपरोक्त अधिवचन को अस्वीकृत कर दिया जाता है वहां नहीं, तथापि मॉडल विधि में, जहां ऐसे अधिवचन को अस्वीकृत कर दिया जाता है, उन मामलों में भी तत्काल उपाय की व्यवस्था है।

2.12.4 इसके अतिरिक्त, भारतीय अधिनियम, 1996 की धारा 16(5) में यह प्रतीत होता है कि "करेगा" शब्द "विनिश्चय" के साथ-साथ "जारी" शब्द शासित होता है जिसका अर्थ यह है कि यदि धारा 16(6) के अधीन कोई अपील दायर की जाती है अर्थात (अधिकारिता के अधिवचन की अस्वीकृति के मामले में) माध्यस्थम कार्यवाही करें या न करें यह मध्यस्थों के विवेक पर निर्भर करेगा। यह कहा जाता है कि यह अनुच्छेद 16(3) में मॉडल विधि में संगत प्रावधान के विपरीत होगा। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि "अधिवचन को स्वीकार करने" शब्दों के बाद तथा "--------जारी रखने" से पहले "यह हो सकेगा" शब्दों का प्रयोग करके धारा 16(5) में और संशोधन करना आवश्यक है।

निःसंदेह यह सच है कि अनसिट्राल मॉडल (पैरा 157 से 163) को स्वीकार करने पर यूएन० कमीशन द्वारा अपनी रिपोर्ट में तत्काल अपील की आवश्यकता पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया था। यह बताया जाता है कि आयोग ने इस सिद्धांत को स्वीकार किया है कि अपनी स्वयं की अधिकारिता का निर्णय लेने के लिए माध्यस्थम अधिकरण की सक्षमता न्यायालय द्वारा नियंत्रित की जानी चाहिए। नियंत्रण की सीमा और लगाए जाने वाले (पैरा 137) नियंत्रण के स्तर पर भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किए गए थे। एक विचार यह था कि पंचाट के बाद ही उपाय किए जाने चाहिए क्योंकि "कार्यवाहियों के विलंब या बाधा के प्रयोजन के लिए पक्षकार द्वारा दुरुपयोग को रोका जा सकेगा" (पैरा 158)। दूसरा विचार यह था कि प्रारंभ में न्यायालय की इजाजत से या धारा 13(3) में दी गई रीति अपनाकर अर्थात "अल्प सूचना अवधि", विनिश्चय (न्यायालय के) को अंतिम रूप देकर, माध्यस्थम कार्यवाहियों को जारी रखने के विवेक और पंचाट प्रस्तुत करके तात्कालिक अपील करनी चाहिए (पैरा 159)। एक और विचार यह था कि माध्यस्थम अधिकरण की अधिकारिता के महत्वपूर्ण प्रश्न पर निश्चितता प्राप्त करने के लिए न्यायालय का तात्कालिक सहारा लेने हेतु पक्षकारों को अनुमति देना आवश्यक था (पैरा 160)। यूएन० कमीशन ने "विचार-विमर्श के बाद" अनुच्छेद 13(3) में व्यवस्था किए गए हल के अनुसार अनुच्छेद 16(3) में तात्कालिक नियंत्रण के लिए व्यवस्था करने का विनिश्चय किया था।

एक दूसरे दिलचस्प पहलू को यहां नोट किया जा सकेगा। संयुक्त राष्ट्र आयोग महसूस करता है कि यदि मध्यस्थ यह महसूस करते हैं कि उनका कोई अधिकारिता क्षेत्र नहीं है, न्यायालय द्वारा कोई और हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए तथा अनुच्छेद 15 को प्रचालित किया जाएगा। परंतु 1996 के भारतीय अधिनियम में यह अधिवचन स्वीकार करने कि मध्यस्थों का कोई अधिकारिता क्षेत्र नहीं है, मध्यस्थों के आदेश के विरुद्ध धारा 37(2) के अधीन एक अपील की व्यवस्था की गई है। इसके विपरीत इसने अपील करने की व्यवस्था को छोड़ दिया है जैसाकि मॉडल विधि के अधीन उन मामलों में किया जाता है जहां अधिकारिता की अनुपस्थिति के अधिवचन को अस्वीकृत कर दिया गया था।

कुछ अन्य देशों के माध्यस्थम विधियों पर विश्वास व्यक्त किया जाता है जिनमें धारा 16 के अधीन माध्यस्थम अधिकरण की अधिकारिता के न होने के अधिवचन को अस्वीकृत करने वाले आदेश के विरुद्ध तत्काल अपील की व्यवस्था की जाती है। यह बताया जाता है कि वास्तव में, जर्मन अधिनियम, 1998 की धारा 1040 में उपखंड (3) में मध्यस्थों द्वारा प्रारंभिक आदेश दिए जाने तथा न्यायालय को अपील करने की व्यवस्था की गई है, इस प्रकार, जिम्बाबे अधिनियम, 1996 का अनुच्छेद 16(3), कोरिया अधिनियम, 1999 का अनुच्छेद 16(5), आइरिश अधिनियम, 1998 का अनुच्छेद 16(3), कनाडा अधिनियम, 1996 की प्रथम अनुसूची का अनुच्छेद 16 न्यायालय को अपील करने के अधिकार के साथ प्रारंभिक मामलों के रूप में अधिकारिता मामलों पर विनिश्चय करने की मध्यस्थों को अनुमति देता है। यह मॉडल विधि और इन सभी विभिन्न अधिनियमों में यह और व्यवस्था की गई है कि न्यायालय द्वारा विनिश्चय के लंबित होने पर यह मध्यस्थों पर निर्भर करेगा कि वे माध्यस्थम कार्यवाही करें या नहीं। सभी विधियों में इस संदर्भ में "सकेगा" शब्द का प्रयोग होता है।

एलन रेडफर्न एवं मार्टिन हैनरी द्वारा अपनी "अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम (1999) की विधि एवं पद्धति" में यह बताया गया है कि विभिन्न राष्ट्रीय विधियों द्वारा स्वीकृत न्यायालय हस्तक्षेप की सीमा व्यापक मापदण्ड में भिन्न-भिन्न है। लेखक ने इसे निम्नवत् (पैरा 9.36) व्यक्त किया है:

''विभिन्न राज्यों द्वारा स्वीकृत न्यायालय हस्तक्षेप की सीमा को स्पेक्ट्रम के रूप में देखा जा सकेगा। स्पेक्ट्रम के एक छोर पर फ्रांस जैसे राज्य हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम पंचाटों पर न्यूनतम नियंत्रण का उपयोग करते हैं और स्वीटजरलैण्ड जो पूर्णतया नियंत्रण की ''संविदा'' के लिए गैर-स्विस पक्षकारों को अनुमति देता है। मध्य में, पर्याप्त संख्या में राज्यों का समूह है जिन्होंने मॉडल विधि में निर्धारित आशय के आधारों को अपनाया है (या तो पूर्ण रूप से या कुछ संशोधनों के साथ)। स्पेक्ट्रम के दूसरे छोर पर इंग्लैण्ड जैसे देश हैं, जो क्रमबद्ध नियंत्रण प्रचालित करते हैं।''

उन्होंने ऐसे हस्तक्षेप के लिए ''लोक नीति'' की आवश्यकताओं को निर्देशित किया है जो निम्नवत हैं:

''एक दृष्टिकोण पर यह कहा जाता है कि माध्यस्थम कार्यवाही में तेजी लाने और प्रभावकारिता को प्रोत्साहित करने के लिए मध्यस्थों को वस्तुतः असीमित शक्तियां दी जानी चाहिएं, किन्तु लोक नीति की आवश्यकताएं चाहे यह राष्ट्रीय हो या अन्तर्राष्ट्रीय, कुछ नियंत्रण की आवश्यक बनाती है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि पक्षकार बिना आशय के नहीं है, यदि माध्यस्थम अधिकरण की ओर से गलत आचरण किया जाता है। प्रथम दृष्टान्त के न्यायालय में एकल न्यायाधीश की बैठक सामान्यतया अपीलीय प्रक्रिया द्वारा निर्धारित की जानी चाहिए। यद्यपि आधुनिक प्रवृत्ति माध्यस्थम अधिकरण के विनिश्चयों को अप्रतिबाधित जाने दिया जाता है ताकि वे पक्षकारों के लिए प्रभावी रूप से अंतिम और बाध्यकारी हो सकें, जिस तरीके से ये विनिश्चय किए गए हैं, उन पर कुछ नियंत्रण करने को अधिकांश लोगों द्वारा स्वीकार किया गया है, यदि पूर्ण रूप से नहीं तो विधि पद्धति के अनुसार। विशेष रूप से, यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण माना जाता है कि माध्यस्थम अधिकरण पक्षकारों की बातें निष्पक्षरूप से सुने और कि वे अपनी सक्षमता या अधिकारिता के भीतर ही मामलों का विनिश्चय करें।''

इस लेखक ने अभी यह कहा है कि यदि अधिकारिता का मामला माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष उठाया जाता है तो अंतरिम पंचाट पारित कर सकेगा (पैरा 5.40):

''कई अधिकारिताओं (इंग्लैण्ड, स्वीटजरलैण्ड आदि) में, इस अंतरिम पंचाट को स्थानीय न्यायालयों में तत्काल चुनौती दी जा सकेगी। कुछ अधिकारिताओं में किसी पंचाट के जारी किए जाने से पूर्व एक अनिच्छुक प्रतिवादी न्यायालयों में माध्यस्थम अधिकरण की अधिकारिता को चुनौती दे सकता है (इंग्लैण्ड अधिनियम की धारा 32)। इन तरीकों से अधिकारिता के मामले पर अंतिम विनिश्चय माध्यस्थम कार्यवाहियों में प्रारम्भिक स्तर पर प्राप्त किया जा सकेगा।

वह प्रणाली, जिसके तहत एक राष्ट्रीय न्यायालय उस माध्यस्थम अधिकरण, जिसने गुण-दोष के आधार पर अंतिम पंचाट जारी किया है, के समक्ष अधिकारिता के प्रश्न में शामिल है, समवर्ती नियंत्रण के रूप में जानी जाती है। इस प्रणाली का लाभ यह है कि इससे पक्षकार तुलनात्मक रूप से अधिक शीघ्रता से यह जान पाते हैं कि उनकी स्थिति क्या है, और (जब तक कि माध्यस्थम अधिकरण संबंधित न्यायालय से विनिश्चय के लंबित होने पर कार्यवाहियों को जारी रखने का विनिश्चय करता है) यदि माध्यस्थम कार्यवाहियां आधारहीन सिद्ध होती हैं, वे समय और धन की बचत कर सकेंगे।''

उपरोक्त के अनुसार यह सच है कि यदि कोई तत्काल अपील है जैसाकि मॉडल विधि द्वारा स्वीकृत है, ऐसी प्रक्रिया के अपने स्वयं के लाभ हैं। उपरोक्त लेखक ने बताया है कि ''समवर्ती नियंत्रण के विरुद्ध व्यापक रूप से दो दलीलें'' हैं। प्रथमतः यह दलील दी जाती है कि माध्यस्थम कार्यवाहियों के दौरान न्यायालयों के आश्रय लेने को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि जहां तक संभव हो, माध्यस्थम कार्यवाहियां बाहर के ''हस्तक्षेप'' के बिना की जानी चाहिए। दूसरे, और अधिक व्यवहारिक रूप से यह दलील दी जाती है कि माध्यस्थम की प्रक्रिया के दौरान न्यायालयों का आश्रय लेने की अनुमति से अनिच्छुक प्रतिवादी की ओर से विलम्बकारी युक्तियों को प्रोत्साहित किए जाने की संभावना है। लेखक कहते हैं (5.40):

''मॉडल विधि बनाते समय इस प्रश्न पर बहुत अधिक वाद-विवाद हुआ था। तथापि, अन्त में समवर्ती नियंत्रण के हल को स्वीकार किया गया था'' (अनुच्छेद 16)।

इस प्रकार, अन्ततः अधिकारिता की कमी के अभिवचन को अस्वीकृत करते हुए माध्यस्थम अधिकरण के अन्तवर्ती आदेश के विरुद्ध मॉडल विधि में अपील की व्यवस्था की गई है।

2.12.5 तब, प्रश्न यह है कि क्या प्रमुख लेखकों की उपरोक्त राय और निर्देशित कठिनाई पर विश्वास व्यक्त करते हुए धारा को संशोधित किया जाना है।

गंभीर विचार-विमर्श के बाद, आयोग ने यह राय व्यक्त की कि यदि अधिकरण की अधिकारिता के संबंध में विरोध को अस्वीकृत करते हुए धारा 16 के अधीन माध्यस्थम अधिकरण के आदेश के विरुद्ध धारा 37(2) में तत्काल अपील की व्यवस्था की जाती है, जैसाकि मॉडल विधि के अन्तर्गत है, प्रावधान का दुरुपयोग किए जाने की संभावना है और यदि यह भी कहा जाता है कि न्यायालय के समक्ष अपील लंबित होने पर भी माध्यस्थम कार्यवाहियां चलती रहेंगी, यह संभावना भी है कि माध्यस्थम कार्यवाहियों को स्थगित कर दे। दुरुपयोग की संभावना को ध्यान में रखते हुए यदि अंतवर्ती आदेशों के विरुद्ध अपील का अधिकार दिया जाता है, आयोग ने उपरोक्त निर्धारित अपील के अधिकार के पक्ष में महत्वपूर्ण दलीलों को महत्व न देने का विनिश्चय किया है। धारा 16(6) के अधीन व्यवस्था दिए गए पंचाट के बाद पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन-पत्र प्रस्तुत करना ही केवल उपाय है।

इसलिए, यह महसूस किया जाता है कि अधिकारिता की कमी के अभिवचन को अस्वीकृत करने वाले आदेश के विरुद्ध कोई अपील करने की व्यवस्था करना उपयुक्त नहीं है। धारा 16 और 37(2) असंशोधित रहेंगी।

2.12.6 परन्तु धारा 34 में एक स्पष्टीकरण के द्वारा यह स्पष्ट किया जाना है कि एक आवेदक, पंचाट को अपास्त करने की मांग करते हुए अधिकारिता की कमी के अभिवचन को अस्वीकृत करने वाला माध्यस्थम अधिकरण के अंतवर्ती आदेश पर आक्षेप कर सकता है जैसाकि धारा 16(6) द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई है।

धारा 34 में प्रस्तावित "स्पष्टीकरण-II धारा 16(6) में व्यवस्था किए गए स्पष्टीकरण के रूप में है। हमने पहले ही पैरा 2.10.1 में धारा 13 के अन्तर्गत अपनी चर्चा में इस स्पष्टीकरण को निर्देशित किया है।

2.13.1 धारा 17: माध्यस्थम अधिकरण के अंतरिम उपायों और शक्तियों को और बढ़ाया जाना

धारा 17(1) में बताया गया है कि जब तक पक्षकारों द्वारा अन्यथा करार नहीं किया जाता, तब तक माध्यस्थम अधिकरण, एक पक्षकार के निवेदन पर वैसे "संरक्षण" के अंतरिम उपाय करने के लिए एक पक्षकार को आदेश दे सकता है जैसा माध्यस्थम अधिकरण विवादित विषय-वस्तु के बाबत आवश्यक समझ सकेगा। उपधारा (2) के अधीन आदेशित किए गए उपाय के संगत समुचित प्रतिभूति का प्रावधान करने की एक पक्षकार से अपेक्षा कर सकेगा।

यह देखा जा सकेगा कि धारा 17(1) विवादित विषय-वस्तु के संरक्षण के लिए अंतरिम उपायों की अनुमति देती है तथा धारा 17(2) निर्देशित की जाने वाली समुचित प्रतिभूति से संबंधित है।

यह सुझाव दिया गया है कि माध्यस्थम अधिकरण को सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां प्रदान की जायेंगी और यह कि इसके आदेश के उल्लंघन को माध्यस्थम अधिकरण की "अवमानना" के रूप में माना जाना चाहिए, उसे तुरन्त दण्ड दिया जाना चाहिए। यह सुझाव दिया गया था कि माध्यस्थम अधिकरण को साक्षी की उपस्थिति की आवश्यकता की शक्तियां तथा निषेधाज्ञा या आदाता की विशुक्ति या तीसरे पक्षकार की सम्पत्ति की कुर्की करने की शक्तियां भी दी जानी चाहिए बशर्ते कि अधिकरण अपने निदेशों के उल्लंघन के लिए विभिन्न दण्ड लगा सके।

यह निवेदन कानून में स्पष्ट रूप से स्वीकार्य प्रतीत नहीं होता है। जैसाकि रेडफर्न और हन्टर (1999) द्वारा पैरा 1.10 में बताया गया है:

> "...जुर्माने या कारावास से दण्ड के अधीन साक्षियों की उपस्थिति की आवश्यकता या बैंक खातों को जब्त करके या परिसम्पत्ति जब्त करके पंचाट प्रवर्तित करने की शक्तियां ऐसी शक्तियां है, जो राज्य के विशेषाधिकार का एक भाग है। ये ऐसी शक्तियां नहीं हैं जिन्हें किसी राज्य द्वारा गैर सरकारी माध्यस्थम अधिकरण को सौंपे जाने की संभावना है चाहे वह माध्यस्थम अधिकरण कितना भी प्रतिष्ठित या नेकनीयत क्यों न हो। व्यवहारिक रूप से यदि माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष आए मामले को उचित प्रकार से देखने हेतु प्रतिकूल कार्यवाही करना उसके लिए आवश्यक हो जाए तो ऐसी कार्यवाही सामान्यतया अप्रत्यक्ष रूप से की जानी चाहिए यद्यपि स्थानीय न्यायालयों के तन्त्र स्वयं न्यायाधीश के रूप में बल्कि प्रत्यक्ष रूप से कर सकते हैं।"

लेखकों ने और विस्तारपूर्वक बताया (देखिए पैरा 5.07):

"पक्षकारों द्वारा माध्यस्थम अधिकरणों को प्रदान की गई शक्तियां चाहे प्रत्यक्ष हों या अप्रत्यक्ष, उन शक्तियों से कम हैं जो एक राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा विवादित की जा सकेंगी। एक न्यायालय, जो राज्य से अपने प्राधिकार प्राप्त करता है, को अपने आदेशों का अनुपालन सुनिश्चित कराने के लिए अपने अधिकार में अत्यन्त प्रपीड़क शक्तियां प्राप्त हैं। किसी माध्यस्थम अधिकरण को ऐसी शक्तियां प्राप्त नहीं हैं। पक्षकार गैर सरकारी अधिकरण को सम्पत्ति और व्यक्तियों पर प्रपीड़क शक्तियां प्रदान नहीं कर सकते हैं जो राज्यों द्वारा राष्ट्रीय न्यायालयों को प्रदान की जाती हैं। इस तथ्य को मानते हुए कानून की कई प्रणालियां माध्यस्थम अधिकरणों की शक्तियों की संपूरक हैं।"

इसलिए, दण्ड देने आदि की शक्तियां माध्यस्थम प्राधिकरण को प्रदान नहीं की जा सकती हैं।

इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 38 माध्यस्थम अधिकरण को निम्न शक्तियां प्रदान करती हैं (i) लागत के लिए प्रत्यक्ष प्रतिभूति, (ii) पक्षकारों कि कब्जे में या स्वामित्व में विवादित विषय-वस्तु के संबंध में निदेश जारी करने, (iii) अधिकरण द्वारा या विशेषज्ञ द्वारा या पक्षकार द्वारा सम्पत्ति का निरीक्षण, फोटोचित्रण, परिरक्षण, अभिरक्षा या निरोध, (iv) लिए जाने वाले नमूनों का आदेश देने या सम्पत्ति का प्रेक्षण करने या प्रयोग करने, (v) पक्षकार या साक्षी को शपथ या प्रतिज्ञान का निदेश देने और इसकी व्यवस्था करने, (vi) पक्षकार की अभिरक्षण या नियंत्रण में किसी साक्ष्य के लिए परिरक्षण हेतु पक्षकार को निदेश जारी करने। इंग्लिश अधिनियम की धारा 38 के विभिन्न खण्डों को अपनाकर धारा 17 में विस्तार करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है।

तथापि, यह नोट किया जा सकता है कि धारा 9 के अधीन, जब माध्यस्थम कार्यवाहियां चल रही हों पक्षकार आवश्यक अंतरिम आदेशों के लिए न्यायालय में जा सकते हैं। जहां तक न्यायालय की सहायता का संबंध है, अधिनियम की धारा 27 में बताया गया है कि माध्यस्थम के अनुमोदन के साथ, माध्यस्थम अधिकरण या एक पक्षकार साक्ष्य ग्रहण करने में सहायता के लिए न्यायालय के समक्ष निवेदन कर सकेगा। धारा 27(5) न्यायालय द्वारा लगाई जाने वाली शास्ति और दण्ड की अनुमति देती है।

2.13.2 एक सुझाव दिया गया है कि धारा 9 की तुलना में इस धारा के शीर्ष को बदल दिया जाए, माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष यह प्रतिविरोध व्यक्त किया जा रहा है कि इसे "अंतरिम आदेश" देने की सभी शक्तियां हैं जो न्यायालय धारा 9 के अधीन दे सकता है। यह भी सुझाव दिया गया है कि अंतरिम आदेश देने की माध्यस्थम अधिकरण की शक्तियों को धारा 17 में सूचीबद्ध किया जा सकेगा।

इन सुझावों को स्वीकार किया जाता है और इंग्लिश माध्यस्थम अधिनियम, 1996 की धारा 38 में सूचीबद्ध शक्तियों के समान ही कतिपय अतिरिक्त शक्तियों को जोड़कर धारा 17 का विस्तार किया जाता है। इस धारा के शीर्ष को भी बदला जाता है।

2.13.3 इसलिए, धारा 17 के शीर्ष को भी संशोधित करके निम्नलिखित लाईन पर धारा 17 में सुधार किया जा सकता है:

माध्यस्थम अधिकरण द्वारा अंतरिम निदेश और अन्य शक्तियां

"17 माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम कार्यवाहियां लंबित रहने पर निम्न निदेश दे सकेगा:-

(क) माध्यस्थम कार्यवाहियों के लिए पक्षकार के अनुरोध पर अन्य पक्षकार माध्यस्थम अधिकरण द्वारा आवश्यक समझे जाने वाले तरीके से विवादित विषय-वस्तु की सुरक्षा के लिए कदम उठाएगा; या

(ख) एक पक्षकार, खण्ड (क) के अधीन जारी निदेशों के संबंध में उपयुक्त प्रतिभूति प्रस्तुत करेगा; या

(ग) दावा करने वाला पक्षकार माध्यस्थम की लागत के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करने; या

(घ) किसी सम्पत्ति, जो माध्यस्थम कार्यवाहियों की विषय-वस्तु है तथा जो पक्षकार के स्वामित्व या कब्जे में है, के संबंध में कार्यवाही करने:-

(i) निरीक्षण के प्रयोजन के लिए माध्यस्थम अधिकरण द्वारा, विशेषज्ञ द्वारा या पक्षकार द्वारा सम्पत्ति के फोटोचित्रण, परिरक्षण, अभिरक्षण या विरोध; या

(ii) उक्त सम्पत्ति से नमूना लेने या प्रेक्षण करने या कोई प्रयोग करने; या

(ङ) पक्षकार या साक्षी का शपथ या प्रतिज्ञान का परिक्षण करने और उस प्रयोजन के लिए आवश्यक शपथ दिलाने या आवश्यक प्रतिज्ञान के लिए निदेश देने; या

(च) पक्षकार को अपनी अभिरक्षा या नियंत्रण में किसी साक्ष्य के संरक्षण के लिए कदम उठाना जो कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए आवश्यक हो सकेगा।"

2.14.1 माध्यस्थम का स्थान: धारा 20 में प्रस्तावित संशोधन

1996 अधिनियम की धारा 2(1) में बताया गया है कि अधिनियम का भाग-1 उस पर लागू होगा "जहां माध्यस्थम का स्थान भारतवर्ष में है।"

1996 अधिनियम की धारा 2(6) इस संदर्भ में संगत है और इसे निम्नवत पढ़ा जाए:-

धारा 2(6): जहां इस भाग में धारा 28 को छोड़कर, पक्षकार कतिपय विवाद्यकों को अवधारित करने के लिए स्वतंत्र है, वहां स्वतंत्रता में पक्षकारों का उस विवाद को अवधारित करने के लिए किसी व्यक्ति को जिसके अंतर्गत कोई संस्था भी है, प्राधिकृत करने का अधिकार भी सम्मिलित होगा।'

धारा 2(6), जो मॉडल विधि के अनुच्छेद 2(ब) के संगत है, के अधीन पक्षकार माध्यस्थम का स्थान नियत करने हेतु संस्था से अनुरोध कर सकेंगे। माध्यस्थम का स्थान अधिनियम की धारा 20 के आधार पर नियत किया जाता है। परन्तु मुद्दा यह है कि क्या दो भारतीय कम्पनियों के बीच माध्यस्थम में, जहां संविदा भारत में निष्पादित की जानी है, पक्षकार या संस्था माध्यस्थम के रूप में भारत से बाहर किसी स्थान का नामांकन कर सकते हैं? यह धारा 2(2) के साथ पठित अधिनियम की धारा 20 के प्रावधानों के निर्वचन पर निर्भर करता है।

अधिनियम की धारा 20 जैसीकि अभी है, को निम्नवत ही पढ़ा जाए:-

"परन्तु कि जहां पक्षकार करार करने में असफल हो जाते हैं, माध्यस्थम स्थान का अवधारण पक्षकारों की सुविधा को सम्मिलित कर मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए माध्यस्थम अधिकरण द्वारा किया जाएगा। परन्तु यह और कि माध्यस्थम अधिकरण, जब तक अन्यथा पक्षकारों द्वारा करार नहीं किया जाता, ऐसे किसी भी स्थान पर मिलेंगे जिसे यह इसके सदस्यों के बीच परामर्श करने के लिए साक्षियों, विशेषज्ञों या पक्षकारों की सुनवाई करने के लिए या दस्तावेजी माल या दूसरी सम्पत्ति का निरीक्षण करने के लिए उचित समझता है।"

धारा 20, 1996 अधिनियम के भाग I में है और जैसाकि धारा 2(2) में बताया गया है, अधिनियम का भाग-1 भारत में सभी माध्यस्थमों पर लागू होता है चाहे यह माध्यस्थम स्वरूप में अन्तर्राष्ट्रीय हो या स्वरूप में केवल राष्ट्रीय हो, अर्थात भारतीय नागरिकों के बीच हो।

धारा 20(1) का यथार्थ निर्माण करने पर यह प्रतीत हो सकेगा कि संविदा के लिए पक्षकार जैसाकि पहले उल्लेख किया गया है, भारत से बाहर माध्यस्थम के स्थान के लिए सहमत हो सकते हैं। परन्तु जैसाकि नीचे स्पष्टीकरण दिया गया है, जब तक धारा 2(2) और धारा 20(1) का नियंत्रण करती है, यह स्वीकार्य नहीं है। धारा 2(2) और धारा 20(1) के संयुक्त प्रभाव का भारतीय माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 पर डा॰ पी॰सी॰ राव की व्याख्या में पृष्ठ 83 पर निम्नवत स्पष्ट किया गया है:

"उपधारा (1) माध्यस्थम के स्थान का चयन करने के लिए पक्षकारों को अनुमति देती है। इसके बावजूद यह उपधारा यह प्रभाव भी दे सकेगी कि यह स्थान भारत से बाहर भी हो सकेगा। तथापि, धारा 2(2) स्पष्ट रूप से यह बताती है कि भाग-1 को वहां लागू किया जाता है जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में है, चाहे ऐसा माध्यस्थम अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम हो या आंतरिक माध्यस्थम हो।"

दूसरे शब्दों में, कानूनी स्थिति निम्नवत है। चाहे माध्यस्थम स्वरूप में अंतर्राष्ट्रीय हो या भारतीय नागरिकों के बीच केवल आंतरिक मध्यस्थ हो, जहां भाग-1 लागू होता है, माध्यस्थम का स्थान भारत में होना चाहिए तथा

पक्षकारों या संस्था, जिन्हें धारा 2(6) के अधीन माध्यस्थम के स्थान के चुनने में निर्देशित किया गया है, द्वारा यह निर्णय लेने का कोई प्रश्न है कि माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर होगा।

धारा 20(1) में अनपेक्षित विलोपन के कारण ही स्पष्ट रूप से संभ्रान्ति हुई प्रतीत होती है, जो भारत में अतिरिक्त शब्द अंतर्विष्ट नहीं किया गया है, जिसे धारा 2(2) से समाविष्ट करना होगा और पक्षकारों को यह सोचने का भ्रम हो गया कि वे भारत से बाहर माध्यस्थम के स्थान का चयन करने हेतु स्वतंत्र हैं। इस संबंध में डा० पी० सी० राव द्वारा (पृष्ठ 83 पर) की गयी व्याख्या में जो कुछ बताया गया है, तथा जिससे आयोग पूर्णतया सहमत है, उसे देखते हुए ''भारत में'' शब्दों को धारा 20(1) में जोड़े जाने का प्रस्ताव है।

इसलिए संभ्रांति या संदिग्धता को दूर करने तथा धारा 20 की उपधारा (1) में संशोधन करने का हमारा विचार है।

विद्यमान उपधारा (2) और (3) को परन्तुक में परिवर्तित किया जाता है ताकि यदि पक्षकार स्थान पर सहमत नहीं होते हैं तो माध्यस्थम अधिकरण भारत से बाहर माध्यस्थम का स्थान नियत नहीं कर सकेगा।

संशोधन किए जा रहे अधिनियम की धारा 32 के अधीन हमारा इसे भूत प्रभावी बनाने का विचार है बशर्ते कि माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति इस अधिनियम के प्रारम्भ होने की तारीख के बाद न की गई हो।

धारा 20 को निम्नवत संशोधित किए जाने का प्रस्ताव है:

माध्यस्थम का स्थान

''20(1) उपधारा (2) के प्रावधानों के अध्यधीन पक्षकारों को माध्यस्थम के स्थान पर करार करने की स्वतंत्रता होती है।

परन्तु यह कि जहां पक्षकार करार करने में असफल हो जाते हैं, माध्यस्थम के स्थान का अवधारण पक्षकारों की सुविधा को सम्मिलित कर मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए माध्यस्थम अधिकरण द्वारा किया जाएगा।

परन्तु यह और कि माध्यस्थम अधिकरण, जब तक अन्यथा पक्षकारों द्वारा करार नहीं किया जाता, ऐसे किसी भी स्थान पर मिलेंगे जिसे यह इसके सदस्यों के बीच परामर्श करने के लिए साक्षियों, विशेषज्ञों या पक्षकारों की सुनवाई करने के लिए या दस्तावेजों, माल या दूसरी सम्पत्ति का निरीक्षण करने के लिए उचित समझता है।

(2) माध्यस्थम का स्थान भारत में ही होगा।''

2.15.1 धारा 23 में संशोधन: दावे, प्रतिरक्षा और प्रत्युत्तर का विवरण

अनेक सेवानिवृत्त न्यायाधीशों, जो माध्यस्थम कर रहे हैं, द्वारा यह बताया गया है कि जब तक मध्यस्थ प्रक्रिया में तेजी लाने में नियंत्रण नहीं है तब तक शीघ्र माध्यस्थम के उद्देश्य की प्राप्ति करना संभव नहीं है और यह कि अधिकतर पक्षकार या वे लोग जो स्थगन की श्रृंखला के लिए सहमत हो जाते हैं, उनके सहमत होने पर मध्यस्थ ऐसे करार के विपरीत नहीं जा पाते हैं। यह कहा जाता है कि आज यह माध्यस्थम प्रक्रिया में एक मुख्य अड़चन है। इसलिए, उन्होंने अनुरोध किया है कि धारा 23 की उपधारा (1) में ''पक्षकारों द्वारा दी गई सहमति या'' शब्दों तथा ''जब पक्षकार इन सभी विवरणों के अपेक्षित तत्वों के बारे में अन्यथा करार नहीं कर चुके होते'' शब्दों को हटा दिया जाए।

सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद तथा हमारे देश में आधारभूत वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए और प्रत्येक स्थगन पर पक्षकारों के व्यय, जहां उन्हें अपने अधिवक्ताओं और मध्यस्थों को भी संदाय करना पड़ता है, को ध्यान में रखते हुए आयोग उपरोक्त सुझाव के लिए सहमत हुआ है। यह भी जोड़ा गया है कि ''जब तक अधिकरण समय का विस्तार नहीं करता, पक्षकारों को माध्यस्थम अधिकरण द्वारा इस प्रकार नियत की गई समय अनुसूची का पालन करना होगा।'' आयोग की सोच धारा 23(1) के अधीन प्रतिरक्षा विवरण के संबंध में प्रत्युत्तर करने के लिए दावेदार को अनुमति देना उचित है, उच्च न्यायालय को इस संबंध में नियम निर्धारित करने होंगे।

2.15.2 आयोग सिफारिश करता है कि धारा 23 में उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात—

"(1) माध्यस्थम अधिकरण द्वारा निर्धारित की जाने वाली कालावधि के भीतर दावेदार अपने दावे, वाद विषयों की बिन्दुओं और प्राप्त किए गए अनुतोष या उपचार का समर्थन करने वाले तथ्यों का विवरण प्रस्तुत करेगा तथा प्रतिवादी इन सभी विशिष्टियों के बाबत अपनी प्रतिरक्षा का विवरण प्रस्तुत करेगा तथा दावेदार अपना प्रत्युत्तर प्रस्तुत करेगा, यदि कोई हो, और जब तक अधिकरण समय का विस्तार नहीं करता, पक्षकारों को माध्यस्थम अधिकरण द्वारा इस प्रकार नियत की गई समय अनुसूची का पालन करना होगा।

(1 क) ऐसे नियमों, जैसेकि इस संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा बनाए जा सकेंगे, के अध्यधीन माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम प्रक्रिया में तेजी लाने का प्रयास करेगा।"

2.16.1 धारा 24 में संशोधन: सुनवाई और लिखित कार्यवाही

मध्यस्थों के रूप में कार्य कर रहे अनेक सेवानिवृत न्यायाधीशों द्वारा फिर यह सुझाव दिया गया है कि हमारे देश में लगभग प्रत्येक माध्यस्थम में कम से कम एक पक्षकार माध्यस्थम कार्यवाहियों को विलंबित करने में दिलचस्पी रखता है और उस प्रयोजन के लिए साक्ष्य प्रस्तुत करने के स्तर पर अनेक स्थगनों की मांग की जाती है। यह बताया गया है कि भारत में पक्षकार और उनके सलाहकार अभी भी यह सोचते है कि माध्यस्थम अधिकरण न्यायालय की तरह ही है और जब मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत किए जा रहे होते हैं कार्यवाही के दौरान सभी प्रकार के विरोध प्रकट करते हैं। यह सुझाव दिया जाता है कि इस बात का कोई कारण नहीं है कि साक्ष्य के मुख्य जांचकर्ता को पूर्णतया शपथ पत्र के माध्यम से साक्ष्य लेने की अनुमति क्यों नहीं दी जानी चाहिए ताकि मौखिक साक्ष्य को प्रतिपरीक्षा और पुनःपरीक्षा तक ही सीमित किया जा सके। इसके अतिरिक्त, कुछ अवसरों पर, सलाहकार यह आग्रह करता है कि साक्ष्य को "प्रश्न और उत्तर" फार्म में रिकार्ड किया जाता है जिससे समय की काफी बर्बाद होती है। ऐसी स्थिति में मध्यस्थ असहाय हो जाता है। इसलिए मध्यस्थों को कार्यवाहियों पर अधिक नियंत्रण दिया जाना चाहिए और ऐसा प्रावधान किया जाना चाहिए ताकि मुख्य जांचकर्ता शपथ-पत्र द्वारा साक्ष्य ले सके। इसके अलावा, मध्यस्थों द्वारा नियत की गयी समय अनुसूची का पक्षकारों द्वारा कभी कठोरता से पालन नहीं किया जाता है।

आयोग ने सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद यह महसूस किया कि भारत में आधारभूत वास्तविकताओं और पक्षकारों तथा सलाहकारों की यह सोचने की मनोवृत्ति कि माध्यस्थम अधिकरण किसी अन्य न्यायालय की भांति है, के कारण धारा 24 में संशोधन करना आवश्यक है, समय अनुसूची नियत करने में पक्षकारों की सहमती से संबंधित शब्दों को हटा दिया जाए। आयोग धारा 24 में संशोधन करने के लिए सहमत हो गया है ताकि इन बहुमूल्य सुझावों को सम्मिलित किया जा सके। उपधारा (1) को संशोधित किया जाता है तथा उपधारा (1 क) को जोड़ा जाता है। यह भी व्यवस्था की जाती है कि जब तक कि समय का विस्तार नहीं किया जाता, पक्षकारों को माध्यस्थम अधिकरण द्वारा नियत की गई समय अनुसूची का पालन करना होगा। इस संबंध में प्रक्रिया उच्च न्यायालय द्वारा विहित की जानी है जैसाकि धारा 24 की उपधारा (1) में बताया गया है। वास्तव में, रेडफर्न और मार्टिन ने (पैरा 1.12.5) बताया है:

"बड़ी अमेरीकी विधि फर्में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम को अन्यों के साथ.....एक प्रकार का मुकदमा मानती हैं। एक प्रमुख न्यूयार्क विधि फर्म में एक पार्टनर ने यह देखा: "माध्यस्थम को हम मुकदमा सन्यायालयों में मुकदमेबाजी के लिए सहायक के रूप में मानते हैं। यह केवल एक भिन्न मंच है।"

2.16.2 आयोग सिफारिश करता है कि मूल अधिनियम की धारा 24 में उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधाराएं प्रतिस्थापित की जाएंगी और उपधारा (1 क), (1 ख) और (1 ग) अन्तःस्थापित की जाएंगी:

"(1) इस संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा बनाए जाने वाले ऐसे नियमों के अध्यधीन, माध्यस्थम अधिकरण यह विनिश्चय करेगा कि क्या साक्ष्य के प्रस्तुतीकरण के लिए या मौखिक बहस के लिए मौखिक सुनवाई को अधिनिर्धारित करना या क्या कार्यवाही का संचालन दस्तावेजों और दूसरे तत्वों के आधार पर किया जाएगा या मौखिक साक्ष्य के बदले शपथ-पत्र प्राप्त किया जाएगा बशर्ते कि साक्षी से मौखिक रूप से प्रश्न किए जा रहे हो।

परन्तु कि माध्यस्थम अधिकरण, कार्यवाहियों के किसी उपयुक्त स्तर पर, मौखिक साक्ष्य के प्रस्तुतीकरण के प्रयोजन हेतु मौखिक सुनवाई कर सकेगा।

(1क) उपधारा (1) के प्रावधानों के अध्यधीन, माध्यस्थम अधिकरण उसके समक्ष प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं के संबंध में आदेश पारित करेगा।

(1ख) उपधारा (1क) के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, आदेश पारित करने के लिए माध्यस्थम अधिकरण की शक्तियों में निम्न शामिल है:

क. मौखिक साक्ष्य, यदि कोई हो, प्रस्तुत करने के लिए पक्षकारों हेतु समय अनुसूची नियत करना;

ख. मौखिक बहस के लिए समय अनुसूची नियत करना;

ग. वह तरीका, जिसमें मौखिक साक्ष्य रिकार्ड किया जाना है;

घ. यह विनिश्चय करने की शक्ति कि क्या कार्यवाहियां दस्तावेजों और दूसरे तत्वों के आधार पर ही संचालित की जाएंगी या अन्य तरीका जिसमें कार्यवाहियां संचालित की जा सकेंगी।

(1ग) उपधारा (1क) के अधीन निर्धारित प्रक्रिया और माध्यस्थम अधिकरण द्वारा उपधारा (1ख) के अधीन नियत की गयी समय अनुसूची पक्षकारों पर बाध्य होगी।''

2.17.1 माध्यस्थम अधिकरण को अपने आदेशों को लागू करने हेतु प्रदान की जाने वाली शक्तियां: प्रस्तावित धारा 24 क:

आयोग की नोटिस में यह लाया गया है कि धारा 17, 23 और 24 के अधीन माध्यस्थम कार्यवाहियां संचालित करने के दौरान माध्यस्थम अधिकरण द्वारा जारी किए गए विभिन्न निदेशों को पक्षकार तत्परता से कार्यान्वित नहीं करते हैं । यह बताया गया है कि अधिनियम की धारा 25 द्वारा अपेक्षित चूक के प्रकार सर्वांगीण नहीं है और इसलिए, अन्य प्रकार की चूक की गैर अनुपालना हेतु परिणामों को शामिल करने के लिए प्रावधान किए जाने चाहिए। यह भी बताया गया है कि जब तक आवेदनों को काटने या असंगत साक्ष्य को निकालने या लागत आदि का निर्णय लेने की शक्तियां माध्यस्थम अधिकरण को प्रदान नहीं की जाती, कुछ अड़ियल पक्षकारों के साथ कार्यवाही करने में कठिनाई आ रही है यह सुझाव दिया गया है कि इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 41 की उपधारा (5), (6) और (7) के प्रावधानों को लाया जाना चाहिए ताकि माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम प्रक्रिया पर प्रभावी नियंत्रण रख सके और इनमें तेजी ला सके। ऐसे प्रावधानों से माध्यस्थम अधिकरण उत्पाती पक्षकारों के साथ प्रभावी रूप से कार्यवाही कर सकेगा।

आयोग इस बात से सहमत है कि धारा 25, विद्यमान अवस्था में, ऐसी स्थितियों के लिए ही व्यवस्था करती है, जहां दावा विवरण प्रस्तुत नहीं किया जाता या जब कोई पक्षकार मौखिक सुनवाई के लिए नहीं आता या दस्तावेज संबंधी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर पाता है। इन स्थितियों से दावा खारिज हो सकता है या इसके समक्ष विद्यमान साक्ष्य के आधार पर पंचाट पारित किया जा सकता है। परन्तु आयोग की राय में माध्यस्थम अधिकरण के अन्य निदेशों के गैर-अनुपालना के मामले में एक प्रक्रिया की व्यवस्था करना आवश्यक है। इसलिए, आयोग का इस संबंध में अलग से प्रक्रिया निर्धारित करने का प्रस्ताव है तथा प्रस्तावित धारा 25 के अधीन प्रक्रिया पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना इन शक्तियों का प्रयोग किया जाना है।

इसलिए, धारा 17 के अधीन आदेशित ''अंतरिम उपायों'' या अभिवचन दाखिल करने के लिए धारा 23 के अधीन या साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए धारा 24 के अधीन विभिन्न निदेशों या समय अनुसूची की अनुपालना के लिए पहले अनिवार्य आदेश पारित करने हेतु माध्यस्थम अधिकरण को विशेष शक्तियां प्रदान करने का प्रस्ताव है। यदि ऐसे अनिवार्य आदेशों, जैसेकि प्रस्तावित है, कि अभी भी अनुपालना नहीं की जाती है, माध्यस्थम अधिकरण लागत अधिरोपित करने का आदेश पारित कर सकेगा या अभिवचन को काट देने का निदेश दे सकेगा या निर्भर कुछ सामग्री को निकाल सकेगा या प्रतिकूल अनुमान कर सकेगा।

यह आशा की जाती है कि यदि माध्यस्थम अधिकरण को ये अतिरिक्त शक्तियां दी जाती है, माध्यस्थम प्रक्रिया में तेजी आएगी और माध्यस्थम अधिकरण के आदेशों की सख्ती से अनुपालना हो सकेगी।

माध्यस्थम अधिकरणों को अपने आदेश लागू करने की शक्तियों को नई धारा 24क के अधीन लाए जाने का प्रस्ताव है जो निम्नवत बताई गयी है:

2.17.2 मूल अधिनियम की धारा 24 के पश्चात निम्नलिखित धारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात:—

धारा 17, 23 और 24 के अधीन पारित अपने आदेशों को लागू करने के लिए माध्यस्थम अधिकरण की शक्तियां

"24क (1) यदि पर्याप्त कारण बताए बिना कोई पक्षकार धारा 17, 23 या 24 के अधीन, यथास्थिति, पारित किए गए माध्यस्थम अधिकरण के किसी आदेश की अनुपालना करने में असफल रहता है, माध्यस्थम अधिकरण उसी प्रभाव का अनिवार्य आदेश दे सकेगा, अनुपालना के लिए ऐसा समय विहित कर सकेगा जैसाकि वह उपयुक्त समझे।

(2) यदि कोई दावेदार माध्यस्थम की लागत के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करने हेतु धारा 17 की उपधारा (1) के खण्ड (ग) के अधीन दिए गए निदेश के संबंध में उपधारा (1) के अधीन पारित अनिवार्य आदेश अनुपालना करने में असमर्थ रहता है, माध्यस्थम अधिकरण उसके दावे को निरस्त कर सकेगा और तदनुसार पंचाट कर सकेगा।

(3) यदि कोई पक्षकार उपधारा (1) के अधीन माध्यस्थम अधिकरण द्वारा पारित किसी दूसरे अनिवार्य आदेश की अनुपालना करने में असफल रहता है, तो उक्त अधिकरण निम्न कर सकेगा:

(क) गैर–अनुपालना के परिणामस्वरूप माध्यस्थम कार्यवाहियों पर आई लागत का संदाय करने हेतु ऐसा आदेश दे सकेगा, जैसाकि वह उपयुक्त समझे;

(ख) यह निदेश दे सकेगा कि दोषी पक्षकार अपने अभिवचन में किसी आक्षेप पर या किसी सामग्री, जो आदेश की विषय–वस्तु थी, पर विश्वास किए जाने हेतु पात्र नहीं होगा;

(ग) गैर–अनुपालना के कार्य से ऐसा प्रतिकूल अनुमान लगा सकेगा जैसा कि परिस्थितियों के उपयुक्त हो;

(घ) धारा 25 के अधीन की जा सकने वाली किसी कार्यवाही पर कोई प्रभाव डाले बिना ऐसी सामग्री के आधार पर पंचाट तैयार कर सकेगा जैसाकि इसे उपलब्ध कराई गई है।"

2.18.1 धारा 17, 23 और 24 के अधीन माध्यस्थम अधिकरण द्वारा पारित अनिवार्य आदेशों के न्यायालय द्वारा प्रवर्तन के लिए प्रक्रिया: विलम्बकारी तरीकों को रोकने के लिए प्रस्तावित उपबंध: धारा 24 ख

कई सेवानिवृत्त न्यायाधीशों ने जो कि माध्यस्थम संबंधी मामलों पर विचार करते रहें है, इस बात की ओर ध्यान दिलाया था कि माध्यस्थम अधिकरण द्वारा मंजूर 'अंतरिम उपायों" को न्यायालय के माध्यम से प्रवर्तित करने के लिए कोई प्रक्रिया नहीं है और इससे उन पक्षकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है और उनके सामने गम्भीर समस्याएं आ रही है जिनके पक्ष में ऐसे आदेश पारित किए गए हैं। माध्यस्थ भी कभी-कभी असहाय अनुभव करते हैं। इस समय पक्षकारों के पास एकमात्र प्रभावी उपाय यह है कि वे माध्यस्थम होने तक अन्तरिम उपायों के लिए धारा 9 के अन्तर्गत न्यायालय में समावेदन करें। निःसंदेह इसमें माध्यस्थम अधिकरण द्वारा मंजूर किए गए अंतरिम उपायों के प्रवर्तन के लिए आदेश प्राप्त करना सम्मिलित है। लेकिन आयोग से अनुरोध किया गया था कि इस संबंध में कुछ विशेष उपबंध किया जाए जैसाकि अंग्रेजी अधिनियम, 1996 में उपबंध किया गया है।

आयोग ने नोट किया है कि यॉडल विधि में इस समस्या से निपटने के लिए अलग से कोई प्रक्रिया नहीं है जबकि इंग्लिश अधिनियम, 1996 में धारा 42 के अन्तर्गत इससे कारगर निपटने के लिए व्यवस्था है। लेकिन भारतीय परिस्थितियों को देखते हुए इस संबंध में विशेष उपबंध किए जाने की आवश्यकता है।

इस कमी पर समुचित रूप से विचार करने के पश्चात आयोग का विचार है कि इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 42 में जिस प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है, उसी को कुछ परिवर्तनों के साथ अपनाना उचित होगा। हमारा प्रस्ताव है कि धारा 42 की उपधारा (2) के खण्ड (ग) का लोप किया जाए क्योंकि प्रस्तावित उपबंध हमेशा लागू होंगे। यह प्रस्ताव किया गया है कि माध्यस्थम अधिकरण द्वारा धारा 17क, 23 और 24 के

अन्तर्गत दिए अपने पूर्ववर्ती आदेशों के संबंध में धारा 24क (1) के अधीन पारित अनिवार्य आदेशों को प्रवर्तित करने की शक्ति न्यायालय को दी जाए। न्यायालय की इन शक्तियों का अवलंब माध्यस्थम के किसी भी पक्षकार द्वारा माध्यस्थम अधिकरण की अनुमति से दूसरे पक्षकारों को नोटिस दिए जाने या पक्षकारों को नोटिस देकर माध्यस्थम अधिकरण द्वारा लिया जा सकता है। ये शक्तियां स्पष्टतः न्यायालय के ऐसे किसी भी आदेश से स्वतंत्र है जो वह धारा 9 के अन्तर्गत पारित कर सकता है। परन्तु माध्यस्थम अधिकरण के आदेशों को लागू करने के लिए प्रस्तावित धारा 34 ख के अधीन पारित आदेश स्पष्टतः उन आदेशों के अध्यधीन होंगे जो धारा 37 की उपधारा (2) के खंड (ख) के अन्तर्गत की गई अपील पर न्यायालय द्वारा पारित किए जाएं।

2.18.2 हमारा प्रस्ताव है कि निम्नलिखित धारा 24 ख अन्तःस्थापित की जाए:

माध्यस्थम अधिकरण के अनिवार्य आदेशों के प्रवर्तन के लिए न्यायालय की शक्तियां

"24ख (1) धारा 9 के अधीन न्यायालय की शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, न्यायालय किसी पक्षकार द्वारा आवेदन किए जाने पर, ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जिसके अन्तर्गत उस पक्षकार से जिसे माध्यस्थम अधिकरण का आदेश निर्दिष्ट किया गया था, धारा 24क की उपधारा (1) के अन्तर्गत पारित माध्यस्थम अधिकरण के अनिवार्य आदेशों का अनुपालन करने की अपेक्षा की गई हो।

(2) उपधारा (1) के अन्तर्गत आवेदन निम्नलिखित द्वारा किया जा सकेगा:—

(क) पक्षकारों को नोटिस देने के पश्चात माध्यस्थम अधिकरण द्वारा; या

(ख) पक्षकारों को नोटिस देने के पश्चात, माध्यस्थम अधिकरण की अनुमति से माध्यस्थम कार्यवाही के किसी पक्षकार द्वारा।

(3) न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अन्तर्गत तब तक कोई आदेश पारित नहीं किया जाएगा जब तक उसका यह समाधान नहीं हो जाता कि जिस व्यक्ति को माध्यस्थम अधिकरण का आदेश निर्दिष्ट किया गया था वह माध्यस्थम अधिकरण के आदेश में निश्चित समय सीमा के भीतर या यदि कोई समय-सीमा निश्चित नहीं की गई है तो समुचित समय के भीतर उसका अनुपालन करने में असफल रहा है।

(4) न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अन्तर्गत पारित कोई भी आदेश ऐसे आदेशों के अध्यधीन होगा जो धारा 37 की उपधारा (2) के खंड के अन्तर्गत की गई अपील पर न्यायालय द्वारा पारित किए जाएं।"

2.19 विवाद के सार पर लागू कानून: धारा 28 में संशोधन का प्रस्ताव किया गया।

धारा 28 के अन्तर्गत प्रश्न यह है कि (एक) जब सभी पक्षकार सहमत हों कि विवाद के सार पर लागू होने वाला कानून विदेशी होगा, (दो) यदि पक्षकार उक्त प्रश्न को किसी संस्था को निर्दिष्ट करते हैं तो क्या यह कहा जा सकता है कि विवाद पर लागू होने वाला कानून विदेशी कानून होगा?

1996 के अधिनियम की धारा 2(6) के अन्तर्गत जो कि मॉडल विधि की धारा 2(घ) के अनुरूप है (जिसका धारा 20(1) के अन्तर्गत की गयी हमारी चर्चा में उल्लेख किया गया है), पक्षकार संस्था से धारा 28 के अन्तर्गत आने वाले मामलों का विनिश्चय करने के लिए नहीं कह सकते। धारा 2(6) से जिसके दायरे से धारा 28 बाहर है, यह स्पष्ट है, इसलिए पक्षकार संस्था को ऐसा कोई मामला निर्दिष्ट नहीं कर सकते जो विवाद के सार पर लागू होने वाले कानून के बारे में है। स्पष्ट है कि यदि पक्षकार लागू होने वाले कानून का विनिश्चय करने के लिए मामला संस्था को निर्दिष्ट भी कर दें तो वह मॉडल विधि के अनुच्छेद 2(घ) तथा 1996 के अधिनियम की धारा 2(6) को देखते हुए ऐसा करने से इंकार भी कर सकती है। वस्तुतः डा० पी०सी० राव ने 1996 के अधिनियम पर अपनी समीक्षा में (देखिए पृष्ठ 47) में स्पष्ट रूप से यह कहा था कि विवाद के सार पर लागू होने वाले कानून से संबंधित ऐसा कोई भी प्रश्न विनिश्चय के लिए किसी तीसरे पक्ष या किसी संस्था को निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता। इससे दूसरा मुद्दा समाप्त हो जाता है।

जहां तक पहले मुद्दे का संबंध है, उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम यह मानकर चलते हैं कि पक्षकार इस बात के लिए सहमत हो गए थे कि संविदा पर विदेशी कानून लागू होगा। इस आधार पर हम प्रश्न पर विचार करेंगे कि क्या 1996 के अधिनियम के अन्तर्गत पक्षकार ऐसा कोई करार कर सकते थे?

हम इस समस्या पर कानून के सामान्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर तथा धारा 20(1) के अधीन की गई हमारी चर्चा में निकाले गए निष्कर्षों के आधार पर विचार कर सकते हैं।

सामान्य सिद्धान्तों के आधार के बारे में प्रमुख लेखकों ने कहा है कि चूंकि एक ही देश के ऐसे नागरिकों के बीच जिन्होंने उस देश में कार्यों के निष्पादन के लिए करार किया है, इस बात के लिए सहमति पर पहुंचने की अनुमति नहीं है कि उस देश के कानून से भिन्न कानून उस संविदा पर लागू होगा।

माध्यस्थम के बारे में रसैल ने निम्नलिखित बात कही है (देखिए पैरा 2.0 90)

"सामान्यत: इंग्लैण्ड और वेल्स में दो पक्षकारों के बीच माध्यस्थम के मामले सामान्यत: लागू होने वाले कानून की पसन्द का मुद्दा उठता ही नहीं, जब तक अन्य कोई उपबंध न हो, माध्यस्थम सब तरह से इंग्लिश विधि के अध्यधीन होगा। परन्तु इस तरह का मुद्दा प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में उठता है और इसका मूलभूत महत्व हो सकता है।"

यहां सब तरह से शब्द महत्वपूर्ण है और इनमें माध्यस्थम के करार पर लागू होने वाले कानून, मुख्य संविदा के सार और माध्यस्थम अधिकरण तथा न्यायालय के सामने की प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है।

रेडफर्न और हन्टर का कहना है (देखिए पैरा 2.03)

"देशी माध्यस्थम से विपरीत अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में सामान्यत: एक से अधिक कानूनी व्यवस्था या कानूनी नियम अन्तर्ग्रस्त होते हैं।"

इसलिए, यदि यह अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम का मामला नहीं है तो पक्षकारों के बीच करार द्वारा कानून की छांट का कोई प्रश्न ही नहीं है। "छांट" शब्द का मतलब है कि एक से अधिक कानूनी व्याख्या या कानूनी नियम लागू होते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्य के आधार पर और कानून के सामान्य सिद्धान्तों को देखते हुए, यदि भारत में निष्पादित किए जाने वाले किसी कार्य के लिए भारत में की गई किसी संविदा के संबंध में दो भारतीय राष्ट्रिकों के बीच माध्यस्थम हुआ है तो उस पर केवल भारतीय कानून लागू होगा, न कि विदेशी कानून।

विकल्प के तौर पर हम स्थिति पर, धारा 20 के अन्तर्गत माध्यस्थम के स्थान के बारे में धारा 20(1) के अन्तर्गत निकाले गए निष्कर्षों के आधार पर विचार करेंगे। हम यह पता लगाने का प्रयास करेंगे कि क्या धारा 28 में प्रयुक्त इन शब्दों में कि "जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में है, जोकि उक्त धारा के प्रारम्भ में ही प्रयोग किए गए हैं, आधारभूत रूप से कोई गलत बात है। उक्त शब्दों के प्रयोग से वस्तुत: यह आभास होता है कि दो भारतीय राष्ट्रिकों के बीच के इस तरह के पूरी तरह देशी माध्यस्थम के मामले में विकल्प विद्यमान है जिससे वे भारत के बाहर माध्यस्थम के स्थान का चयन कर सकते हैं।

उक्त अधिनियम की धारा 28 इस प्रकार है:—

"धारा 28 – विवाद के सार को लागू नियम:—

(1) जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में स्थित है —

(क) किसी अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम से भिन्न किसी माध्यस्थम में माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम के लिए सौंपे गए विवाद का विनिश्चय, भारत में तत्समय प्रवृत्त मूल विधि के अनुसार करेगा;

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम में—

(i) माध्यस्थम अधिकरण, विवाद का विनिश्चय विवाद के सार को लागू, पक्षकारों द्वारा अभिहित विधि के जो नियमों के अनुसार करेगा;

(ii) पक्षकारों द्वारा किसी देश विशेष की विधि या विधिक प्रणाली के किसी अभिधान का, जब तक कि अन्यथा अभिव्यक्त न हो, यह अर्थ लगाया जाएगा कि वह प्रत्यक्षत: उस देश की मौलिक विधि के प्रति न कि उसके विधि-संघर्ष नियमों के प्रति निर्देश है;

(iii) पक्षकारों द्वारा उपखण्ड (क) के अधीन विधि का कोई अभिदान न करने पर, माध्यस्थम अधिकरण उस विधि के नियमों को लागू करेगा जिसे वह विवाद की सभी विद्यमान परिस्थितियों में समुचित समझे।

(2).....।

(3)..... ।''

धारा 28 के बारे में डा० पी० सी० राव की समीक्षा में बताया गया है:

''धारा 28 विवाद के सार पर लागू होने वाले नियमों को अधिकथित करती है। यह केवल उस समय लागू होती है जबकि माध्यस्थम का स्थान भारत में हो, चाहे वह देशी माध्यस्थम या अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम नियम 2(6) के अन्तर्गत पक्षकारों को दी गई स्वतंत्रता धारा 28 के अधीन पक्षकारों को उपलब्ध नहीं है।''

हम धारा 20(1) के अन्तर्गत की गई अपनी चर्चा में धारा 20(1) के बारे में डा० पी० सी० राव की टिप्पणी (पृष्ठ 83) का उल्लेख पहले ही कर चुके हैं। उसमें बताया गया था कि भारतीय राष्ट्रिकों के बीच के पूरी तरह देशी माध्यस्थम के मामले में, माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर नहीं हो सकता। परन्तु ऊपर उद्धृत पैरा में (पृष्ठ 96-97) में प्रयुक्त शब्द ''यह केवल उसी समय संभव है जबकि माध्यस्थम का स्थान भारत में है चाहे वह देशी माध्यस्थम हो।'' यह आभास होता है कि भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी माध्यस्थम के मामले में माध्यस्थम का स्थान विकल्प के रूप में भारत के बाहर हो सकता है। लेकिन डा० पी० सी० राव की टिप्पणी (पृष्ठ 83) के आधार पर धारा 20(1) के अन्तर्गत की गई हमारी चर्चा से एक बार यह स्पष्ट हो जाने कि भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी माध्यस्थम के मामले में, धारा 20(1) के अन्तर्गत माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर नहीं हो सकता, यह स्पष्ट है कि इस पुस्तक के पृष्ठ 96-97 पर की गई जो टिप्पणियां ऊपर उद्धृत की गई है, उन्हें उस पृष्ठभूमि में समझना आवश्यक है। मेरे विचार से धारा 28 का खण्ड (क) इन शब्दों से शासित नहीं हो सकता है कि जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में है। क्योंकि इन शब्दों से यह आभास होता है कि भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी माध्यस्थमों के संबंध में दूसरा विकल्प यानी माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर भी हो सकता है। इस संदर्भ में हम धारा 28(1) (क) के बारे में डा० पी० सी० राव की टिप्पणी के एक पैरे (पृष्ठ 97) का उल्लेख करना चाहेंगे जहां लेखक कहता है कि मॉडल विधि में धारा 28(1) (क) जैसा कोई खण्ड नहीं है। स्पष्ट है कि उस मॉडल विधि में जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के बारे में उपबंध किए गए है, धारा 28 के खण्ड (1) (क) जैसा कोई खण्ड नहीं रखा गया है जो पूरी तरह देशी माध्यस्थम के बारे में है। इस टिप्पणी का उक्त पैरा (पृष्ठ 97) इस प्रकार है:-

''खण्ड (क) (उपधारा (1) के) में यह उपबंध किया गया है कि देशी माध्यस्थम में माध्यस्थम अधिकरण से यह अपेक्षा की जाती है कि वह विवाद का विनिश्चय भारत की अधिष्ठायी विधि के अनुसार करे। इस संबंध में पक्षकारों तथा अधिकरण के लिए कोई विकल्प नहीं है। चूंकि मॉडल विधि अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम के बारे में है, अतः उसमें धारा 28 की उपधारा (1) जैसी किसी उपधारा की व्यवस्था नहीं है।''

इस प्रकार चाहे वह कानून के सामान्य सिद्धान्तों के आधार पर हो या हमारे निष्कर्षों के आधार पर, जब हम धारा 20(1) पर विचार करते है तो ''जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में है'' शब्द धारा 28(1) (क) के प्रारम्भ में रखे जाने की अनुमति नहीं दी जा सकती ताकि वह भारत के राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी माध्यस्थम पर लागू हो सके।

अतः यह प्रस्ताव किया जाता है कि धारा 28 के प्रारम्भिक भाग से ''जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में है'' शब्दों का लोप कर दिया जाए ताकि वे शब्द उपधारा (1) (क) को शासित न करें तथा भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी माध्यस्थम से संबंधित उक्त उपधारा (1) (क) के प्रयोजन के लिए इन शब्दों से यह आभास न हो कि पक्षकार विकल्प के तौर पर माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर भी चुनने के लिए सहमत हो सकते हैं। यह प्रस्ताव किया जाता है कि ''जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में है'' शब्दों को केवल ''भारत में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम'' से संबंधित उपधारा 28(1) (ख) तक सीमित रखा जाए।

2.19.1 धारा 2 की उपधारा के प्रस्तावित खण्ड क्रमशः (5ख) तथा (च) में ''अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम'' और ''अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम'' शब्दों की प्रस्तावित परिभाषाओं को देखते हुए यह जरूरी हो जाता है कि धारा 28 की उपधारा (1) में भी औपचारिक रूप से संशोधन किया जाए। तदनुसार मूल अधिनियम की धारा 28 की उपधारा (1) के खण्ड (क) और (ख) में ''अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम'' शब्दों के स्थान पर ''वाणिज्यिक माध्यस्थम'' (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं) शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे।

2.19.2 अतः यह प्रस्ताव किया जाता है कि धारा 28 की विद्यमान उपधारा (1) के स्थान पर उपधारा (1) और (1क) प्रतिस्थापित की जाएँ जो इस प्रकार हों:

धारा 28 "विवाद के सार पर लागू होने वाले नियम

"(1) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं) से भिन्न किसी माध्यस्थम को सौंपे गए विवाद का विनिश्चय भारत के तत्समय प्रवृत्त मूल विधि के अनुसार करेगा।

(1क) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं), जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में है–

(i) माध्यस्थम अधिकरण विवाद का विनिश्चय विवाद के सार को लागू, पक्षकारों द्वारा अभिहित विधि नियमों के अनुसार करेगा;

(ii) देश में दिए गए कानून अथवा विधि व्यवस्था को पक्षकारों द्वारा दिए गए किसी भी पदनाम का अर्थान्वयन जब तक अन्यथा व्यक्त न किया गया हो, सीधे उस देश की अभिज्ञायी विधी के रूप में उल्लेख करके किया जाएगा, न कि विधि नियमों के विरोधाभासी के रूप में उल्लेख करके।

(iii) पक्षकारों द्वारा खण्ड (i) के अधीन विधि का कोई अभिधान न करने पर, माध्यस्थम अधिकरण उस विधि के नियमों को लागू करेगा जिसे वह विवाद की सभी विद्यमान परिवर्ती परिस्थितियों में समुचित समझे।"

हम प्रस्ताव करते हैं कि जहां लम्बित कार्यवाही की स्थिति में माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति नहीं की गई है वहां, जैसाकि संशोधनकारी अधिनियम की धारा 32 में बताया गया है, संशोधित धारा को एक सीमा तक भूतलक्षी बनाया जाना चाहिए।

2.20.1 अल्पसंख्यक मत को पंचाट के साथ जोड़ा जाए: धारा 29

(1) धारा 29 की उपधारा में माध्यस्थम अधिकरण के विनिश्चय का उल्लेख किया गया है जहां उसमें एक से अधिक मध्यस्थ हों। विनिश्चिय बहुमत के द्वारा किया जाना चाहिए।

जैसाकि परामर्शी-पत्र (उपाबंध-II) में बताया गया है, कानून यह है कि अल्पमत के किसी विनिश्चय को पंचाट का अंग नहीं माना जाता। लेकिन यह सुझाव दिया गया था कि बहुमत के पंचाट के साथ अल्पमत का दृष्टिकोण भी संलग्न किया जाए। इससे पक्षकार या न्यायालय विमत के कारणों के बारे में जान सकेंगे। इस बारे में सर्वसम्मति थी कि इस तरह का उपबंध जोड़ा जा सकता है।

अल्पसंख्यक सदस्य राय में अनुचित रूप से विलम्ब न कर दे इसलिए धारा 29 में 30 दिन की समय सीमा का उपबंध करने का प्रस्ताव है।

ऐसी किसी स्थिति जहां किसी माध्यस्थम अधिकरण में दो से अधिक सदस्य हों और उन सबकी राय एक दूसरे से भिन्न हो, वहां माध्यस्थम अधिकरण की बहुसंख्यक राय को स्पष्ट रूप से बताना संभव नहीं होता। तब माध्यस्थम अधिकरण के पीठासीन मध्यस्थ की राय को ही माध्यस्थम अधिकरण का पंचाट माना जाता है। इस प्रकार का उपबंध आईसीएसी के नियमों में अन्तर्विष्ट है तथा हमारा प्रस्ताव है कि इसी तरह का एक उपबंध धारा 29 में जोड़ा जाए।

2.20.2 इस प्रकार मूल अधिनियम की धारा 29 में, उपधारा (1) के पश्चात निम्नलिखित परन्तुक अन्तःस्थापित किया जाएगा:–

"परन्तु जहां बहुमत नहीं है, वहां पंचाट माध्यस्थम अधिकरण के पीठासीन मध्यस्थ द्वारा दिया जाएगा।"

उपधारा (2) में, निम्नलिखित उपधारा अन्तःस्थापित की जाएगी:–

"अल्पसंख्यक विनिश्चय, यदि अन्य सदस्यों के विनिश्चय की प्राप्ति के 30 दिन के भीतर उपलब्ध करा दिया जाता है तो पंचाट के साथ संलग्न किया जाएगा।"

2.21.1 <u>भारत में माध्यस्थम कार्यवाही (अन्तर्राष्ट्रीय और पूरी तरह से देशी दोनों) पूरी करने के लिए समय-सीमाएं अधिकथित की गई है</u>

न्यायालय में समयावधि बढ़ाए जाने के लिए दिए गए आवेदन पर निर्णय होने तक माध्यस्थम कार्यवाही चलती रहेगा: प्रस्तावित धारा 29क

भारत में माध्यस्थम पंचाटों में अत्यधिक विलम्ब तथा उसके जुड़े खर्चों को देखते हुए इस बात का अत्यधिक महत्व हो गया है। 1940 के अधिनियम के अन्तर्गत, पंचाट पारित करने के लिए निर्देशन करने की तारीख से चार महीने का उपबंध किया गया था। (पहली अनुसूची, पैरा 3) शर्त यह थी कि पक्षकारों ने न्यायालय से समयावधि बढ़ाने का अनुरोध किया है। यह बात केवल पूरी तरह से देशी माध्यस्थमों पर लागू होती थी लेकिन वर्तमान अधिनियम में पूरी तरह देशी एवं अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के लिए इसका लोप कर दिया गया है। इस लोप किए जाने का एकमात्र कारण यह प्रतीत होता है कि न्यायालय में समय सीमा-बढ़ाए जाने के लिए बार-बार दिए जाने वाले आवेदनों के कारण पहले ही होने वाले लम्बे विलम्ब में और वृद्धि हो जाती है। लेकिन इसके साथ ही नए अधिनियम की नीति यह नहीं है कि पंचाट को बिना किसी समय-सीमा के विलम्बित किया जा सकता है।

लेकिन समय बढ़ाए जाने के उपबंध का लोप किए जाने और फलतः उसकी कोई समय-सीमा न होने के कारण एक अन्य समस्या यह पैदा हो गई है कि 1996 के अधिनियम के अधीन भी माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष भी पंचाट विलम्बित हो रहे हैं। एक विचार यह है कि किसी पंचाट को पारित करने की समय-सीमा के संबंध में कोई उपबंध न होने की वजह से ऐसा हो रहा है।

1940 के पुराने अधिनियम की अनुसूची-I के खण्ड 3 के अन्तर्गत पंचाट, माध्यस्थमों के "निदेश पर प्रविष्ट" होने के या माध्यस्थम के किसी पक्षकार से लिखित में नोटिस द्वारा कार्यवाही करने के लिए कहे जाने के पश्चात चार महीने के भीतर या बढ़ी हुई ऐसी अवधि के भीतर जैसाकि न्यायालय अनुमति दे, पारित किया जाना था।

पुराने अधिनियम की धारा 28(1) के कारण न्यायालय समय-समय पर अवधि बढ़ा सका। धारा 28 की उपधारा (2) में यह कहा गया है कि किसी माध्यस्थम करार में कोई ऐसा उपबंध जिसके द्वारा मध्यस्थ (या निर्णायक), करार के सभी पक्षकारों की सहमति के सिवाय, पंचाट करने के लिए समय बढ़ सकता है, शून्य और निष्प्रभावी होगा।

दूसरे शब्दों में पक्षकार, सहमति से समय बढ़ा सकते हैं लेकिन मध्यस्थ नहीं बढ़ा सकते। यह स्थिति पुराने अधिनियम के अन्तर्गत थी।

2.21.2 विधि आयोग ने माध्यस्थम अधिनियम, 1940 संबंधी अपनी 76वीं रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ-साथ यह सिफारिश की थी कि धारा 28 के नीचे एक परन्तुक अन्तःस्थापित किया जाना चाहिए ताकि यह उपबंध किया जा सके कि जब तक कि न्यायालय को ऐसे विशेष और पर्याप्त कारणों से जो लिखित में दर्ज किए जाएंगे, यह समाधान नहीं हो जाता कि समय बढ़ाना आवश्यक है, तब तक ऐसा समय बढ़ाने की कोई अनुमति नहीं दी जाएगी जिसके द्वारा पंचाट देने के लिए माध्यस्थम के "निर्देश पर प्रवेश" बाद एक वर्ष से अधिक समय तक के लिए अवधि बढ़ायी जा सके। तदनुसार धारा 28 के नीचे निम्नलिखित परन्तुक अन्तःस्थापित करने की सिफारिश की गई थी:

> "परन्तु जब तक कि न्यायालय को ऐसे विशेष और पर्याप्त कारणों से जो लिखित में दर्ज किए जाएंगे यह समाधान नहीं हो जाता है कि समय बढ़ाना आवश्यक है तब तक ऐसा समय बढ़ाने की कोई अनुमति नहीं दी जाएगी जिसके द्वारा पंचाट देने के लिए माध्यस्थम के "निर्देश पर प्रवेश" के बाद, एक वर्ष से अधिक समय तक के लिए अवधि बढ़ायी जा सके।"

76वीं रिपोर्ट में भी पैरा 11.12 में यह सिफारिश की थी कि "निर्देश पर प्रवेश" शब्दों के अर्थ के बारे में दिए गए निर्णय से संबंधित विवाद का समाधान करने के लिए, निम्नलिखित "स्पष्टीकरण" जोड़ा जाए:

> <u>स्पष्टीकरण:</u> इससे पैरा के प्रयोजनों के लिए, मध्यस्थों को, पक्षकारों को माध्यस्थम के प्रयोजनों के लिए मध्यस्थों के समक्ष उपस्थित होने के लिए उनके द्वारा नियत की गयी पहली तारीख को "निर्देश पर प्रवेश" किया माना जाएगा।"

परन्तु यह जरूरी नहीं है कि 1996 के अधिनियम की धारा 21 के उपबंध को देखते हुए माध्यस्थम

कार्यवाही के ''प्रारम्भ'' शब्द के अर्थ को परिभाषित करने में उपर्युक्त तरीके को अपनाया जाए क्योंकि जिस तारीख को विवाद को निर्दिष्ट करने का अनुरोध किया जाता है, वह प्रतिवादी द्वारा प्राप्त होती है।''

2.21.3 प्रश्न यह है कि क्या कोई समय-सीमा नियत की जाए। वस्तुतः आई॰सी॰सी॰ नियमों के अन्तर्गत छः महीने की समय-सीमा अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के लिए विहित की गई है लेकिन मॉडल विधि कोई समय सीमा विहित नहीं करती।

आई॰सी॰सी॰ नियमों का अनुच्छेद 24(1) व पुराने नियमों के अनुच्छेद 18(1) को प्रतिस्थापित करता है, उसके अन्तर्गत निर्देश की शर्तों पर अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम न्यायालय द्वारा हस्ताक्षर या अनुमोदन की तारीख से 6 महीने की अवधि निश्चित की गई थी। परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम न्यायालय ''माध्यस्थ के तर्कसंगत अनुरोध के अनुसरण में या यदि आवश्यक हो तो स्वयं अपनी पहल पर, यदि वह विनिश्चय करता है कि ऐसा करना जरूरी है तो वह समय-सीमा बढ़ा सकता है (अनुच्छेद 24(2) जो जहां अत्यधिक विलम्ब के लिए मध्यस्थ उत्तरदायी है वहां अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम न्यायालय मध्यस्थों के प्रतिस्थापन से संबंधित नियमों के उन उपबंधों का सहारा ले सकता है जो वहां लागू होते हैं जहां मध्यस्थ अनुबद्ध समय-सीमाओं के अन्तर्गत (देखिए 1998 के आई॰सी॰सी॰ नियमों का अनुच्छेद 12(2) जो पिछले नियमों के अनुच्छेद 2(11) को प्रतिस्थापित करता है) अपने कर्त्तव्यों का निष्पादन करने में असफल रहते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के लिए कई देशों जैसे फ्रांस, डच, स्वीडन तथा स्विस की विधियों के अन्तर्गत कोई अवधियां निश्चित की गई हैं (निःसंदेह 1999 से पहले स्वीडन और बेल्जियम की विधियों में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के लिए 6 महीने का उपबंध किया गया है)।

इंग्लिश अधिनियम, 1999 की धारा 14(2) के अन्तर्गत न्यायालय को यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि अन्यथा पर्याप्त न्याय किया जाएगा, पंचाट करने के लिए समय बढ़ाने की अनुमति है।

यह भी सुझाव दिया गया था कि वकीलों तथा मध्यस्थों दोनों के लिए प्रत्येक बैठक के लिए फीस के अनुबंधों के कतिपय तरीकों की वजह से भी असामान्य विलम्ब हुए। यह उपयुक्त समय है कि कम से कम दो वर्ष की समाप्ति पर न्यायालय द्वारा जांच की व्यवस्था होनी चाहिए। विधि आयोग की 76वीं रिपोर्ट में न्यायालय के लिए समय बढ़ाने के लिए अधिकतम अवधि निश्चित करने की सिफारिश की गई थी। लेकिन हम कोई ऐसी समय-सीमा निश्चित नहीं करना चाहते। समय बढ़ाने की शक्ति न्यायालय को दी जा सकती है तथा उसे सख्त बनाया जा सकता है ताकि अधिक तेजी से पंचाट पारित किए जा सकें। वास्तव में, कई देशों में उपबंध बिना कोई ऊपरी समय-सीमा निश्चित किए ऐसी अवशिष्टीय शक्ति न्यायालय को प्रदान करने का है।

आयोग का विचार यह है कि आजकल माध्यस्थम में लम्बे विलम्ब और उसमें अंतर्ग्रस्त भारी व्यय को देखते हुए भारत में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम तथा में भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी माध्यस्थम के लिए समय-सीमा आवश्यक है। यह समय-सीमा और अधिक यथार्थपरक हो सकती है लेकिन वह सीमा न्यायालय द्वारा बढ़ायी जा सकती है। आयोग को पता चला है कि एक ही माध्यस्थम में पांच साल से चौदह साल तक का विलम्ब हुआ। भारत के उच्चतम न्यायालय ने भी विलम्ब के इन मामलों को माध्यस्थम अधिकरण निर्दिष्ट कर दिया है। यहां मुद्दा यह है कि ये विलम्ब उन मामलों में भी हो रहे हैं जहां माध्यस्थम प्रक्रिया के दौरान न्यायालय ने कोई हस्तक्षेप नहीं किया। समय-सीमा हटाए जाने के अपनी प्रतिकूल परिणाम हुए हैं। यदि समय बढ़ाया जाना, समय-सीमा मानलो एक महीना विहित करने वाले उपबंध का लोप करने के कारणों में से एक हो तो समय बढ़ाने के लिए किए गए आवेदनों के शीघ्र निपटान के लिए उपबंध किया जा सकता है। पक्षकारों को अवधि एक वर्ष बढ़ाने की अनुमति दी जा सकती है। <u>समय बढ़ाने के लिए दिए गए आवेदन पर निर्णय होने तक हम प्रस्ताव करते हैं कि माध्यस्थम की कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी जाए।</u>

वास्तव में धारा 29क (4) इस प्रकार है:-

> ''(4) उपधारा (3) के अन्तर्गत न्यायालय के समक्ष समय बढ़ाने के लिए आवेदन पर विचार किए जाने तक, माध्यस्थम की कार्यवाही माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष जारी रहेगी और न्यायालय माध्यस्थम की कार्यवाही के किसी स्थगन की अनुमति नहीं देगा।''

2.21.4 यह प्रस्ताव किया जाता है कि विधि आयोग की 76वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिश को यह संशोधन करके लागू किया जाए कि माध्यस्थों के निर्देश पर प्रवेश की तारीख के कम से कम एक वर्ष के भीतर

पंचाट पारित किया जाना चाहिए। प्रारम्भिक अवधि एक वर्ष होगी। उसके पश्चात पक्षकार आपसी सहमति से इस अवधि को अधिकतम और एक वर्ष तक के लिए बढ़ा सकते हैं। एक वर्ष और आपसी सहमति से तय की गई अवधि के बाद, न्यायालय को अवधि बढ़ाने की अनुमति देनी होगी। अवधि बढ़ाने की अनुमति देते समय न्यायालय लागत अधिरोपित कर सकेगा तथा अधिकरण द्वारा भविष्य में अपनाई जाने वाली नहीं प्रक्रिया उपदर्शित कर सकेगा। इसलिए एक और परन्तुक यह होगा कि उपर्युक्त अवधि से आगे और समय बढ़ाये जाने की अनुमति न्यायालय द्वारा दी जानी चाहिए। हम यह सुझाव नहीं देना चाहते कि जैसाकि विधि आयोग ने पहले सिफारिश की थी, समय-सीमा बढ़ाए जाने की शक्ति पर कोई सीमा होनी चाहिए। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां न्यायालय यह अनुमान करे कि 24 महीने से अधिक समय जरूरी है। ऊपरी सीमा निश्चित करने का काम न्यायालय पर छोड़ा जा सकता है। यह उपबंध किया जाना चाहिए कि 24 महीने से आगे न तो सहमति से पक्षकार और न ही माध्यस्थम अधिकरण समयावधि बढ़ा सकेगा। इस संबंध में न्यायालय का आदेश आवश्यक होगा। लेकिन यह सुनिश्चित करने के लिए कि समय बढ़ाने के लिए दिए गए आवेदनों का निपटारे में से माध्यस्थम के कार्य में बाधा न पड़े, हमारा प्रस्ताव है कि आवेदन पत्र का निपटारा होने तक माध्यस्थम की प्रक्रिया को जारी रखने की अनुमति दी जाए।

2.21.5 एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यदि प्रारम्भिक एक वर्ष की अवधि तथा पक्षकारों की सहमति से निर्धारित अवधि (अधिकतम एक वर्ष और के साथ) और न्यायालय द्वारा बढ़ाए गए समय की अवधि से अधिक विलम्ब होने की स्थिति में माध्यस्थम की कार्यवाही समाप्त करने का कोई चुक नहीं है। हमारा प्रस्ताव है कि पंचाट पारित होने तक कार्यवाही जारी रखी जानी चाहिए। इस तरह कार्यवाही समाप्त कर देने से वस्तुतः काफी प्रमाण एकत्रित होने के पश्चात, पक्षकारों के पैसे और समय की बर्बादी होगी। वास्तव में यदि कार्यवाही को समाप्त ही करना है तथा दावेदार को अलग से वाद दायर करना है तो यह भी जरूरी हो जाएगा कि यदि दावेदार का दोष नहीं है तो ऐसी स्थिति से निपटने के लिए धारा 43(5) में संशोधन करके मध्यस्थ की कार्यवाही में लगने वाले समय को शामिल न किया जाए। लेकिन आयोग का विचार है कि इस समस्या का इससे बेहतर हल है।

अतः आयोग का प्रस्ताव है कि यह सुनिश्चित किया जाए कि उपर्युक्त विलम्ब होने के बाद भी माध्यस्थम पंचाट अन्ततोगत्वा पारित किया जाए। आगे और विलम्ब न हो, उसके लिए आयोग का प्रस्ताव है कि प्रारम्भिक एक वर्ष की अवधि तथा उसके बाद पक्षकारों की सहमति से यह अवधि (अधिकतम एक वर्ष) समाप्त हो जाने के पश्चात माध्यस्थम की कार्यवाही लगभग निलम्बित हो जाएगी और जैसे ही कार्यवाही का कोई पक्षकार समयावधि बढ़ाने के लिए न्यायालय में आवेदन करेगा तथा कार्यवाही पुनः आरम्भ हो जाएगी। यदि पक्षकारों में से कोई भी आवेदन नहीं करता है तो भी माध्यस्थम अधिकरण न्यायालय से समयावधि बढ़ाए जाने की मांग कर सकता है। आवेदन दाखिल किए जाने के क्षण से ही माध्यस्थम की कार्यवाही जारी रखी जा सकती है। जब न्यायालय अवधि बढ़ाने के आवेदन पर विचार करेगा तो वह लागत के किसी आदेश के अध्यधीन अवधि बढ़ाने की अनुमति देगा तथा माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष आगे प्रक्रिया के लिए समय-सूची निश्चित करेगा। प्रारम्भ में वह समय बढ़ाए जाने और माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष समय-सीमा निश्चित करेगा और आदेश पारित होने तक और आगे आदेश पारित करता रहेगा। इस प्रक्रिया से यह सुनिश्चित किया जा सकेगा कि अन्ततोगत्वा पंचाट पारित किया जाए।

2.21.6 अतः आयोग का प्रस्ताव है कि नई धारा-धारा 29क में जो निम्नलिखित होगी, इस तरह की प्रक्रिया विहित की जाए:—

मूल अधिनियम की धारा 29 के पश्चात निम्नलिखित धारा अन्तःस्थापित की जाएगी:—

कार्यवाहियों को तेज करना तथा पंचाट करने के लिए समय-सीमा

"29क (1) माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम की कार्यवाही आरम्भ के बाद एक वर्ष के भीतर या बढ़ाई गई ऐसी अवधि के भीतर जो उपधारा (2) से (4) में विनिर्दिष्ट की गई है, अपना पंचाट दे देगा।

(2) पक्षकार, सहमति से, उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि को और एक वर्ष से अनधिक अवधि तक बढ़ा सकेंगे।

(3) यह पंचाट उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि और उपधारा (2) में पक्षकारों की सहमति से बढ़ाई गई अवधि के भीतर नहीं दिया जाता, तो माध्यस्थम की कार्यवाही उपधारा (4) से (6) के उपबंधों के अध्यधीन तब तक विलम्बित रहेगी जब तक कि माध्यस्थम के किसी पक्षकार द्वारा न्यायालय को समय बढ़ाने के लिए आवेदन नहीं किया जाता या जहां पक्षकारों में से कोई भी पक्षकार पूर्वोक्त आवेदन नहीं करता जब तक कि माध्यस्थम अधिकरण द्वारा इस तरह का आवेदन नहीं किया जाता।

(4) उपधारा (3) के अन्तर्गत समय बढ़ाने के लिए आवेदन दाखिल किए जाने पर, माध्यस्थम की कार्यवाही का विलम्बन समाप्त हो जाएगा और उपधारा (3) के अधीन न्यायालय के समक्ष समय बढ़ाने के लिए किए गए आवेदन पर विचार किए जाने तक, माध्यस्थम की कार्यवाही माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष जारी रहेगी तथा न्यायालय माध्यस्थम कार्यवाही के बारे में कोई स्थगन प्रदान नहीं करेगा।

(5) न्यायालय, उपधारा (3) के अन्तर्गत समय बढ़ाने के लिए किए गए ऐसे आवेदन पर, चाहे उपर्युक्त पंचाट देने का समय समाप्त हो गया हो या नहीं और चाहे पंचाट दिया गया हो या नहीं, उपधारा (1) में निर्दिष्ट अवधि और उपधारा (2) के अन्तर्गत पक्षकारों की सहमति से नियत की गई अवधि से आगे पंचाट देने के लिए समयावधि बढ़ाएगा।

(6) उपधारा (5) के अन्तर्गत समय बढ़ाते समय न्यायालय, माध्यस्थम अधिकरण द्वारा अपनाई जाने वाली भावी प्रक्रिया या लागत के बारे में आदेश निम्नलिखित बातों को ध्यान में रख कर पारित करेगा:–

(क) पहले ही किए गए कार्य का परिणाम;

(ख) विलम्ब के लिए कारण;

(ग) पक्षकारों या पक्षकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी व्यक्ति का आचरण;

(घ) रीति जिससे माध्यस्थम अधिकरण द्वारा कार्यवाही संचालित की गई;

(ङ) और अंतर्ग्रस्त कार्य;

(च) पक्षकारों द्वारा माध्यस्थम की फीस तथा खर्चों पर पहले ही व्यय की जा चुकी राशि;

(छ) कोई अन्य संगत परिस्थितियां;

और न्यायालय जब तक पंचाट पारित न कर दिया जाए, तब तक माध्यस्थम की प्रक्रिया को तेज करने के लिए समय-समय पर ऐसे आदेश पारित करेगा।

परन्तु न्यायालय द्वारा भावी कार्यवाहियों के बारे में पारित कोई भी आदेश ऐसे नियमों के अध्यधीन होगा जो उच्च न्यायालय द्वारा माध्यस्थम की कार्यवाही को तेज करने के लिए इस संबंध में बनाए जाएं।

(7) पक्षकार, सहमति होने पर भी, इस अवधि को उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि और उपधारा (2) में निर्दिष्ट अधिकतम अवधि से आगे और उक्त उपधाराओं में उपबंधित से अन्यथा के सिवाय नहीं बढ़ा सकते और किसी माध्यस्थम करार में या कोर्ट भी उपबंध जिसके द्वारा माध्यस्थम अधिकरण पंचाट करने के लिए समय और आगे बढ़ा सकता है, शून्य होगा और निष्प्रभावी हो जाएगी।

(8) उपधारा (5) के अंतर्गत समय बढ़ाए जाने के आदेशों में से पहला तथा उपधारा (6) के अंतर्गत यदि कोई निर्देश किए जाने हैं तो वे भी न्यायालय द्वारा प्रतिपक्ष पर तामील किए जाने की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर न्यायालय द्वारा पारित किए जाएंगे।"

इस प्रक्रिया को 1996 के अधिनियम के अंतर्गत न केवल भविष्य के माध्यस्थमों पर बल्कि 1996 के अधिनियम के अंतर्गत लंबित माध्यस्थमों और 1940 के अधिनियम के अंतर्गत लंबित माध्यस्थमों एवं त्वरित कार्यवाही माध्यस्थम पर भी लागू किए जाने का प्रस्ताव है। प्रस्तावित धारा 29क की उपधाराओं (4) से (8) तक के उपबंधों को 1996 के अधिनियम के अंतर्गत लंबित माध्यस्थमों पर लागू करने का प्रस्ताव है (देखिए संशोधनकारी अधिनियम की धारा 34)

2.22 धारा 30, विवादों का निपटारा: रजिस्ट्रीकरण और स्टाम्प शुल्क

यह धारा विवादों के निपटारे से संबंधित है। माध्यस्थम अधिकरण निपटारे को प्रोत्साहित करने के लिए माध्यस्थम कार्यवाही के दौरान किसी भी समय मध्यस्थता, सुलह और अन्य प्रक्रियाओं का उपयोग कर सकता है।

स्टाम्प और रजिस्ट्रीकरण संबंधी जिन कानूनों का माध्यस्थम कार्यवाही में निष्फलता करके अप्रत्यक्ष रूप से उल्लंघन किया गया है, उनके उल्लंघन के मामलों से निपटने के लिए कुछ संशोधनों का सुझाव दिया गया था। लेकिन आयोग यह महसूस करता है कि धारा 36 के अधीन पंचाटों को प्रवर्तित करने वाला न्यायालय ऐसे प्रश्नों पर विचार कर सकता है।

2.23 धारा 31(7)(ख) के अंतर्गत ब्याज: 18 प्रतिशत अधिकतम सीमा होगी—प्रस्ताव अस्वीकृत किया गया

अधिनियम की धारा 31(7)(ख) के अंतर्गत यह बताया गया है कि माध्यस्थम पंचाट द्वारा प्रदत्त किए जाने के लिए निर्देशित राशि जब तक कि पंचाट में अन्यथा निर्दिष्ट नहीं किया गया हो, पंचाट की तारीख से भुगतान की तारीख तक 18 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज लगेगा।

यह बताया गया है कि इस उपबंध से उन मामलों में बहुत कठिनाई हो रही है जहां ब्याज दर के बारे में ऐसे सभी मामलों में पंचाट में कुछ नहीं कहा गया है। ऐसे में 18 प्रतिशत ब्याज देय होगा। यह सुझाव दिया गया है कि 18 प्रतिशत की ऊपरी सीमा विहित करने के लिए धारा 31(7)(ख) में संशोधन किया जाना चाहिए।

धारा 31(7)(ख) में किया गया उपबंध इस प्रकार है:

"धारा 31(7)(ख)-एक माध्यस्थम पंचाट द्वारा संदाय की जाने वाली करनी निर्देशित राशि पर जब तक पंचाट अन्यथा निर्देशित नहीं करता तब तक संदाय की तिथि से पंचाट की तिथि तक प्रतिवर्ष 18 प्रतिशत की दर से ब्याज लगेगा।"

अतः जब तक पंचाट में अपेक्षाकृत कम दर निश्चित नहीं की गई हो जबकि पंचाट में कुछ नहीं कहा गया हो, 18 प्रतिशत की दर से ब्याज लगेगा। यह विशेष उपबंध है और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 34(2) के प्रतिकूल है जिसमें कहा गया है कि यदि किसी डिक्री में कुछ नहीं कहा गया है वहां डिक्री की तारीख से ब्याज इंकार किया गया माना जाता है।

धारा 31(7)(ख) में किया गया उपबंध स्वागत योग्य है और यदि यह उपबंध वहां न हो तो ऐसे पंचाट के मामले में जो पंचाट की तारीख के संदाय की तारीख से ब्याज के मामले में गौण है, तो जिस पक्षकार को माध्यस्थम के अंतर्गत संदाय करना है वह प्रसन्नतापूर्वक विलम्बकारी तरीके अपना कर ब्याज के संदाय से बच सकता है।

उपबंध के मूल स्वरूप को देखते हुए ब्याज की दर को मान कर यह कहना संभव नहीं है कि अधिकतम दर 18 प्रतिशत होगी। समुचित विचार के पश्चात आयोग ने यह अनुभव किया है कि इस दर को घटाकर 18 प्रतिशत से कम करने का कोई औचित्य नहीं है। इसलिए धारा 31(7)(ख) में कोई संशोधन आवश्यक नहीं है।

2.24.1 प्रति मूल माध्यस्थम रिकार्डों के रिकार्ड के प्रयोजनों के लिए न्यायालय में दाखिल की जाएगी और न्यायालय पंचाटों का रजिस्टर रखेगा: प्रस्तावित धारा 31क

रिकार्ड के प्रयोजन के लिए न्यायालय में पूरी तरह से देशी पंचाटों की प्रतियां औपचारिक रूप से दाखिल करने के लिए एक नई धारा 31क का प्रस्ताव किया गया है। यह भी प्रस्ताव किया गया है कि जिले में मूल अधिकारिता वाला प्रमुख न्यायालय या किसी नगर में प्रधान न्यायाधीश का न्यायालय ही पंचाट और माध्यस्थम रिकार्ड की प्रति दाखिल करने के प्रयोजन के लिए न्यायालय होगा। केवल इन्हीं न्यायालयों को इन पंचाटों का रजिस्टर रखना है। धारा 2(1)(5) के अंतर्गत मूल अधिकारिता वाले उच्च न्यायालय को शामिल कर लिए जाने पर भी हम नहीं समझते कि उच्च न्यायालय को पंचाट या माध्यस्थम के रिकार्ड की प्रतियां प्राप्त करनी चाहिए, न ही उसे रजिस्टर रखने की आवश्यकता है। उन मामलों में जहां मूल अधिकारिता वाले उच्च न्यायालय द्वारा दावे के धन संबंधी मूल्य के कारण धारा 121 के अंतर्गत किए गए निदेशों के अनुसरण में पंचाट पारित किया जाता है, वहां ऐसे मामले में पारित पंचाट को पूरी तरह प्रादेशिक अधिकारिता के आधार पर, न कि धन संबंधी अधिकारिता के आधार पर, उपर्युक्त प्रधान न्यायालय में फाइल किया जा सकता है। वास्तव में धारा 31क में इस आशय का एक स्पष्टीकरण जोड़े जाने का प्रस्ताव है कि जब कोई पंचाट पारित किया जाए चाहे वह धारा 8 के अंतर्गत किसी न्यायिक प्राधिकारी द्वारा किए गए निदेशों के अनुसरण में पारित किया गया हो या धारा 8क में निर्दिष्ट किसी न्यायालय द्वारा या पक्षकारों द्वारा अथवा त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के अनुसरण में या धारा 11 के अंतर्गत उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित किया गया हो, वहां ऐसे सभी पंचाटों की प्रतियां, यथास्थिति, उस जिले या नगर में उपर्युक्त प्रधान न्यायालयों में दाखिल की जानी चाहिए।

2.24.2 यह बताया गया है कि मूल रूप से पारित पंचाट का कोई रिकार्ड होना चाहिए और इसलिए पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित पंचाट की फोटो प्रति धारा 2(1)(5) में यथा परिभाषित न्यायालय के समक्ष (मूल अधिकारिता वाले उच्च न्यायालय के सिवाय) प्रत्येक पृष्ठ पर मध्यस्थ के हस्ताक्षर या आद्याक्षर सहित प्रस्तुत की जानी चाहिए। मध्यस्थों से प्राप्त पंचाटों का एक रजिस्टर न्यायालय द्वारा उसकी क्रम संख्या आदि रखा जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि पंचाट के सभी पृष्ठों पर विधिवत स्टाम्प लगा हो और उस पर न्यायालय के पीठासीन अधिकारी या न्यायालयों के प्रशासनिक अधिकारी के आद्याक्षर होने चाहिए। इससे पंचाटों की प्रामाणिकता सुनिश्चित की जा सकेगी और यथा पारित पंचाट की तारीख या विषय-वस्तु के संबंध में किसी भी प्रकार के विवाद से बचा जा सकेगा। न्यायालय द्वारा रखे जाने वाले रजिस्टर में दर्ज किए जाने वाले अन्य पहलुओं के बारे में केन्द्र सरकार नियम बना सकेगी। हमने त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के संबंध में अध्याय 11 तथा धारा 42 में इस आशय के उपबंध करने का प्रस्ताव किया है कि पंचाट की प्रतियां अनिवार्य रूप से धारा 2(1)(ङ) में निर्दिष्ट प्रधान न्यायालयों में दाखिल की जाएगी। धारा 8 या धारा 8क या धारा 11 या त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के अधीन निदेश के अनुसरण में पारित सभी पंचाटों को धारा 2(1)(ङ) के अंतर्गत प्रधान न्यायालय में दाखिल करना होगा चाहे निदेश धारा 11 के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा या धारा 8क के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय/उच्च न्यायालय द्वारा या त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के अंतर्गत उच्च न्यायालय द्वारा किया गया हो।

अतः यह प्रस्ताव किया जाता है कि यह बताते हुए धारा 31क जोड़ी जाए कि एक बार पंचाट दे दिए जाने पर मध्यस्थों में से प्रत्येक के द्वारा उस पंचाट की एक हस्ताक्षरित तथा प्रत्येक पृष्ठ पर विधिवत अधिप्रमाणिकृत प्रति न्यायालय में दाखिल की जाएगी। यहां चार प्रकार के पंचाटों को ध्यान में रखना होगा:-

(एक) न्यायिक प्राधिकारियों द्वारा धारा 8 के अंतर्गत किए गए निदेशों के अनुसरण में पंचाट पारित किए जा सकते हैं।

(दो) पंचाट उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा धारा 11 के अंतर्गत किए गए निदेशों के अनुसरण में पारित किए जा सकते हैं।

(तीन) पंचाट पक्षकारों द्वारा धारा 16 के अंतर्गत नियुक्त मध्यस्थों द्वारा न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना पारित किए जा सकते हैं।

(चार) पंचाट प्रस्तावित धारा 8क के अंतर्गत किसी भी न्यायालय द्वारा किए गए निदेशों के अनुसरण में पारित किए जा सकते हैं।

(पांच) धारा 43क के अंतर्गत किए गए त्वरित प्रक्रिया पंचाट।

इन सभी पंचाटों को, अपने मूल अधिकारिता के उच्च न्यायालय के सिवाय, धारा 2(1)(ङ) के अंतर्गत परिभाषित "न्यायालय" के समक्ष दाखिल किया जाएगा।

2.24.3 यह भी प्रस्ताव किया जाता है कि माध्यस्थम रिकार्ड को भी रिकार्डों की सूची के साथ न्यायालय में दाखिल किया जाए। रिकार्डों के संरक्षण के संबंध में न्यायालय के रिकार्ड पर लागू उपबंधों को इस प्रकार दाखिल किए गए माध्यस्थम रिकार्ड पर भी लागू किया जाएगा। "माध्यस्थम रिकार्ड" शब्द को भी धारा 31क(1) के नीचे पुरःस्थापित किए जाने के लिए प्रस्तावित "स्पष्टीकरण-II" के द्वारा स्पष्ट किए जाने का प्रस्ताव है:

> स्पष्टीकरण-III इस धारा के प्रयोजनों के लिए "माध्यस्थम रिकार्ड" में पक्षकारों द्वारा दाखिल किए गए दावे में हुई बहस, दस्तावेजी और मौखिक साक्ष्य, यदि कोर्ट में दर्ज किए गए हो, वादकालीन आवेदनों पर हुई बहस तथा उस पर किए गए आदेश, माध्यस्थम अधिकरण का कार्यवाही वृत्तांत तथा उससे संबंधित अन्य सभी दस्तावेज शामिल है।"

अतः लाभप्रद बात यह होगी यदि धारा 2(1)(ङ) के अंतर्गत निर्धारित न्यायालय अर्थात प्रधान जिला न्यायालय या प्रधान न्यायाधीश न्यायालय, नगर सिविल न्यायालय (लेकिन अपनी मूल अधिकारिता में उच्च न्यायालय नहीं) में रिकार्ड के प्रयोजन के लिए उस प्रादेशिक न्यायालय में पंचाट दाखिल किए जाते हैं जिसकी अधिकारिता में कोई वाद दाखिल किया गया होता यदि उसकी विषय-वस्तु एक वाद होती। इस बात किसी करार के अनुसरण में या धारा 11 या धारा 8 या धारा 8क के अंतर्गत मध्यस्थों की नियुक्ति के पश्चात किसी उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा पारित सभी पंचाटों पर लागू होता है।

2.24.4 मूल अधिनियम की धारा 31 के पश्चात निम्नलिखित प्रस्तावित धारा 31क अन्तःस्थापित की जाएगी:

पंचाट और माध्यस्थम के मूल रिकार्डों की प्रति को रिकार्ड तथा पंचाटों का रजिस्टर रखने के प्रयोजन के लिए न्यायालय में दाखिल करना:

"31क(1) माध्यस्थम पंचाट की, माध्यस्थम अधिकरण के सदस्यों द्वारा प्रत्येक पृष्ठ पर विधिवत हस्ताक्षरित फोटो प्रति तथा माध्यस्थम के मूल रिकार्डों को माध्यस्थम अधिकरण द्वारा, पंचाट किए जाने के तीस दिन के भीतर, मध्यस्थ रिकार्ड के दस्तावेजों की सूची के साथ न्यायालय में दाखिल किया जाएगा।

परन्तु जहां धारा 2 की उपधारा (1) के खण्ड (3) के अर्थ के अन्तर्गत उच्च न्यायालय ही समुचित न्यायालय है, वहां पंचाट, जिले में मूल अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय में या किसी नगर में मूल अधिकारिता वाले सिविल न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश के उस न्यायालय में, जिसके प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत माध्यस्थम की विषय-वस्तु स्थित हो (इसे इसमें इसके पश्चात इस धारा में उच्च न्यायालय के रूप में निर्दिष्ट किया जाएगा) दाखिल किया जाएगा।

स्पष्टीकरण-I शंकाओं के निवारण के लिए एतद्द्वारा यह घोषणा की जाती है कि इस धारा में माध्यस्थम पंचाट से वह माध्यस्थम पंचाट अभिप्रेत है चाहे वह धारा 8 के अन्तर्गत किसी न्यायिक प्राधिकारी द्वारा या धारा 8क में निर्दिष्ट न्यायालयों में से किसी न्यायालय के द्वारा या पक्षकारों द्वारा अथवा धारा 11 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के द्वारा या धारा 43क के अन्तर्गत त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम को पक्षकारों द्वारा किए गए निर्देश के अनुसरण में पारित किया गया है।

स्पष्टीकरण-II उस धारा के प्रयोजनों के लिए "माध्यस्थम के रिकार्डों" में पक्षकारों द्वारा दाखिल दावे की दलीलों, दस्तावेजों और मौखिक साक्ष्य यदि दर्ज किया गया हो, वादकालीन आवेदनों में दिए गए अभिवचन, उन पर किए गए आदेश, माध्यस्थम अधिकरण का कार्यवाही वृत्तांत तथा मध्यस्थ की कार्यवाही से संबंधित अन्य दस्तावेज शामिल हैं।

(2) जहां माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम पंचाट, और उपधारा (1) के अन्तर्गत माध्यस्थम रिकार्डों की फोटो प्रति दाखिल करने में असफल रहता है, वहां पक्षकारों में से कोई, माध्यस्थम अधिकरण को नोटिस भेजकर नोटिस की प्राप्ति के तीस दिन की अवधि के भीतर ऐसा करने के लिए कह सकता है ऐसा न करने पर पक्षकार न्यायालय से माध्यस्थम अधिकरण को यह निदेश देने का अनुरोध कर सकता है कि वह माध्यस्थम पंचाट तथा माध्यस्थम रिकार्डों की फोटो प्रति उक्त न्यायालय में दाखिल करे।

(3) उपधारा (2) के अन्तर्गत माध्यस्थम पंचाट तथा माध्यस्थम रिकार्डों की फोटो प्रति दाखिल कर दिए जाने पर, उक्त न्यायालय का पीठासीन अधिकारी या उक्त पीठासीन अधिकारी द्वारा नामनिर्दिष्ट उक्त न्यायालय का कोई प्रशासनिक अधिकारी पूर्वोक्त माध्यस्थम पंचाट की फोटो प्रति के प्रत्येक पृष्ठ पर तिथि तथा उक्त न्यायालय की मुहर सहित अपने हस्ताक्षर करेगा तथा सत्यापन के बाद, उपधारा (1) में निर्दिष्ट सूची के अनुसार माध्यस्थम पंचाट तथा माध्यस्थम रिकार्डों की फोटो प्रति की प्राप्ति की स्वीकृति देगा।

(4) उक्त न्यायालय एक रजिस्टर रखेगा जिसमें निम्नलिखित बातें होंगी:-

(क) पंचाटों के पक्षकारों के नाम तथा पते;

(ख) पंचाट की तारीख;

(ग) मध्यस्थों के नाम तथा पते;

(घ) प्रदत्त राहत राशि;

(ङ) उक्त न्यायालय में पंचाट दाखिल किए जाने की तारीख; तथा

(च) यथा विहित ऐसा अन्य विवरण

(5) यदि कोई पक्षकार आवेदन करता है कि न्यायालय, यथास्थिति, न्यायालयों के नियमों के अनुसार माध्यस्थम पंचाट या माध्यस्थम रिकार्ड या माध्यस्थम कार्यवाही वृतांत की फोटो प्रति की एक प्रमाणित प्रति दे सकता है।

(6) न्यायालय कार्यवाही में उपयोग के लिए माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने या उसके प्रवर्तन के लिए माध्यस्थम रिकार्डों को प्रेषित कर सकता है।

(7) मूल दस्तावेजों को लौटाने के लिए या ऐसे दाखिल किए गए माध्यस्थम रिकार्डों के संरक्षण के लिए विधारित प्रक्रिया ऐसे नियमों के अध्यधीन होगी जो समय-समय पर ऐसे न्यायालय पर लागू होती हो।

(8) इस धारा के अन्तर्गत पंचाट की फोटो प्रति दाखिल करना केवल रिकार्ड के प्रयोजनों के लिए है।"

2.25.1 <u>धारा 34: प्रक्रियात्मक संशोधनों और माध्यस्थम अधिकरण की धारा 34(4) के अन्तर्गत भेजने के लिए आगे की प्रक्रिया के संबंध में उपधारा (1) का संशोधन करने और नई उपधारा (1क) अन्तःस्थापित करने का प्रस्ताव-धारा 34 में खंड (5) और (6) जोड़कर प्रस्ताव स्वीकृत किया गया और धारा 34 में कारणों के लिए लागू होने वाली प्रक्रिया तथा प्रस्तावित धारा 34क</u>

हमने देखा है कि अधिनियम की धारा 33 पक्षकार के कहने पर या माध्यस्थम अधिकरण द्वारा स्वतः पंचाट में शुद्धि करने के लिए है।

एक प्रश्न यह उठाया गया है कि क्या केवल पंचाट को अपास्त करने के लिए उसे प्रेषित करना न्यायालय के लिए एक पृथक उपबंध जरूरी है। यह जरूरी नहीं है क्योंकि धारा 34(4) में ऐसे पंचाट प्रेषण करने के लिए अन्तर निहित प्रक्रिया दी गई है। लेकिन इस प्रकार पंचाट जमा किए जाने के बाद माध्यस्थम अधिकरण द्वारा आदेश पारित किए जाने के बाद किस प्रक्रिया का अनुसरण किया जाना चाहिए वह धारा 34 में विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है। अब हम उपधारा (5) और (6) में माध्यस्थम अधिकरण से जवाब प्राप्त करने के पश्चात अपनाई जाने वाली शेष प्रक्रिया का प्रस्ताव करते हैं जिसका विवरण नीचे दिया है।

मदन मोहन अग्रवाल बनाम सुरेश अग्रवाल, ए॰आई॰आर॰ 1998 (एम॰पी॰) 212 1998(2) माध्यस्थम एल.आर. 1966 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की न्यायपीठ ने यह निर्णय दिया था कि यदि धारा 34(4) के अन्तर्गत ऐसा अनुरोध किए जाने पर मध्यस्थ नया पंचाट पारित करता है तो यह माना जाना चाहिए कि दोनों पंचाटों का विलय कर दिया गया है अन्यथा पंचाट निष्पादित नहीं किया जा सकता। न्यायालय का विचार यह था कि धारा 34(4) के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा एक बार आदेश पारित कर दिए जाने के बाद पहले पंचाट को निलम्बित माना जाना चाहिए। निःसंदेह धारा 34(4) के समान प्रक्रिया होने के बावजूद न्यायालय ने कुछ अच्छा ही करने का प्रयास किया है।

अधिनियम की धारा 34(4) के अन्तर्गत आवेदन-पत्र धारा 34(1) के अन्तर्गत किए गए आवेदन को तब तक लम्बित रखा जाएगा जब तक माध्यस्थम अधिकरण उस बारे में न्यायालय अपना जवाब नहीं भेज देता। धारा 34(4) में कहा गया है कि न्यायालय, जब उपयुक्त हो पक्षकार द्वारा ऐसा अनुरोध किया गया हो, कार्यकर्ता को अपने आदेश द्वारा अवधारित समय तक के लिए स्थगित कर सकता है। ताकि माध्यस्थम अधिकरण को माध्यस्थम कार्यवाही पुनः प्रारम्भ करने अथवा ऐसी अन्य कार्यवाही करने का अवसर प्रदान किया जा सके जो माध्यस्थम अधिकरण की राय में माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने के कारणों का निराकरण कर दे। इस उपबंध के उद्देश्यों को डा॰ पी॰सी॰ राव की व्याख्या पृष्ठ 117 में स्पष्ट किया गया है जो इस प्रकार है:—

> "परिहार की प्रक्रिया 1940 के अधिनियम में भी ज्ञात थी। 1940 के अधिनियम की धारा 16 की उपधारा (4) के अन्तर्गत निर्धारित प्रक्रिया में मुख्य अन्तर यह है कि जहां 1940 के अधिनियम में परिहार की प्रक्रिया को पंचाट अपास्त करने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग माना गया है उपचारात्मक प्रक्रिया लागू किए जाने से पहले न्यायालय को पंचाट की उपचारात्मक त्रुटियों का पता लगाना होगा और उन्हें माध्यस्थम अधिकरण को निर्देशित करना होगा। अधिकरण को यह स्वतंत्रता है कि वह माध्यस्थम कार्यवाही को फिर से आरम्भ कर सकता है जो धारा 32 के अन्तर्गत अन्यथा समाप्त हो जाती या इस तरह की कार्यवाही आरम्भ किए बिना अन्य कार्यवाही कर सकता है जिससे उसकी राय में, पंचाट को अपास्त करने के कारणों का निराकरण हो जाएगा। अधिकरण को त्रुटियों का उपचार करने का अवसर दिया गया है। न्यायालय इस समयावधि को बढ़ा सकता है यदि न्यायालय द्वारा दी गई अवधि में कुछ नहीं होता है

या अधिकरण द्वारा की गई कार्यवाही से त्रुटियों का उपचार नहीं होता तो न्यायालय को पंचाट को अपास्त करना होगा।''

1940 के अधिनियम के अन्तर्गत भी प्रेषण के संबंध में उपलब्ध धारा 16 की उपधारा (2) के अन्तर्गत इस प्रकार किया गया था, ''माध्यस्थम या निर्णायक अपना विनिश्चय न्यायालय को प्रस्तुत करेगा''।

दूसरे शब्दों में, धारा 34(1) के अन्तर्गत पंचाट को अपास्त करने के आवेदन को लम्बित रखा जाएगा ताकि इस बीच माध्यस्थम अधिकरण अपना विनिश्चय न्यायालय को भेज सके। इस संबंध में विद्यमान स्थिति सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम 23 के आदेश 41 के अन्तर्गत विद्यमान स्थिति के बजाए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 25 के अन्तर्गत विद्यमान स्थिति के समान है।

2.25.2 परन्तु धारा 34(4) के समाप्त हो जाने के बाद क्या होना चाहिए, इस बारे में एक छोटा सा प्रक्रियात्मक अन्तराल है। इस बारे में आयोग का प्रस्ताव है कि माध्यस्थम अधिकरण को क्या करना है इस बारे में व्यथित पक्ष को आपत्ति दाखिल करने और न्यायालय हेतु माध्यस्थम अधिकरण के उत्तर और उन पर दाखिल की गई आपत्तियों, यदि कोई हो, के प्रकाश में धारा 34(1) के अन्तर्गत दाखिल किए गए आवेदन-पत्र का निपटारा करने के लिए इस धारा में उपधारा (5) और (6) जोड़ी जाए।

जहां धारा 34(4) में इस प्रकार की परिशोधन की प्रक्रिया बनाए रखी गई है वहां वह धारा 34क के आधारों पर पूरी तरह देशी माध्यस्थम के मामलों में लागू होती है, यही प्रक्रिया धारा 34(5) और (6) के अन्तर्गत लागू होगी।

लेकिन हम प्रस्ताव करते हैं कि माध्यस्थम अधिकरण से आदेश प्राप्त होने के पश्चात् न्यायालय, धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत प्राप्त आवेदन पत्रों पर विचार करते समय, उक्त आदेश और उसके संबंध में दाखिल की गयी किन्हीं आपत्तियों पर धारा 34 और प्रस्तावित धारा 34क के अन्तर्गत अनुपस्थ कारणों के प्रकाश में विचार कर सकता है। परन्तु इस न्यायालय को प्रस्तावित धारा 37क की उपधारा (2) के अन्तर्गत शक्तियों का प्रयोग करने से निवारित नहीं होगा तथा धारा 37क की उपधारा (3) में विहित प्रक्रिया का भी अनुसरण किया जाएगा।

आयोग यह सिफारिश भी करता है कि पक्षकारों को पंचाट अपास्त करने के अपने आवेदन में भारतीय राष्ट्रिकों से संबंधित पूरी तरह देशी माध्यस्थम पंचाटों के मामले में धारा 34क में प्रस्तावित अतिरिक्त आधारों को सम्मिलित करने की अनुमति दी जाए और किसी पंचाट को अपास्त करने हेतु आवेदन दाखिल करते समय पक्षकारों को, यदि मूल पंचाट आवेदक को नहीं दिया गया है तो, पंचाट की फोटो प्रति संलग्न करनी चाहिए। इस संबंध में आयोग का प्रस्ताव है कि धारा 34 की उपधारा (1) में संशोधन किया जाए तथा इन सिफारिशों को प्रभावी बनाने के लिए प्रतिस्थापित उपधारा (1) के नीचे नयी उपधारा (1क) नीचे दिए अनुसार अन्तःस्थापित की जाए।

(क) उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधाराएं प्रतिस्थापित की जाएंगी, अर्थात्–

''(1) माध्यस्थम पंचाट की विरुद्ध न्यायालय का आश्रय केवल ऐसे पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन द्वारा किया जा सकता है:–

(क) जो उपधारा (2) और उपधारा (3) के अनुसार हो; और

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं) से भिन्न माध्यस्थ में दिए गए पंचाट के मामले में उपधारा (2) और (3) तथा धारा 34क में उल्लिखित अतिरिक्त आधारों के अनुसार हो।

1(क) उपधारा (1) के अन्तर्गत किसी पंचाट को अपास्त करने के लिए किए जाने वाले आवेदन के साथ मूल पंचाट संलग्न किया जाएगा।

परन्तु जहां पक्षकारों को मूल पंचाट नहीं दिया गया है, वहां वे न्यायालय में मध्यस्थों द्वारा हस्ताक्षरित पंचाट की फोटो प्रति दाखिल कर सकते हैं।''

धारा 34 की उपधारा (4) के पश्चात प्रस्तावित उपधारा (5) और (6) अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात:–

''(5) जहां न्यायालय ने, माध्यस्थम अधिकरण की कार्यवाही फिर से प्रारम्भ करने या ऐसी अन्य कार्यवाही करने और इस धारा में या धारा 34 क में पंचाट को अपास्त करने के लिए निर्दिष्ट कारणों का निराकरण करने के लिए अवसर प्रदान करते हुए उपधारा (4) के अन्तर्गत कार्यवाही स्थगित कर दी है, वहां माध्यस्थम अधिकरण उपधारा (4) के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा किए गए अनुरोध की प्राप्ति के 60 दिन के भीतर समुचित आदेश पारित करेगा और उन्हें विचार हेतु न्यायालय को भेजेगा।

(6) उपधारा (5) के अन्तर्गत माध्यस्थम अधिकरण के आदेशों से व्यथित कोई पक्ष माध्यस्थम अधिकरण से उक्त आदेश की प्राप्ति के 30 दिन के भीतर उसके बारे में अपनी आपत्तियां दाखिल कराने का हकदार होगा और उक्त पंचाट को अपास्त करने के लिए उपधारा (1) के अन्तर्गत किए गए आवेदन का न्यायालय द्वारा उपधारा (5) के अन्तर्गत किए माध्यस्थम अधिकरण को आदेशों और इस उपधारा के अन्तर्गत दाखिल की गई आपत्तियों को ध्यान में रखकर, निपटारा किया जाएगा।''

2.26.1 भारतीय राष्ट्रिकों के बीच केवल पूरी तरह देशी माध्यस्थम के मामले में पंचाट को अपास्त करने के लिए दो अतिरिक्त आधार - प्रस्तावित धारा 34क:

इस उपबंध को भारतीय राष्ट्रिकों के बीच के पूरी तरह देशी माध्यस्थम तक ही सीमित रखने का प्रस्ताव है। हमारे प्रस्ताव के अनुसार दो आधार इस प्रकार है:–

(i) पंचाट में प्रत्यक्ष रूप से विधि की कोई सारभूत त्रुटि, (ii) कारणों का न होना। ये दो आधार धारा 34 के अधीन आवेदन में सम्मिलित किए जाएंगे। आधार (i) के संबंध में एक और आवेदन मांगे जाने का प्रस्ताव है, 1996 के इंग्लिश अधिनियम की तरह अनुमति प्रदान किए जाने के लिए कठोर शर्तें निर्धारित की गयी हैं।

अब हमारे प्रस्ताव के संदर्भ में, धारा 34 के अन्तर्गत माध्यस्थम पंचाटों को अपास्त करने के लिए किए गए आवेदनों को तभी दाखिल किया जाएगा यदि (i) कोई पक्षकार किसी असमर्थता से ग्रस्त था; या (ii) माध्यस्थम करार विधिमान्य नहीं है; (iii) माध्यस्थों की नियुक्ति या माध्यस्थम कार्यवाही के समय नोटिस नहीं दिया गया या पक्षकार अपना वाद प्रस्तुत करने के लिए अन्यथा असमर्थ था; या (iv) यदि पंचाट किसी अविचारित विवाद से संबंधित था या प्रस्तुत किए जाने की शर्तों के अधीन नहीं था या इसमें ऐसे मामलों से संबंधित विनिश्चय अन्तर्विष्ट थे जो माध्यस्थों को प्रस्तुत करने की परिधि से बाहर थे; और (v) यदि माध्यस्थम अधिकरण की संरचना या माध्यस्थम की प्रक्रिया पक्षकारों के करारों के अनुसार नहीं थी या भाग-एक के अनुसार नहीं थी।

धारा 34 की उपधारा (2) के खंड (ख) में अन्य पहलुओं का निर्देश है अर्थात, (i) विवाद की विषय-वस्तु तत्समय प्रवृत्त विधि के अधीन मध्यस्थ द्वारा निपटारे के योग्य नहीं है और माध्यस्थम पंचाट भारत की लोकनीति के प्रतिकूल है। धारा 34 की उपधारा (2) के नीचे दिए गए स्पष्टीकरण में बताया गया है कि यदि पंचाट छल-कपट या घूसखोरी द्वारा उत्प्रेरित किया गया है तो वह पंचाट लोकनीति के विरुद्ध है।

यह धारा 34 द्वारा हमले के आधार हैं।

हम पहले ही बता चुके है कि पूरी तरह से देशी माध्यस्थम के मामले में अधिक पर्यवेक्षण आवश्यक है। कापी-लवलीन एस०ए०/एक्वी० बनाम क्रेन रैन कैमिकल्स एण्ड फर्टिलाइजर्स लिमिटेड (अब परिसमापनाधीन) 1994 (2) एई० आर 449, 466 (एच०सी०) 42 मामले में लोर्ड मस्टिल ने कहा था:—

''अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम तथा राष्ट्रीय न्यायालयों के बीच के संबंध के सही संतुलन के बारे में कोई भी दृष्टिकोण अपनाया जाये यह शंका करना असंभव है कि कम से कम कुछ मामलों में न्यायालय का हस्तक्षेप न केवल अनुमत्य बल्कि अत्यधिक लाभकारी होगा।''

रैडफर्न एण्ड हन्टर (तीसरा संस्करण) (पैरा 1.18) में पूरी तरह देशी माध्यस्थम के बारे में बताते हुए इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया है:—

''.........माध्यस्थम की प्रक्रिया पर स्थानीय न्यायालयों पर किसी तरह का नियंत्रण (और पर्यवेक्षण भी) वांछनीय समझा गया था। इसके विपरीत मॉडल विधि (जो अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम का उपबंध करने के लिए बनायी गयी थी) की एक मुख्य बात यह है कि यह उस सीमा के बारे में कठोर सीमाएं निर्धारित करता है जिस सीमा तक राष्ट्रीय न्यायालय माध्यस्थम की कार्यवाही में हस्तक्षेप कर सकता है।''

[साथ ही देखिए, दक्षिण अफ्रीका के विधि आयोग द्वारा (इस रिपोर्ट के पैरा 1.4 में उल्लिखित) व्यक्त विचार].

परामर्श-पत्र (उपलंभ-II) जारी किए जाने के बाद हुई चर्चा में इसीलिए यह सुझाव दिया गया था कि माध्यस्थम विधि के अन्तर्गत पूरी तरह देशी पंचाट पर हमला करने के आधार अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के मुकाबले कहीं अधिक व्यापक होने चाहिए। तथापि यह स्वीकार किया गया था कि सिविल प्रक्रिया संहिता की तरह ही पंचाट के गुण-दोषों के बारे में कोई अपील नहीं होनी चाहिए। लेकिन कुछ न्यायविदों की राय थी कि आखिरकार माध्यस्थम दो पक्षकारों की पसंद का मामला है और इसमें न्यायालय का कम से कम हस्तक्षेप होना चाहिए और पूरी तरह देशी माध्यस्थम के संबंध में भी पंचाट का आश्रय लेने संबंधी उपबंधों का विस्तार करने के लिए कोई परिवर्तन आवश्यक नहीं है।

अपने दूसरे संस्करण में पूरी तरह देशी माध्यस्थम के मामले में अधिक कठोर नियंत्रण की आवश्यकता पर बल देते हुए रैडफर्न और हन्टर ने (पैरा 14 और 15) में कहा था:-

> "जिन राज्यों में सुविकसित माध्यस्थम विधि है, उनमें साधारणतः यह स्वीकार किया जाता है देशी माध्यस्थम में आमतौर पर जितनी स्वतंत्रता दी जाती है, अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में उससे अधिक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए, कारण है स्पष्ट है। देशी माध्यस्थम आमतौर पर एक ही राज्य के नागरिकों या निवासियों के बीच, उस राज्य के न्यायालयों के समक्ष कार्यवाही के विकल्प के तौर पर होता है। .....यह स्वाभाविक है कि किसी राज्य को एक माध्यस्थम के मामले में जिसमें उसके अपने निवासी या नागरिक अन्तर्ग्रस्त हो, उससे कहीं अधिक मजबूत नियंत्रण रखने की इच्छा होती है (और उसकी आवश्यकता भी होनी चाहिए) जितना उस अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के मामले में इच्छा होती (या आवश्यकता होती) जो कि भौगोलिक सुविधा के कारण उसी राज्य के क्षेत्र में हो सकता है।"

इन दोनों आधारों पर अलग-अलग विचार करके उनकी जांच करेंगे कि क्या इन दोनों आधारों को इन पंचाटों को अपास्त करने के लिए अतिरिक्त आधारों के रूप में जोड़ा जा सकता है जो भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी है।

2.26.2 (i) एक पंचाट में प्रत्यक्षतः विधि की सारभूत त्रुटि-प्रस्तावित

1940 के पुराने अधिनियम के अन्तर्गत भी पूरी तरह देशी माध्यस्थम में केवल विधि की त्रुटि कोई आधार नहीं थी जब तक कि वह पंचाट में प्रत्यक्ष रूप से न हो। अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में यह कोई आधार नहीं है तथा यह केवल लोकनीति तक सीमित है। रेणुसागर पावर कम्पनी लिमिटेड बनाम जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी, ए०आई०आर० 1994 एस.सी. 860 में हुई विस्तृत बहस में यह स्पष्ट किया गया है कि विधि की गलती को लोकनीति शब्द के अर्थ के भीतर क्यों शामिल नहीं किया जा सकता। विधि की त्रुटि को लोकनीति से अलग मानते हुए, न्यूयार्क कन्वेंशन, 1958 ने केवल लोकनीति को चुनौती देने का आधार बताया था, न कि विधि की त्रुटि को। एक मात्र अपवाद यह था कि लोकनीति शीर्ष के अन्तर्गत कतिपय मूलभूत नीतियों का उल्लंघन शामिल कर लिया गया था। इसलिए रेणुसागर मामले में उच्चतम न्यायालय ने विधि की त्रुटि को लोकनीति के अंग के रूप में सम्मिलित करने से इंकार कर दिया। "फेरेक्स" जैसे कानून के उल्लंघन के मामलों को अपवाद माना गया (देखिए पृष्ठ 888) जिन्हें भारत की मूलभूत नीति या भारत के हित का अंग माना गया। ब्याज पर ब्याज या क्षतिपूर्ति पर क्षतिपूर्ति वसूल करने को भारत की लोकनीति का उल्लंघन नहीं माना गया। रेणुसागर द्वारा अनुज्ञात मदें केवल निम्नलिखित तक सीमित है:-

(1) भारत की मूलभूत नीति,

(2) भारत का हित,

(3) न्याय या नैतिकता

केवल इन्हीं को स्पष्टीकरण में अन्तर्विष्ट से अलग लोकनीति शब्द के अर्थ में सम्मिलित किया गया।

यह सुझाव दिया गया है कि भारत की लोक-नीति शब्द को परिभाषित किया जाना चाहिए तथा यह कि धारा 34(2) में दिया गया वर्तमान स्पष्टीकरण पर्याप्त नहीं है। हमारा ध्यान उच्च न्यायालयों के कतिपय निर्णयों की ओर दिलाया गया है जिनमें विशेष रूप से एक बम्बई का है जहां विद्वान एकल न्यायाधीश ने विस्तृत निर्णय देते

के बाद कहा था कि उपर्युक्त शब्दों का अर्थ अत्यन्त उदारतापूर्वक लगाया जाना चाहिए तथा इनके दायरे के अन्तर्गत न केवल विधि की त्रुटि बल्कि 1940 के अधिनियम के अन्तर्गत उपलब्ध सभी आधार आ जाते हैं। इस निर्णय में रेणुसागर को स्वीकार नहीं किया है तथा इसमें कहा गया है। लोकनीति की यह अवधारणा कि इसमें अनुच्छेद 14 का उल्लंघन शामिल है, पर निर्भर करके यह निर्णय दिया गया कि किसी अधिकरण के किसी मनमाने निर्णय का अर्थ लोकनीति का उल्लंघन होगा।। आयोग के लिए बम्बई उच्च न्यायालय के इस विचार को स्वीकार करना कठिन है। वह इस तर्क को न्यायिक प्रक्रिया द्वारा ठीक किए जाने के लिए छोड़ता है इस पहलु को पंचाट में प्रत्यक्षतः की गई विधि की त्रुटि से संबंधित प्रस्तावित खंड में एक स्पष्टीकरण द्वारा स्पष्ट किए जाने का प्रस्ताव है। यह स्पष्ट रूप से बताया गया है कि विधि का प्रश्न वास्तविक तथ्यों के निष्कर्षों को स्वीकार किए जाने का बाद उठना चाहिए। इस पहलु को एक स्पष्टीकरण द्वारा स्पष्ट किए जाने का प्रस्ताव है।

रैडफन और हन्टर के अनुसार (देखिए, पैरा 9.32) जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम का संबंध है, विधि की त्रुटि को हमले के आधार के रूप में शामिल न किए जाने का औचित्य है। उन्होंने कहा था:–

> "यह माना जाता है कि जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों का संबंध है, पक्षकारों को माध्यस्थम अधिकरण के विनिश्चय को चाहे वह गलत भी हो, स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए यदि उसमें सही प्रक्रिया का अनुसरण किया गया है यदि न्यायालय को इस विनिश्चय की कानून या उसके गुण–दोषों के आधार पर पुनरीक्षा करने की अनुमति दी गई तो माध्यस्थम प्रक्रिया की गति और सबसे ऊपर उसकी अन्तिमता समाप्त हो जाएगी।"

रसैल (1999) कहता है (70001) की जिन मामलों में पक्षकार इंगलैण्ड के हों और माध्यस्थम में सामान्य ब्रिटिश प्रक्रिया नियमों का अनुसरण करना हो वहां न्यायालय के लिए किसी भूमिका का औचित्य सिद्ध करना अपेक्षाकृत सरल है।

न्यायमूर्ति वी०एन० मेहता ने माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 पर अपनी हाल की टिप्पणी में (देखिए, पृष्ठ 250, 251) न्यायालय के हस्तक्षेप के प्रश्न पर विभिन्न विचारों का विस्तार से उल्लेख किया है। लार्ड मास्टिल के विचार का भी उल्लेख किया गया है।" अल्टरनेटिव डिस्प्यूट रिजोलुशन नामक पुस्तक लेखक डा० पी०सी० राव में (श्री मिलन बनर्जी द्वारा एक लेख को उद्धृत) इसका आशय यह है कि विधि की त्रुटि को बनाए रखा जाना चाहिए। इसी पुस्तक में प्रख्यात न्यायविद श्री एफ०एस० नरीमन द्वारा लिखित एक अन्य लेख का भी उल्लेख किया गया है जिसमें कहा गया है कि विधि की त्रुटि को नए अधिनियम में पंचाट पर हमले के आधारों में शामिल नहीं किया जाना चाहिए।

जहां तक भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी पंचाटों के संबंध में पंचाट में प्रत्यक्षतः विधि की त्रुटि का संबंध है, आयोग इस आधार को शामिल करने का इच्छुक है बशर्ते कि यह त्रुटि कानून के सारभूत प्रश्न से संबंधित हो। यह विचार एक हद तक अधिनियम की धारा 28 तथा विधि का शासन बनाए रखने और लोकहित के प्रयोजनों पर आधारित है लेकिन इसके साथ-साथ यह अपील के समय को कानून के सारभूत प्रश्न तक सीमित रखने के बारे में है।

धारा 28 के अन्तर्गत माध्यस्थम अधिकरण से सारभूत कानून से हटने की आशा नहीं की जाती। ऐसा होने पर, क्या इस आधार को धारा 34 में सम्मिलित नहीं किए जाने का कोई औचित्य है? आयोग की राय में ऐसा कोई औचित्य नहीं है। भारत के न्यायालयों को जिनमें उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय सम्मिलित है, विवादों का विनिश्चय कानून के अनुसार करना होता है। इसलिए, माध्यस्थम अधिकरण को अधिक ऊंचे स्तर पर रखना और उसे अपनी ही सनक और कल्पना के अनुसार विनिश्चय करने की अनुमति देने का कोई औचित्य नहीं है। करोड़ों रुपये की राशि के पंचाट राज्य, सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों तथा सांविधिक निगमों के विरुद्ध पारित किए जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी कार्यवाही की सीमा अवधि तीन वर्ष है तथा कोई दावा दस वर्ष में कालावधिक हो जाता है तथा माध्यस्थम अधिकरण द्वारा फिर भी मंजूर कर लिया जाता है, क्या पंचाट को अकेला छोड़ दिया जाना चाहिए? यदि संविदा अधिनियम की धारा 73 का उल्लंघन करके नुकसानी की भारी राशि मंजूर कर दी जाती है या उस अधिनियम या माल विक्रय अधिनियम या ब्याज अधिनियम के अन्य उपबंधों का उल्लंघन है तो क्या उसका कोई उपचार बिल्कुल ही नहीं होना चाहिए? यदि वह उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय का अनुसरण नहीं करता या गलती से उच्चतम न्यायालय के निर्णयों की अनदेखी करता है तो क्या इसे

ठीक नहीं किया जाना चाहिए? आयोग की राय में आक्रमण के इस महत्वपूर्ण आधार का लोप करके मॉडल विधि का अनुसरण करना संभव नहीं है। लेकिन यह आधार केवल भारतीय राष्ट्रिकों के बीच के पूरी तरह देशी माध्यस्थम के लिए उपलब्ध कराया जाना चाहिए। (वस्तुत: जहां पूरी तरह विधि का प्रश्न माध्यस्थम अधिकरण को निर्दिष्ट किया गया है वहां यह आधार उपलब्ध नहीं होगा)

परन्तु यदि कानून की त्रुटि को इसमें जोड़ना है तो यह कार्य इंग्लिश अधिनियम की धारा 69 की तरह कठोर शर्तों के अध्यधीन किया जाना चाहिए। पंचाट में प्रत्यक्षतः कानून की त्रुटि के आधार की अनुमति देते समय आयोग का प्रस्ताव है कि इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 69 की तरह ही अत्यन्त कठोर मानक सम्मिलित किए जाने चाहिए जैसे (i) यह त्रुटि पंचाट में प्रत्यक्ष रूप से होनी चाहिए और विधि का सारभूत प्रश्न पैदा होना चाहिए, (ii) इसके अवधारण से अनिवार्यतः एक या अधिक पक्षकारों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना चाहिए, (iii) विधिक के सारभूत प्रश्न को माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष उठाया जाना चाहिए था, (iv) पक्षकार को विधि के प्रश्न आधारों में स्पष्ट रूप से उल्लेख करना चाहिए, (v) इस दलील को उठाने के लिए अलग से अनुमति प्राप्त की जानी चाहिए। ये कठोर शर्तें उन विभिन्न शर्तों में से है जो इंग्लिश विधि द्वारा नियत की गई है। ये शर्तें नेमा वाल मामले (1982 ए०सी० 724) तथा एन्टेयोज वाल मामले (1985 ए०सी० 191) में हाउस ऑफ लार्डस के विनिश्चय के अनुसरण में तय की गई थीं। पंचाट में प्रत्यक्ष रूप से त्रुटि होने के तर्क को उठाने के लिए धारा 34 के चरण पर, न्यायालय को प्रथम दृष्ट्या स्वयं का इस संबंध में समाधान करना होगा कि ये शर्तें पूरी कर दी गई हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, पूरी तरह देशी माध्यस्थम के मामले में जहां सभी पक्षकार भारतीय राष्ट्रिक हों, वह राज्य अधिक पर्यवेक्षण की शर्त लगा सकते हैं और लगाते है। इस बारे में भिन्न उपचार क्यों किए जाने की आवश्यकता है, इस संबंध में हम एक और कारण बता सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में पक्षकार सामान्यत: मान्यता प्राप्त अन्तर्राष्ट्रीय संरचनाओं से सम्पर्क करते हैं जिनके यहां अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के मध्यस्थों का एक पैनल होता है। इतने सम्माननीय पैनल के चयन के कारण ही इन माध्यस्थों को अत्यधिक सम्मान प्राप्त होता है और पक्षकारों को उनमें अत्यधिक विश्वास होता है। पूरी तरह देशी माध्यस्थम के बारे में ऐसा नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि सभी मामलों में उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों के अवकाश प्राप्त न्यायाधीशों या अन्य विशेषज्ञ ही नियुक्त किए जाते है। पूरी तरह देशी माध्यस्थमों में सामान्य व्यक्ति भी नियुक्त किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, जिन मामलों में सरकार या सरकारी क्षेत्र के उपक्रम या सांविधिक निगम पक्षकार होते हैं। वहां उनके कर्मचारियों को मध्यस्थों के रूप में नियुक्त करने के उपबंध है। परामर्श (उपाबंध –III) पर चर्चा के दौरान यह स्पष्ट किया गया था कि जिस मामले में विभागीय अधिकारियों को मध्यस्थ नियुक्त किया गया, वहां यह अनुभूति थी कि वे अधिकतर गैर सरकारी ठेकेदार का पक्ष लेते है। कुछ स्थितियों में, वे अपने नियोजकों के प्रति अनुचित रूप से पूर्वाग्रहग्रस्त रहते है। अत: पूरी तरह देशी माध्यस्थम पंचाटों को हमेशा अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम पंचाटों जैसे ऊंचे स्तर पर नहीं रखा जा सकता।

2.26.3 आयोग को पता है कि पुनर्वीक्षा के लिए अतिरिक्त आधार की अनुमति का कोई उपबंध चाहे वह पूरी तरह देशी माध्यस्थम पंचाट के लिए ही हो, उसका दुरुपयोग हो सकता है जिसकी वजह से न्यायालयों में विलम्ब हो सकता है। इसलिए, जैसाकि पहले बताया जा चुका है, आयोग इस संबंध में कई कठोर शर्त लगा रहा है। इसके साथ ही आयोग इस बात की अनदेखी नहीं कर सकता कि माध्यस्थम के काफी मामलों में सरकार, सरकारी क्षेत्र के उपक्रम तथा सांविधिक निगम अन्तर्ग्रस्त होते हैं जिनके विरुद्ध बहुत बड़ी राशि के दावे किए जाते हैं और पंचाट पारित कर दिए जाते है। ऐसे मामले में अन्तर्ग्रस्त धनराशि पूरी तरह सरकारी होती है। आयोग ने इस बात को ध्यान में रखा है कि इन निकायों के विरुद्ध दिए गए कुछ पंचाटों की राशि सैकड़ों करोड़ रुपयों में है। इसलिए, जहां तक भारतीय राष्ट्रिक के बीच पूरी तरह देशी पंचाटों का संबंध है निश्चित रूप से कुछ और पर्यवेक्षण जरूरी है तथा हम अन्तराष्ट्रीय पंचाटों के संबंध में अनुज्ञात आक्रमणों के सीमित दायरे से संतुष्ट नहीं हो सकते। इसके साथ ही जैसा कि ऊपर बताया गया है, हमारा प्रस्ताव है कि यह सुनिश्चित करने के लिए अत्यधिक सावधानी बरती जानी चाहिए कि अतिरिक्त आधारों का दुरुपयोग न किया जाए। अत: हमारा प्रस्ताव है कि धारा 34 के पश्चात धारा 24क जो निम्नलिखित है, अन्तःस्थापित की जाए:-

कतिपय पंचाटों के मामलों में चुनौती के अतिरिक्त आधार

"34 (क) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं) से भिन्न किसी माध्यस्थम में दिए गए माध्यस्थम पंचाट के मामले में, धारा 34 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी पंचाट को अपास्त

करने के लिए किए गए आवेदन में निम्नलिखित अतिरिक्त आधारों का अवलम्ब लिया जा सकता है, अर्थात-

(क) वहां ऐसी त्रुटि है जो माध्यस्थम पंचाट में प्रत्यक्ष रूप से हुई है जिससे विधि का सारभूत प्रश्न पैदा होता है,

(ख) माध्यस्थम पंचाट ऐसा पंचाट है जिसके संबंध में धारा 31 की उपधारा (3) के अन्तर्गत कारण बताने होते है लेकिन माध्यस्थम पंचाट के कारण नहीं बताए गए हैं।

(2) जहां धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत दाखिल किए गए आवेदन में, उपधारा (1) के खण्ड (क) में निर्दिष्ट आधार का अवलम्ब लिया जाता है वहां, आवेदक उक्त आधार को उठाने हेतु न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने के लिए अलग से आवेदन दाखिल करेगा:

परन्तु यह कि न्यायालय तब तक अनुमति प्रदान नहीं करेगा जब तक कि प्रथम दृष्टया उसका यह मत न हो कि निम्नलिखित सभी शर्तें पूरी कर ली गई है, अर्थात-

(क) प्रश्न का विचारण एक अथवा अधिक पक्षकारों के अधिकारों को काफी हद तक प्रभावित करेगा;

(ख) विधि का सारभूत प्रश्न ऐसा था कि जिसके बारे में माध्यस्थम अधिकरण विनिश्चय करने के लिए कहा गया था; और

(ग) अनुमति देने के लिए किए गए आवेदन में विधि के उस सारभूत प्रश्न का स्पष्ट उल्लेख हो जिसके बारे में निर्णय किया जाना है और अनुमति दिए जाने के संगत आधारों का भी वर्णन हो।

(3) जहां विधि के किसी विशिष्ट प्रश्न को माध्यस्थम अधिकरणों को भेजा गया हो वहा उपधारा (1) के खंड (क) में उल्लिखित आधार पर किसी पंचाट को अपास्त नहीं किया जाएगा।"

2.26.4 कारणों के न होने का आधार-प्रस्तावित: भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी पंचाट

भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह से देशी माध्यस्थम के मामले में हमारा जिस दूसरे अतिरिक्त आधार की अनुशंसा करने का प्रस्ताव है, वह पंचाट के 'घरेलू कारणों' के न होने से संबंधित है। जहां धारा 31 (3) के अन्तर्गत यह अपेक्षा की जाती है कि पंचाट में कारण दिए जाने चाहिए (सिवाय उन मामलों के जहां पक्षकार अन्यथा इस पर सहमत हो जाते हैं कि कारण दिए जाने की आवश्यकता नहीं है अथवा समझौते के आधार पर पंचाट हो), इस बारे में धारा 34 में कोई पर्याप्त उपबंध नहीं है। विभिन्न देशों में न्यायालयों में इस बात पर काफी मत भिन्नता है कि क्या विधि की त्रुटि "लोकनीति त्रुटि" शब्द के अन्तर्गत आएगी।

वर्ष 1940 के पुरानी विधि के अन्तर्गत काफी मुकदमेबाजी हुई है जिसके आधार पर कई कारणों के आधार के बिना पंचाट दिए गए। परन्तु जब एक बार 1996 का अधिनियम यह अपेक्षा करता है कि धारा 31(3) के आधार पर कारण दिए जाएं, तो धारा 31 (4) के अधीन मामले को वापस माध्यस्थम न्यायाधिकरण को सौंपने का उपबंध होना चाहिए और उसके बाद प्रस्तावित धारा 31 (5) और (6) के अन्तर्गत आपत्ति दायर की जानी चाहिए। अतः धारा 23क में यह अतिरिक्त आधार भी समाहित हैं। यह आधार धारा 34 क के आवेदनों में शामिल किया जाना है।

भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी माध्यस्थम के लिए ये दो अतिरिक्त आधार प्रस्तावित धारा 34क में अन्तर्विष्ट है। इन आधारों को शामिल करने के लिए माध्यस्थम अधिकरण द्वारा उनका परिशोधन करने के लिए भी धारा 34क में प्रावधान किया गया है।

2.26.5 यह प्रस्तावित किया जाता है कि जैसाकि पैरा 2.26.3 में बताया गया है, मूल अधिनियम की धारा 34 के पश्चात धारा 34 क अंत:स्थापित की जाए।

2.26.6 धारा 34: जैसाकि पैरा 2.25 क में पहले ही कहा गया है, धारा 34क की पुर:स्थापना पर विचार करने के बाद अब हम धारा 34 के परिणामिक संशोधनों पर विचार करेंगे तथा धारा 13 की उपधारा (2) के अन्तर्गत चुनौती तथा धारा 16 की उपधारा (2) के अन्तर्गत आवेदन की अस्वीकृति के लिए पंचाट

को अपास्त करने संबंधी आवेदन दाखिल करने के अधिकार को शामिल करने के लिए स्पष्टीकरण अन्त:स्थापित करने के बारे में भी विचार करेंगे।

धारा 34 की उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात:

"किसी माध्यस्थम पंचाट के विरुद्ध न्यायालय का अवलम्बन–

(क) उपधारा (2) और उपधारा (3) के अनुसार; और

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं) से भिन्न किसी माध्यस्थम में दिए गए पंचाट के मामले में उपधारा (2) और (3) तथा धारा 34 में उल्लिखित अतिरिक्त आधारों के अनुसार

केवल ऐसे पंचाटों को अपास्त करने के लिए आवेदन द्वारा लिया जा सकता है।

2.26.7 हम यह प्रस्ताव भी करते हैं कि धारा 34 में खंड (1क) के रूप में निम्नलिखित एक औपचारिक खण्ड जोड़ा जाए ताकि धारा 34(1) के अन्तर्गत मध्यस्थों द्वारा हस्ताक्षरित फोटो प्रति, यदि पक्षकार को मूल प्रति नहीं दी गयी है, के आधार पर आवेदन दाखिल किया जा सके:

(1क) उपधारा (1) के अन्तर्गत किसी पंचाट को अपास्त करने के लिए दिए जाने वाले आवेदन के साथ मूल पंचाट लगाया जाएगा।

परन्तु जहां पक्षकारों को मूल पंचाट नहीं दिया गया है, वहां वे न्यायालय में पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षरित पंचाट की फोटो प्रति भी दाखिल कर सकते हैं।

2.26.8 धारा 34(2) के नीचे स्पष्टीकरण-III:

जैसाकि हमने उपर्युक्त धारा 13 और 16 के अन्तर्गत अपनी चर्चा में बताया है, ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 13 की उपधारा (2) तथा धारा 16 की उपधारा (2) तथा धारा 16 की उपधारा (2) या उपधारा (3) के अन्तर्गत चुनौती को अस्वीकृत करने के बाद पारित किसी पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन दाखिल करने के किसी अधिकार का उल्लेख धारा 34 में न किए जाने में कोई चूक हुई है। जैसाकि पहले बताया गया है, धारा 34 की उपधारा (2) के नीचे निम्नलिखित स्पष्टीकरण-II जोड़ा जाता है:–

स्पष्टीकरण-III: शंकाओं के निवारण के लिए एतद्द्वारा यह घोषणा की जाती है कि उपधारा (1) के अन्तर्गत किसी माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने की अनुमति प्राप्त करते समय, आवेदन में माध्यस्थम अधिकरण के विनिश्चय को चुनौती देने वाले तर्क शामिल किए जाएं जिनके द्वारा:

(i) धारा 13 की उपधारा (2) के अन्तर्गत दी गयी चुनौती को;

(ii) धारा 16 की उपधारा (2) या उपधारा (3) के अन्तर्गत दिए गए तर्क को, अस्वीकृत किया जा सके।"

2.27 अवचार के आधार को सम्मिलित किए जाने का प्रस्ताव-अस्वीकृत किया गया

धारा 30(क) में 1940 वाले पुराने अधिनियम में प्रयुक्त अवचार के आधार का प्रयोग किया गया था "मध्यस्थ ने स्वयं अवचार किया हो या कार्यवाही का कुसंचालन किया हो। भारत में न्यायालयों ने इन शब्दों का अर्थान्वयन विभिन्न प्रकार से किया है। जैसाकि केरल राज्य बनाम के० कुरियन पी० थाल (ए०आई० आर० 1992 के० 180) मामले में बताया गया है, इन शब्दों में (एक) अपनायी गयी प्रक्रिया में दोष, (दो) कर्तव्य और जिम्मेदारी का भंग और उपेक्षा करना, (तीन) समझ और अच्छे अन्तर्विवेक के प्रतिकूल आचरण करना, (चार) निदेश से बाहर जाकर कार्य करना, (पांच) बिना अधिकारिता के कार्यवाही करना (छ:) बाह्य परिस्थितियों के आधार पर कार्यवाही करना, (सात) महत्वपूर्ण दस्तावेजों की उपेक्षा करना, और (आठ) पंचाट का किसी साक्ष्य पर आधारित न होना सम्मिलित है। वस्तुत: इसमें भ्रष्टाचार और घूसखोरी भी शामिल हो जाएंगे।

यह स्पष्ट है कि इनमें से कुछ आधारों को वास्तव में 1996 के अधिनियम की धारा 34 में शामिल कर लिया गया है। उदाहरण के लिए (एक) पक्षकार किसी असमर्थता के अधीन था, (दो) माध्यस्थम करार विधि के अन्तर्गत विधिमान्य नहीं था, (तीन) आवेदक को एक मध्यस्थ की नियुक्ति या माध्यस्थम कार्यवाही का

उचित नोटिस नहीं दिया गया था या अन्यथा वह अपने मामले को प्रस्तुत करने में असमर्थ हो गया था, (चार) पंचाट माध्यस्थम को प्रस्तुत करने की शर्तों के भीतर न होने वाले या नहीं अनुध्यात किए विवाद के साथ संव्यवहार करता है या इसमें माध्यस्थम के निवेदन के दायरे से परे के मामलों पर विनिश्चय अन्तर्विष्ट है, (पांच) अधिकरण की संरचना तथा माध्यस्थम की प्रक्रिया पक्षकारों के करार के अनुसार नहीं थी, (छः) विवाद की विषय-वस्तु तत्समय प्रवृत्त विधि के अन्तर्गत माध्यस्थम द्वारा निपटारे के योग्य नहीं थी, (सात) पंचाट भारत की लोकनीति के विरुद्ध है जिसमें छल-कपट या भ्रष्टाचार या धारा 75 या 81 का उल्लंघन सम्मिलित है।

आयोग के विचार में ये आधार पर्याप्त प्रतीत होते हैं और ''अवचार'' का आधार जोड़कर इसका और विस्तार किए जाने की आवश्यकता नहीं है।

अतः अवचार के सामान्य आधार को जोड़ा जाना वांछनीय नहीं है क्योंकि इससे वास्तव में मुकदमेबाजी की बाढ़ ही आ जाएगी। मामले पर सावधानी से विचार करने के पश्चात् आयोग नहीं चाहता कि भारतीय पार्टियों के बीच के पूरी तरह देशी माध्यस्थम के मामलों में भी ''अवचार'' को चुनौती के आधार के रूप में शामिल किया जाए।

2.28 धारा 34क (खारी)

गलतियों को ठीक किए जाने और माध्यस्थम अधिकरण के निर्दिष्ट किसी मुद्दे पर विचार न किए जाने की स्थिति में अतिरिक्त आधारों का प्रस्ताव- इस आधार पर अस्वीकृत किया गया कि विद्यमान उपबंधों में पर्याप्त उपचारों की व्यवस्था है।

हमारे सामने दलील यह है कि माध्यस्थम के लिए प्रस्तुत सभी मुद्दों पर विचार किए जाने में असफलता को एक आधार नहीं बनाया गया है। धारा 33(4) इस संबंध में पक्षकारों को माध्यस्थम अधिकरण में आवेदन करने और अधिकरण को अतिरिक्त पंचाट पारित करने की अनुमति देती है। इसी तरह का उपबंध मॉडल विधि के अनुच्छेद 33(3), बेल्जियम कोड के अनुच्छेद 1700, नीदरलैण्ड अधिनियम, 1986 के अनुच्छेद 106, इटेलियन कोड के अनुच्छेद 826 और अंग्रेजी के अधिनियम, 1990 की धारा 57 (3) (ख), जर्मन अधिनियम के अनुच्छेद 1058 (1)(3) और स्वीडिश अधिनियम, 1999 की धारा 32 में है। इसके अतिरिक्त, विनिश्चय के लिए प्रस्तुत किए गए मुद्दों का विनिश्चय करने में असफलता को इंग्लिश अधिनियम, 1990 में एक ''अनियमितता'' माना गया है और धारा 68(2)(ङ) के अन्तर्गत, यदि न्यायालय समझता है कि सारभूत न्याय के संदर्भ में स्थिति का उपचार करना जरूरी है तो अपील करने की अनुमति है। निःसंदेह ऐसे मामले हो सकते हैं जहां विनिश्चय किसी अन्य निष्कर्ष में निहित हो या पंचाट को सपष्ट रूप से देखने से पता चलता है कि अधिकरण ने मुद्दे की अनदेखी नहीं की थी या साक्ष्य अपर्याप्त रहा। हमारे सामने यह सुझाव दिया गया था कि जिन मामलों में अधिकरण ने उसे भेजे गए मुद्दे पर विनिश्चय नहीं किया है और धारा 33(4) के अन्तर्गत दिए गए आवेदन पर विचार करने से इंकार कर दिया है वहां न्यायालय को एक ऐसा अनुपूरक पंचाट देने के लिए कहने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए थी जिसमें मामले की परिस्थितियों को देखते हुए छोड़े गए मुद्दे के बारे में कारण दिए गए हों।

(ख) दूसरा सुझाव यह है कि धारा 33(1) के अन्तर्गत पक्षकार यह अनुरोध कर सकता है कि माध्यस्थम अधिकरण टंकण संबंधी गलतियों को ठीक करे या उसकी व्याख्या करे और यदि माध्यस्थम अधिकरण समुचित रूप से उत्तर नहीं देता है तो धारा 34 के अन्तर्गत अपील के लिए उपबंध होना चाहिए।

इन दो अतिरिक्त मदों को, जिनका ऊपर (क) और (ख) में उल्लेख किया गया है, धारा 34 में सम्मिलित किए जाने के सुझाव को स्वीकार नहीं किया जा रहा है क्योंकि 1996 के अधिनियम में इन दोनों आकस्मिकताओं से निपटने के लिए उपबंध है। धारा 34 (3) पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन सामान्यतः 90 दिन के भीतर दाखिल करना होता है और जहां धारा 33 अर्थात् धारा 33 की उपधारा (4) के अन्तर्गत विनिश्चित नहीं किए गए किसी मुद्दे का विनिश्चय करने के लिए या धारा 33 की उपधारा (1) के अन्तर्गत गलतियां ठीक करने या व्याख्या करने के लिए, के अन्तर्गत अधिकरण से अनुरोध किया गया है वहां 90 दिन की समयावधि उस समय तक बढ़ जाती है जब तक कि माध्यस्थम अधिकरण अनुरोध का उत्तर न दे दें। दूसरे शब्दों में, अधिकरण द्वारा उत्तर दे दिए जाने के बाद, उक्त उत्तर के संबंध में आपत्तियां का भी धारा 34(1) के अन्तर्गत दाखिल किए जाने वाले आवेदन में उल्लेख किया जा सकता है ताकि न्यायालय अधिनियम के अन्तर्गत उपलब्ध आधारों को ध्यान में रखकर इन आपत्तियों पर विचार कर सकें।

इसका अर्थ यह है कि व्यथित पक्ष धारा 34(1) के अन्तर्गत न्यायालय में समावेदन करते समय धारा 33(1) और (4) के अन्तर्गत किए गए अनुरोधों के बारे में माध्यस्थम अधिकरण के उत्तर को चुनौती दे सकता है। इन दोनों आकस्मिकताओं के लिए विद्यमान उपबंधों के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से व्यवस्था की गई है। इसलिए, विभिन्न प्रकार की गलतियों से संबंधित इन दोनों आधारों को सम्मिलित किए जाने का अनुरोध अनावश्यक के रूप में अस्वीकृत किया जाता है।

2.29.1 धारा 36. न्यायालय द्वारा पंचाट का प्रवर्तन-बाधाएँ दूर की गई तथा शर्तें लगाने के लिए उपबंध किया गया।

यदि पंचाट को अपास्त करने का आवेदन समय पर दाखिल किया जाता है और लंबित है तो अब पंचाट को प्रवर्तन करना संभव नहीं है। इससे कुछ समस्याएं पैदा हो गई हैं।

धारा 36 में कहा गया है कि जहां धारा 34 के अन्तर्गत माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने का आवेदन करने का समय समाप्त हो गया है या किए जाने पर ऐसा आवेदन अस्वीकृत कर दिया गया हो, वहां पंचाट सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अन्तर्गत उस ढंग से प्रवर्तित किया जाएगा जैसेकि यह न्यायालय की डिक्री होती।

1940 के अधिनियम के अन्तर्गत पंचाट को न्यायालय में दाखिल करने और उसे न्यायालय का नियम बनाने की प्रक्रिया को नए अधिनियम के अन्तर्गत त्याग दिया गया है। अब पंचाट को न्यायालय का नियम बनाए जाने की आवश्यकता नहीं है। इसे सीधे कुछ शर्तों के अध्यधीन प्रवर्तित किया जा सकता है। एक शर्त यह है कि यदि पंचाट को अपास्त करने के लिए दाखिल करने के लिए विहित अवधि समाप्त हो गई है तो पंचाट को प्रवर्तित किया जा सकता है। लेकिन जहां पंचाट को अपास्त करने के लिए किया गया ऐसा आवेदन लंबित है वहां पंचाट का प्रवर्तन तब तक रुक जाता है जब तक उपर्युक्त धारा 3 में प्रयुक्त भाषा के कारण आवेदन न्यायालय द्वारा अस्वीकृत नहीं कर दिया जाता।

धारा 36 के इस उपबंध का उन व्यक्तियों द्वारा दुरुपयोग किया गया है जिनके विरुद्ध पंचाट पारित किया गया है। पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन दाखिल करके वहां तक कि उन मामलों में भी जहां आवेदन में कोई सारतत्व नहीं होता उनमें वस्तुतः उस समय तक स्वतः पंचाट का स्थगन हो जाता है जब तक आवेदन अस्वीकृत नहीं हो जाता। इस प्रकार बस आवेदन दाखिल किया जा सकता है और कार्यवाही आगे खिंचती रहती है।

2.29.2 बम्बई सेमिनार में और आपूर्ति तथा निपटान महानिदेशालय द्वारा भी यह सुझाव दिया गया है कि जिस पक्षकार के विरुद्ध पंचाट पारित किया गया है उसे धारा 34(1) के अन्तर्गत पंचाट अपास्त करने के आवेदन को दाखिल करने की शर्त के रूप में पंचाट की राशि जमा करने या बैंक गारंटी देने के लिए विवश किया जाना चाहिए। यह सुझाव स्वीकार्य नहीं है। आपूर्ति तथा निपटान महानिदेशालय के इस सुझाव में स्पष्टतः यह माना गया है कि प्रत्येक पंचाट सरकार के पक्ष में होता है। जब कभी कोई कानून उपबंध करना होता है तो सरकार से भिन्न पक्षकारों पर पड़ने वाले प्रभावों को ध्यान रखा जाना चाहिए। आयोग की राय में यह उचित होगा कि धारा 34(1) के अन्तर्गत दिए गए आवेदनों पर विचार करने वाले न्यायालय का, ऐसी शर्तों के अध्यधीन जो न्यायालय मामले की परिस्थितियों को देखते हुए उचित समझे, पंचाट के प्रवर्तन के बारे में स्थगन प्रदान करने की शक्ति प्रदान की जाए।

2.29.3. आपूर्ति तथा निपटान महानिदेशालय का यह सुझाव भी न्यायोचित नहीं है कि माध्यस्थम या प्रवर्तन की कार्यवाही के लंबित रहने की अवधि के दौरान ठेकेदारों को अपनी आस्तियों की सूची देनी चाहिए और उन आस्तियों को हस्तान्तरित नहीं करना चाहिए। पक्षकारों को दोनों पक्षों के हितों की रक्षा के लिए अंतरिम आदेश प्राप्त करने योग्य बनाने के लिए अधिनियम के अंतर्गत धारा 9 और धारा 17 जैसे पर्याप्त उपबंध विद्यमान है। इसलिए यह सुझाव अस्वीकृत किया जाता है।

2.29.4 इसके बजाए यह प्रस्ताव किया जाए कि पंचाट प्रवर्तनीय रहे लेकिन उसके प्रवर्तन के बारे में स्थगन आदेश करते समय, न्यायालय शर्तें लगा सकता है। शर्तों का अर्थ पूरी राशि या उसका कोई भाग या बैंक गारंटी जमा करना या आस्तियों की कुर्की आदि हो सकता है।

अतः यह प्रस्ताव किया जाता है कि "या किए जाने पर ऐसा आवेदन अस्वीकृत कर दिया गया है" शब्दों को छोड़ दिया जाए और धारा 36 में इस आशय का एक दूसरा खंड जोड़ा जाए कि पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन के दाखिल किए जाने का अर्थ तथ्यतः यह नहीं है कि पंचाट का प्रवर्तन स्थगित हो गया है तथा

कि उक्त आवेदन लंबित रहने पर, न्यायालय ऐसे अंतरिम आदेश जो वह उचित समझे और जिसमें उस संपत्ति के संबंध में जो उस पक्षकार के हित की रक्षा करने के लिए उसके पक्ष में पंचाट पारित किया गया है, पंचाट के अंतर्गत पंचाट की या अन्य संपत्ति की या पूरी राशि अथवा उसका कोई भाग जमा करने के अध्यधीन है, पारित कर सकता है।

2.29.5 अतः प्रस्ताव को विद्यमान उपबंध को उपधारा (1) के रूप में पुनःस्थापित किया जाए और धारा 36 से निम्नलिखित शब्दों को छोड़ दिया जाए:

"या किए जाने पर ऐसा आवेदन अस्वीकृत कर दिया गया है।"

2.29.6 यह बताया गया है कि पंचाट को तब तक प्रवर्तित नहीं करने दिया जाना चाहिए जब तक वे स्टाम्प शुल्क और रजिस्ट्रीकरण से संबंधित प्रवृत्त कानूनों के अनुरूपन हो, जब तक वस्तुतः पंचाट का एक भाग पृथकरणीय न हो। अधिनियम के अंतर्गत पंचाट 90 दिन के बाद प्रवर्तनीय हो जाता है। पंचाट में डिक्री की शक्ति होने के कारण सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के प्रयोजनों के लिए तर्क उठाए जा सकते हैं, इनके उपर्युक्त कानूनों के अनुरूप होने की आवश्यकता नहीं है। सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 21 के अंतर्गत ऐसी आपत्तियों से निपटने का काम निष्पादन न्यायालय का है। 1940 के अधिनियम में रजिस्ट्रीकरण या स्टाम्प शुल्क के संबंध में कोई उपबंध नहीं था। आयोग का विचार है कि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम और स्टाम्प अधिनियम के अंतर्गत इन समस्याओं से निपटा जा सकता है जैसी स्थिति पुराने अधिनियम में थी और निष्पादक न्यायालय इन आपत्तियों पर विचार कर सकता है।

2.29.7 मूल अधिनियम की धारा 36 के स्थान पर निम्नलिखित धारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात:

धारा 36 का प्रतिस्थापन

23. मूल अधिनियम की धारा 36 के स्थान पर निम्नलिखित धारा अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:
पंचाट का कार्यान्वयन या उसके प्रवर्तन का स्थगन

"36(1) जहां धारा 34 की उपधारा (1) के अंतर्गत माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन करने का समय समाप्त हो गया है तो उपधारा (2) से (4) तक के उपबंधों के अध्यधीन पंचाट सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अंतर्गत ऐसे ढंग से प्रवर्तित किया जाएगा जैसेकि वह न्यायालय की डिक्री हो।

(2) जहां माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने के लिए धारा 34 की उपधारा (1) के अंतर्गत न्यायालय में आवेदन दाखिल किया गया हो, ऐसे आवेदन को दाखिल करने से स्वतः पंचाट का तब तक स्थगन नहीं हो जाएगा जब तक न्यायालय, उस प्रयोजन के लिए और आवेदन किए जाने पर, उपधारा (3) के उपबंधों के अनुसार पंचाट के कार्यान्वयन का स्थगन नहीं दे देता।

(3) पंचाट के कार्यान्वयन के स्थगन के लिए उपधारा (2) में निर्दिष्ट आवेदन दाखिल किए जाने पर न्यायालय, ऐसी किसी कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना जो वह धारा 37क की उपधारा (1) के अंतर्गत और ऐसी शर्तों के अध्यधीन जो वह लगाना उचित समझे, लिखित में संक्षेप में दर्ज किए गए कारणों के लिए माध्यस्थम पंचाट के कार्यान्वयन के बारे में स्थगन प्रदान कर सकता है:

परंतु न्यायालय, स्थगन प्रदान करने पर विचार करते समय, पंचाट को अपास्त करने के आधारों को ध्यान में रखेगा।

(4) उपधारा (3) में निर्दिष्ट शर्तों को लागू करने की शक्ति में, पंचाट के न केवल पक्षकारों के विरुद्ध या उस संपत्ति के संबंध में जो पंचाट की विषय-वस्तु के अध्यधीन है, अंतरिम उपाय की अनुमति देने लेकिन तीसरे पक्षकार के खिलाफ या ऐसी संपत्ति के संबंध में जो पंचाट की विषय-वस्तु नहीं है, अंतरिम उपाय जारी करना सम्मिलित है जहां तक उस पक्षकार के हितों की रक्षा करना जरूरी है जिसके पक्ष में पंचाट पारित किया गया है।

(5) उपधारा (4) के अंतर्गत प्रदान किए गए उपायों को न्यायालय द्वारा, यथास्थिति, ऐसी शर्तों, यदि कोई हो, के अध्यधीन जो वह उचित समझे, प्रभावित व्यक्तियों की सुनवाई के पश्चात्, पुष्ट, उपान्तरित या निष्प्रभावी किया जा सकता है।

2.29.8 प्रस्तावित धारा 37क धारा 34 और 37क के अंतर्गत मामलों में मध्यक्षेप करने की न्यायालय की शक्ति की व्याप्ति यदि सारभूत प्रतिकूल प्रभाव प्रदर्शित नहीं किया गया है तो न्यायालय उन्हें प्रारंभ में ही खारिज कर सकता है तथा उन मामलों को 6 महीने के भीतर निपटाना होगा।

यह प्रस्तावित सर्वाधिक महत्वपूर्ण संशोधनों में से एक है।

आयोग चाहता है कि यदि कोई खूबियां नहीं है तो प्रारंभ में ही उसे खारिज करके अपील की प्रक्रिया को शुद्ध बनाया जाए। नोटिस के बाद भी न्यायालय के हस्तक्षेप के लिए सारभूत प्रतिकूल प्रभाव दिखाना होता है।

2.29.9 न्यायालय में एक सामान्य स्वविवेक निहित करना होगा कि वह आवेदनों या अपीलों को प्रारंभ में ही अस्वीकृत कर सके। प्रस्ताव यह है कि पंचाट के पहले (धारा 37(2) के अंतर्गत) या पंचाट के बाद (धारा 34 के अंतर्गत) न्यायालय अपीलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा और उन्हें प्रारंभ में ही अस्वीकृत कर सकता है।

2.29.10 यह प्रस्ताव भी है कि हस्तक्षेप के लिए सारभूत प्रतिकूल प्रभाव अपेक्षित होगा। यह उपबंध पूरी तरह देशी या अंतर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के माध्यस्थमों पर लागू किया जाए। धारा 34 और 37 के अंतर्गत सभी आवेदनों और अपीलों का निपटारा करने का उपबंध करने का प्रस्ताव भी है ताकि न्यायालय की कार्यवाही को तेज किया जा सके। वस्तुतः यदि आवेदनों या अपीलों को प्रारंभ में ही खारिज करना है तो उसके लिए संक्षेप में कारण दर्ज करने होंगे।

जहां धारा 34 के अंतर्गत आने वाले सभी पंचाटों को चुनौती देने वाले आवेदन दाखिल किए जाते हैं या धारा 37(2) में निर्दिष्ट माध्यस्थम अधिकरण के सभी आदेशों के संबंध में अपील दायर की गई है या धारा 37(1) के अंतर्गत न्यायालय के आदेशों के संबंध में अपील की गई है तो न्यायालय द्वारा निम्नलिखित प्रक्रिया अपनायी जाएगी।

2.29.11 मूल अधिनियम की धारा 37 के पश्चात् धारा 37क अंतःस्थापित की जाएगी, अर्थात्

नई धारा 37क का अंतःस्थापन

37क. धारा 34 और 37 और समय सीमाओं के अंतर्गत मध्यक्षेप के लिए सारभूत प्रतिकूल प्रभाव दिखाना होगा।

"37क. (1) धारा 34 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट न्यायालय उक्त धारा के अंतर्गत आवेदन पर विचार करते समय, या धारा 37 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अंतर्गत निर्दिष्ट न्यायालय, इन उपधाराओं में से किसी उपधारा के अंतर्गत अपील पर विचार करते समय, यदि ऐसा करना उचित समझे, और आवेदक या अपीलकर्ता या उसके काउंसेल की सुनवाई के लिए एक दिन निश्चित करने के पश्चात् और यदि वह उस दिन उपस्थित होता है तो तदनुसार उसकी सुनवाई करके प्रतिवादी को कोई नोटिस दिए बिना, यदि, यथास्थिति, आवेदन या अपील में कोई खूबियां नहीं है तो लिखित में संक्षेप में कारण दर्ज करते हुए, आवेदन या अपील को खारिज कर सकेगा।

(2) माध्यस्थम अधिकरण द्वारा पारित कोई भी पंचाट धारा 34 की उपधारा (1) के अंतर्गत किए गए किसी आवेदन पर अपास्त नहीं किया जाएगा और माध्यस्थम अधिकरण या न्यायालय द्वारा पारित कोई भी आदेश, यथास्थिति, धारा 37 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अंतर्गत की गई किसी अपील पर तब तक अपास्त नहीं किया जाएगा जब तक कि सारभूत प्रतिकूल प्रभाव प्रदर्शित नहीं किया गया हो।

(3) उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रत्येक आवेदन या अपील का निपटारा विरोधी पक्षकार को नोटिस तामील किए जाने की तारीख से 6 महीने के भीतर किया जाएगा। परंतु धारा 34 की उपधारा (1) के अंतर्गत किसी आवेदन पर विचार करते समय यदि न्यायालय धारा 34 की उपधारा (5) के अंतर्गत कार्यवाही स्थगित कर देता है तो 6 महीने की अवधि की गणना, उस उपधारा के अंतर्गत माध्यस्थम अधिकरण की प्राप्ति की तारीख से की जाएगी।"

2.30.1 धारा 42 पश्चातवर्ती आवेदनों का दाखिल किया जाना और न्यायालयों की अधिकारिता तथा धारा 8, 8क और 11प्रस्तावित धारा 42(1) से (4)

यह अधिनियम के सबसे महत्वपूर्ण उपबंधों में से एक है। लेकिन जहां तक धारा 8 के अंतर्गत किसी

न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष दाखिल किए गए आवेदनों का या धारा 11 के अंतर्गत दाखिल किए गए आवेदनों का संबंध है, उस बारे में इसे अस्पष्ट छोड़ दिया गया है। हमारा प्रस्ताव था कि सभी प्रकार की शंकाओं के निवारण के लिए इन धाराओं को स्पष्ट किया जाए।

धारा 42 के अंतर्गत यह अपेक्षा की जाती है किसी माध्यस्थम के संबंध में सभी पश्चातवर्ती आवेदन उसी न्यायालय में दाखिल किए जाए जिसमें सबसे पहले ऐसे आवेदन दाखिल किए गए थे। 1940 के पुराने अधिनियम के अंतर्गत भी इसी प्रकार का उपबंध था। उससे अधिक कठिनाई नहीं हुई क्योंकि उस अधिनियम की धारा (ग) में "न्यायालय" की परिभाषा बहुत व्यापक थी। लेकिन 1996 के वर्तमान अधिनियम में न्यायालय की परिभाषा बहुत सीमित है। किसी जिले में प्रधान सिविल न्यायालय या प्रधान न्यायाधीश के न्यायालय या किसी नगर में नगर सिविल न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालयों को धारा 2(1)(ङ) में अपवर्जित किया गया है। "न्यायालय" शब्द के अंतर्गत जिले में या संबंधित नगर के समान अधिकारिता वाले उन न्यायालयों को भी सम्मिलित नहीं किया गया है जिन्हें पूर्वोक्त प्रधान न्यायालयों से कोई मामला अंतरित किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त, हमें धारा 8क में निर्दिष्ट न्यायालयों में धारा 8 के अंतर्गत न्यायिक प्राधिकारियों के समक्ष आवेदन और धारा 11 के अंतर्गत आवेदन के लिए स्पष्ट रूप से उपबंध करना है।

इस श्रेणियों को शामिल करने के लिए धारा 42 में समुचित रूप से संशोधन करना है।

2.30.2 (1) सामान्य उपबंध: धारा 42(1)

धारा 42(1) में एक सामान्य उपबंध है जिसमें बताया गया है कि पश्चातवर्ती आवेदन उपधारा (2) से (5) के अनुसार दाखिल किया जाएगा। उपधारा (2) से (5) में न्यायालय और न्यायिक प्राधिकारियों को अभिप्रेत करने के लिए "न्यायालय" शब्द को परिभाषित किया गया है। उपधारा (2), धारा 2(1) (ङ) के अंतर्गत आने वाले न्यायालयों से संबंधित है।

2.30.3 (2) धारा 8 और धारा 42(3) के अन्तर्गत आवेदन

अब हम धारा 8 पर विचार करेंगे। जहां कोई कार्यवाही न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष दाखिल की जाती है और प्रतिवादी सफलतापूर्वक तर्क करता है तो वह माध्यस्थम खण्ड के अन्तर्गत किया जाता है और माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति की जाती है। न्यायिक प्राधिकारी मूल अधिकारिता वाला न्यायालय होता है अर्थात् धारा 2(1)(ङ) न्यायालय/इस स्थिति से कोई कठिनाई नहीं होती। यदि निर्देश की अनुमति प्राप्त करने के लिए इन न्यायालयों में आवेदन दाखिल किया जाता है तो धारा 34 के अन्तर्गत इनके सहित सभी पश्चातवर्ती आवेदन उक्त न्यायालय में दाखिल किए जाएंगे जिसने सबसे पहले आवेदन पर विचार किया था।

जहां तक धारा 8 के अन्तर्गत मूल अधिकारिता वाले न्यायालयों का संबंध है, वे जिले या नगर में प्रधान न्यायालयों से निम्नतर न्यायालय हैं । यदि उक्त न्यायालयों ने प्रतिवादी के कहने पर मध्यस्थ नियुक्त किया है तो धारा 34 के अन्तर्गत दिए जाने वाले आवेदनों सहित पश्चातवर्ती आवेदन को उन प्रधान न्यायालयों में दाखिल करना होता है जिनके अधीनस्थ ये न्यायालय हैं।

यदि धारा 8 के अन्तर्गत, जहां प्रतिवादी के कहने पर व्यस्थ को निर्देश किया गया है, आवेदन अर्ध-न्यायिक अधिकरण में किया गया है, तो पश्चातवर्ती आवेदन (धारा 34 के अन्तर्गत किए जाने वाले आवेदन सहित) जिले या नगर में उस प्रधान जिला न्यायालय में किया जाएगा जिसकी प्रादेशिक अधिकारिता के अन्तर्गत वह न्यायिक प्राधिकरण स्थित है। ये उपबंध प्रस्तावित धारा 42(3) अन्तर्विष्ट हैं।

2.30.4 (3) धारा 8क और 42(4) के अन्तर्गत आवेदन

जहां तक धारा 8क का संबंध है, उसकी प्रक्रिया प्रस्तावित धारा 42(4) में अन्तर्विष्ट है जिसके साथ दो स्पष्टीकरण हैं। धारा 8क के अन्तर्गत पक्षकार को निर्देशित करने का कार्य उन न्यायालयों में लम्बित वाद, अपील या पुनरीक्षण की स्थिति में किया जाता है जो निर्देशन कर सकती हैं ये विचारण न्यायालय या अपीली न्यायालय भी होते हैं। जो विचारण न्यायालय अपनी मूल अधिकारिता का प्रयोग करते हैं, वे हैं-

(क) किसी जिले में सिविल अधिकारिता वाले प्रधान न्यायालय की अधिकारिता वाले न्यायालय या किसी नगर में प्रधान न्यायाधीश के न्यायालयों के नगर सिविल न्यायालयों के अधीनस्थ न्यायालय,
(ख) प्रधान न्यायालयों के तत्सम न्यायालय जिन्हें उपर्युक्त कार्यवाही अन्तरित की जा सकती थी,
(ग) अपनी मूल अधिकारिता या अपीलीय अधिकारिता में उपर्युक्त प्रधान न्यायालय, (घ) अपनी

मूल अधिकारिता में उच्च न्यायालय, (ङ) अपीलीय या पुनरीक्षण अधिकारिता में उच्च न्यायालय, (च) अपीलीय अधिकारिता में उच्चतम न्यायालय। यहां धारा 8 के अन्तर्गत दी गयी ''कानूनी कार्यवाही'' की परिभाषा को ध्यान में रखना होगा।

तब धारा 42 के अन्तर्गत स्थिति यह होगी कि जहां जिले में प्रधान न्यायालयों के अधीनस्थ न्यायालयों ने या प्रधान न्यायालयों के समान अधिकारिता वाले न्यायालयों ने (अर्थात् मामले के अन्तरण के बारे में) निर्देश किया है जहां निर्देश उक्त प्रधान न्यायालयों द्वारा अपनी मूल/अपीलीय अधिकारिता में किया गया है, वहां भाग-एक के अन्तर्गत (धारा 34 सहित) पश्चातवर्ती आवेदन उक्त प्रधान न्यायालयें में दाखिल करने होंगे।

परन्तु यदि यह निदेश उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय द्वारा अपनी मूल या अपीलीय अधिकारिता में दिया गया है वहां पश्चातवर्ती आवेदन,यथास्थिति, केवल उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में दाखिल करने होंगे। ये पहलू धारा 42(4) और दो स्पष्टीकरणों में दिए गए हैं।

2.30.5 (4) धारा 11 और धारा 42(5) के अन्तर्गत आवेदन:

जहां तक धारा 11 का संबंध है, यदि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय ने माध्यस्थ नियुक्त किए हैं तो धारा 34 के अन्तर्गत किए जाने वाले आवेदनों सहित पश्चातवर्ती आवेदन धारा 2(1) (ङ) के अनुसार अर्थात जिले में प्रधान जिला न्यायालय या प्रधान मुख्य न्यायाधीश, नगर सिविल न्यायालय या मूल अधिकारिता में उच्च न्यायालय अधिकारिता में विषय-वस्तु की स्थिति के आधार पर और धन संबंधी अधिकारिता को देखते हुए, दाखिल करना होगा।

इस प्रकार हमने धारा 42 की उपधारा (1) से (5) में सभी आकस्मिकताओं के लिए उपबंध कर दिया है। विद्यमान धारा को ही कुछ उपान्तरण करके उपधारा (1) बना दिया गया है।

2.30.6 मूल अधिनियम की धारा 42 के स्थान पर निम्नलिखित धारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्:

उत्तरवर्ती आवेदनों को दाखिल करने के लिए समुचित न्यायालय

''42. (1) इस भाग में अथवा तत्समय प्रवृत्त अन्य किसी विधि में अन्यत्र अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी भी माध्यस्थम करार के संबंध में इस भाग के अधीन कोई आवेदन उपधारा (2) से (5) के अनुसार न्यायालय को किया गया है तो सभी पश्चातवर्ती आवेदन (धारा 31के की उपधारा (2) में निर्दिष्ट आवेदनों से अन्य) जो उस करार और माध्यस्थम की कार्यवाही (जिसे इस धारा में इसके पश्चात् पश्चातवर्ती आवेदन कहा जाएगा), किसी अन्य न्यायालय में नहीं बल्कि उपधारा (2) से (5) के अनुसार किए जाएंगे।

(2)जहां न्यायालय में कोई आवेदन धारा 2 की उपधारा (1) के खण्ड (1) के अर्थ के भीतर किया है वहां पश्चातवर्ती आवेदन किसी अन्य न्यायालय में न करके उसी न्यायालय में किए जाएंगे।

(3) यदि किसी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष धारा 8 के अन्तर्गत लम्बित किसी कार्यवाही में कोई ऐसा आवेदन किया जाता है जिसके अन्तर्गत किसी करार के संबंध में माध्यस्थम को निर्दिष्ट किए जाने की अनुमति मांगी गयी हो, वहां पश्चातवर्ती आवेदन निम्नलिखित ढंग से किए जाएंगे, अर्थात्:

(i) जहां न्यायिक प्राधिकारी धारा 2 की उपधारा (1) के खण्ड (ङ) के अर्थ के अन्दर कोई न्यायालय है वहां पश्चातवर्ती आवेदन उक्त न्यायालय में किया जाएगा जिसमें आवेदन किया गया है तथा और किसी न्यायालय में नहीं किया जाएगा

(ii) जहां न्यायिक प्राधिकारी ऐसा न्यायालय जो, यथास्थिति, जिले में मूल अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय से या नगर में मूल अधिकारिता वाले प्रधान न्यायाधीश के न्यायालय (जिसे इसमें इसके पश्चात् प्रधान न्यायालय कहा जाएगा) से ग्रेड में निम्नतर न्यायालय है, वहां पश्चातवर्ती आवेदन उक्त प्रधान न्यायालय में किया जाएगा जिसका वह न्यायालय अधीनस्थ है जहां आवेदन किया गया है और उक्त आवेदन और किसी न्यायालय में नहीं किया जाएगा।

(iii) जहां न्यायिक प्राधिकारी अर्ध-न्यायिक सांविधिक है, वहां पश्चातवर्ती आवेदन खण्ड (दो) में उल्लिखित उक्त प्रधान न्यायालय में किया जाएगा जिसकी क्षेत्रीय सीमाओं में वह उक्त प्राधिकारी स्थित है तथा यह आवेदन और किसी न्यायालय में नहीं किया जाएगा।

(4) यदि धारा 8क के अन्तर्गत कोई कानूनी कार्यवाही उक्त धारा में निर्दिष्ट न्यायालय के समक्ष चल रही है और उसमें किसी करार के संबंध में निर्देश प्राप्त करने के लिए आवेदन किया जाता है तो पश्चातवर्ती आवेदन निम्नलिखित ढंग से किए जाएंगे, अर्थात्:–

(i) जहां आवेदन उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय में, यथास्थिति, उपधारा (3) के खण्ड (दो)में उल्लिखित प्रधान सिविल न्यायालय में किया गया है वहां पश्चातवर्ती आवेदन अन्य किसी न्यायालय में नहीं किया बल्कि उसी न्यायालय में किया जाएगा जिसने निर्देश किया है।

(ii) जहां आवेदन समन्वित यथास्थित, अधिकारिता या उपधारा (3) के खण्ड (2) में उल्लिखित प्रधान सिविल न्यायालयों से निम्नतर ग्रेड वाले न्यायालय में किया गया है वहां पश्चातवर्ती आवेदन उक्त प्रधान न्यायालय में किया जाएगा जहां से कानूनी कार्यवाही, यथास्थिति, समन्वित अधिकारिता वाले ऐसे न्यायालय को अन्तरित की गई थी या उस न्यायालय को जिसका उक्त न्यायालय अधीनस्थ है और उक्त आवेदन किसी अन्य न्यायालय में नहीं किया जाएगा।

स्पष्टीकरण-I-इस उपधारा में " कानूनी कार्यवाही" का वही अर्थ होगा जो धारा 8क के स्पष्टीकरण में दिया गया है।

स्पष्टीकरण-II-शंकाओं के निवारण के लिए, एतद्द्वारा यह घोषित किया जाता है कि उन माध्यस्थम कार्यवाहियों के मामले में जो धारा 8क के अधीन उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा किए गए निदेश और उनके अनुसरण में पारित पंचाटों के अनुसरण में प्रारम्भ हुई है, "न्यायालय को निर्देश" शब्द जहां कहीं भी इस भाग में यह प्रयोग किया गया है, का अर्थ धारा 27 और धारा 31क के सिवाय, यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय को निर्देश से लगाया जाएगा।

(5) यदि किसी करार के संबंध में माध्यस्थम को निर्दिष्ट कराने के लिए कोई आवेदन, यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय में धारा 11 के अधीन किया गया है तो पश्चातवर्ती आवेदन धारा 2 की उपधारा (1) के खण्ड (ङ) के अर्थ के अन्तर्गत आने वाले न्यायालय में किए जाएंगे तथा किसी अन्य न्यायालय में नहीं किए जाएंगे।

2.31.1 भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा मध्यस्थों के पैनल का प्रस्ताव--धारा 42क स्वीकृत हुआ:

यह सुझाव दिया है कि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा मध्यस्थों का पैनल तैयार करने की एक योजना बनाई जानी चाहिए। यह भी सुझाव दिया है कि उस योजना के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय के सभी सेवानिवृत्त न्यायाधीशों को शामिल किया जाना चाहिए तथा उच्च न्यायालय के कुछ सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की एक सूची तैयार की जानी चाहिए। इस योजना में यह उपबंध किया जा सकेगा कि उन्हें दो या तीन साल की संविदा अवधि के लिए ऐसे पारिश्रमिक, भत्ते या परिलब्धियां दी जानी चाहिए जो भारत के मुख्य न्यायमूर्ति अवधारित करें। भारत का मुख्य न्यायमूर्ति यह भी विनिश्चय कर सकेगा कि उन्हें निश्चित पारिश्रमिक दिया जाए। इस अवधि के दौरान जो पैनल पर होंगे उन्हें माध्यस्थम नामनिर्दिष्ट किए जाने के लिए उपलब्ध होंगे। योजना और उसके अन्य विवरण तैयार करने का कार्य भारत के मुख्य न्यायमूर्ति का होगा। एक सुझाव यह है कि पक्षकारों को इस पैनल पर रखे गए मध्यस्थों को संविदा की अवधि के दौरान फीस देने की आवश्यकता नहीं है।

आयोग सिफारिश करता है कि मूल अधिनियम की धारा 42 के पश्चात निम्नलिखित नई धारा 42क अन्त:स्थापित की जाए।

2.31.2 मूल अधिनियम की धारा 42 के पश्चात् निम्नलिखित नयी धारा 42क अन्तस्थापित की जाएगी, अर्थात्:–

"42क. मध्यस्थों के पैनल के लिए योजना:

भारत का मुख्य न्यायमूर्ति मध्यस्थों का एक पैनल गठित करने के लिए एक योजना तैयार कर सकेगा ताकि यथास्थिति, धारा 11 के अधीन पक्षकार उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय अथवा धारा 8 के अधीन न्यायिक प्राधिकारी या धारा 8क में निर्दिष्ट न्यायालय या धारा 42क के अन्तर्गत पक्षकार, ऐसी शर्तों के अध्यधीन, जैसाकि उस योजना में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा विनिर्दिष्ट की जाएं, ऐसे पैनल में से मध्यस्थ नियुक्त कर सकें।"

2.32.1 भागीदारी अधिनियम: महाराष्ट्र संशोधन अधिनियम (29/84)–धारा 42 क्ष जोड़कर 1996 के अधिनियम में संशोधन का प्रस्ताव किया गया–स्वीकार किया गया

आयोग की जानकारी में यह बात लाई गई थी कि यद्यपि कई भागीदारी करारों में मध्यस्थम खण्ड होते है तथापि महाराष्ट्र संशोधन अधिनियम (29/84) द्वारा भागीदारी अधिनियम, 1932 में पुरःस्थापित उपखण्ड (2क) के कारण बम्बई में किसी फर्म के विघटन या विघटित फर्म के लेखाओं के लिए या उसकी सम्पत्ति वसूली के लिए जहां फर्म रजिस्ट्रीकृत नहीं थी वहां कार्यवाही करने में कुछ कठिनाईयां पेश आ रही है।

भागीदारी अधिनियम की धारा 69, जहां तक संगत है, इस प्रकार है:-

धारा 69- रजिस्ट्रीकरण न कराए जाने का प्रभाव:

(1) किसी संविदा से उत्पन्न या इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त किसी अधिकार के प्रवर्तन के लिए किसी भी न्यायालय में किसी व्यक्ति द्वारा या उसकी ओर से किसी फर्म के विरुद्ध उस फर्म के भागीदार के रूप में या किसी व्यक्ति के विरुद्ध जो कथित रूप से उस फर्म का भागीदार है या रहा है, तब तक कोई वाद नहीं चलाया जाएगा जब तक कि वह फर्म रजिस्ट्रीकृत नहीं है और वाद करने वाला व्यक्ति फर्मों के रजिस्टर में फर्म के भागीदार के रूप में नहीं है या नहीं दिखाया गया है।

(2) जब तक कोई फर्म रजिस्ट्रीकृत नहीं है और वाद करने वाले व्यक्ति फर्म के रजिस्टर में फर्म के भागीदार के रूप में नहीं है या नहीं दर्शाए गए हैं तब तक किसी संविदा से उत्पन्न किसी अधिकार के प्रवर्तन के लिए किसी न्यायालय में किसी फर्म द्वारा या उसकी ओर से किसी तीसरे पक्षकार के विरुद्ध कोई वाद नहीं चलाया जाएगा।

(3) उपधारा (1) और (2) के उपबंध, किसी संविदा से उत्पन्न अधिकार के प्रवर्तन के लिए किए गए किसी भी दावे या अन्य कार्यवाही पर भी लागू होंगे लेकिन उनसे निम्नलिखित पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा-

(क) किसी फर्म के विघटन या विघटित फर्म के लेखाओं के लिए या किसी विघटित फर्म की सम्पत्ति वसूली के किसी अधिकार या शक्ति के लिए वाद चलाने के किसी भी अधिकार का प्रवर्तन।

(ख) .....

महाराष्ट्र संशोधन अधिनियम, 1984 की धारा 29 किसी भी ऐसे वाद को प्रतिषिद्ध करती है जैसाकि धारा 69(3) में अनुध्यात है जब तक कि वह वाद किसी मृतक भागीदार के कानूनी प्रतिनिधियों द्वारा दायर किया गया वाद न हो। उक्त अधिनियम ने धारा 69(3) में संशोधन कर दिया और उपधारा (1) और (2) के स्थान पर "उपधारा (1), (2) और (2क)" प्रतिस्थापित कर दिया।

अब धारा 69(2), अधिनियम द्वारा प्रदत्त किसी अधिकार या किसी संविदा से उत्पन्न अधिकार के प्रवर्तन के लिए वादों का वर्जन करती है यदि वह वाद किसी अरजिस्ट्रीकृत फर्म द्वारा तीसरे पक्षकारों के विरुद्ध संस्थित किया गया है। धारा 69 की उपधारा (3), धारा 69(2) में किए गए वर्जन को, मुजराई या अन्य कानूनी कार्यवाहियों के दावों पर लागू करती है लेकिन इसमें कहा गया है कि इससे विघटन के वादों और विघटित फर्म के लेखाओं या किसी विघटित फर्म आदि की सम्पत्ति की वसूली की शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

जगदीश चन्द्र बनाम काजरिया ट्रेडर्स, ए०आई०आर० 1964 एस०सी० 1882 में उच्चतम न्यायालय ने "अन्य कानूनी कार्यवाहियों" शब्द का जो अर्थ लगाया था, उसके अनुसार उसमें 1940 के अधिनियम की धारा 2 के अधीन "मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए आवेदन" सम्मिलित था।

इसका अर्थ यह है कि साधारणतः कोई कार्यवाही, जिसमें माध्यस्थम अधिनियम, 1940 के अधीन जाने वाली कार्यवाही शामिल है, वर्जित नहीं है यदि वह किसी फर्म के विघटन या उसके लेखाओं अथवा उसकी सम्पत्ति की वसूली से संबंधित है चाहे वह फर्म अरजिस्ट्रीकृत है।

2.32.2 लेकिन परेशानी महाराष्ट्र अधिनियम की धारा 69 में उपखण्ड (2क) के अन्तःस्थापित करने से हुई है। हमने देखा है कि स्वयं धारा 69(2) में कहा गया है कि वर्जन किसी फर्म के विघटन और उसके लेखाओं या

उसकी सम्पत्ति की वसूली के वादों या कार्यवाहियों पर लागू नहीं होता। लेकिन धारा 69(2क) में कहा गया है कि किसी अरजिस्ट्रीकृत फर्म का कोई भागीदार उस फर्म के विघटन के लिए या विघटित फर्म के लेखाओं के लिए कोई वाद नहीं ला सकता या उस फर्म की सम्पत्ति की वसूली के लिए किसी अधिकार या शक्ति का दावा नहीं कर सकता। महाराष्ट्र संशोधन से धारा 69(3) में भी संशोधन किया गया है तथा कहा गया है कि धारा 69 की उपधारा (1) और (2) तथा (2क) के उपबंध ऐसी फर्मों के विघटन के लेखाओं के लिए किए गए वादों या ऐसी फर्मों की सम्पत्ति वसूली की शक्ति पर लागू होंगे।

बम्बई में धारा 69(2क) तथा संशोधित धारा 69(3) का प्रभाव यह है कि किसी फर्म के विघटन या लेखाओं के लिए या उसकी सम्पत्ति की वसूली के लिए वादों या अन्य कार्यवाहियों की अनुमति देने के लिए केन्द्रीय अधिनियम के अन्तर्गत धारा 69(3) के परवर्ती भाग में जिस अपवाद की व्यवस्था की गई है, वह अकृत हो गया है। दूसरे शब्दों में, धारा 11 के अधीन माध्यस्थम के लिए न तो कोई वाद और न ही कोई आवेदन दाखिल किया जा सकता यदि उसका प्रयोजन अरजिस्ट्रीकृत फर्म को विघटित कराना या उसके लेखाओं को अन्तरिम रूप देना या उसकी सम्पत्ति से वसूली करना है। इस प्रकार, अकेले महाराष्ट्र में ऐसी विषमता उत्पन्न हो गई है। अतः ऐसे मामलों में 1996 का अधिनियम अप्रयोज्य हो गया है।

यह कठिनाई बम्बई सेमिनार के दौरान आयोग के समक्ष रखी गई थी तथा समस्या पर विचार करने के पश्चात् आगे का विचार यह है कि यह विषमता ठीक करनी होगी विशेषकर इसलिए क्योंकि आजकल एडीआर प्रक्रियाओं पर बल दिया जाता है। आयोग का विचार है कि जहां तक अरजिस्ट्रीकृत फर्म के भागीदारों का संबंध है, उन्हें फर्म का विघटन कराने, अरजिस्ट्रीकृत फर्म के लेखाओं का निपटारा या विघटित फर्म की सम्पत्ति की वसूली के सीमित प्रयोजनों के लिए 1996 के अधिनियम का लाभ मिलना चाहिए। दूसरे शब्दों में अर्थात् 1996 के अधिनियम के प्रयोजनों के सिवाय, धारा 69(2क) और 3 बरकरार रह सकती है। आयोग को लगता है कि भागीदारों की बीच विवादों के इस सीमित वर्ग को, 1984 में महाराष्ट्र संशोधन अधिनियम के होते हुए भी, 1996 के अधिनियम के अधीन हल करने की अनुमति दी जानी चाहिए। इससे लेखाओं के लिए एक प्रारम्भिक डिक्री और फिर लेखाओं के लिए अन्तिम डिक्री पारित करने के आवश्यकता नहीं रहेगी।

यह सच है कि धारा 69 के उपबंध का आशय, उस फर्म को रजिस्टर कराने के लिए भागीदारी पर दबाव डालना है ताकि भागीदारों और फर्म में उनके शेयरों तथा फर्म से संबंधित तथ्यों के बारे में तीसरे पक्षकारों को नोटिस दिया जा सके। महाराष्ट्र संशोधन का आशय पक्षकारों पर अपनी फर्म रजिस्टर कराने के लिए और अधिक दबाव डालना था अन्यथा वे फर्म का विघटन या लेखाओं का निपटारा नहीं करा सकेंगे और न ही वे विघटित फर्म की सम्पत्ति को मुक्त करा सकेंगे। आयोग की राय में महाराष्ट्र में यथासंशोधित ये उपबंध, समर्थकारी माध्यस्थम के सीमित विस्तार के सिवाय, बने रहेंगे तथा यदि यह लाभ दिया जाता है तो भागीदार किसी अरजिस्ट्रीकृत फर्म के विघटन के लिए या उस अविघटित फर्म के लेखाओं के निपटारे के लिए या किसी विघटित फर्म की सम्पत्ति की वसूली के लिए मध्यस्थ के पास जा सकते है।

अतः यह प्रस्ताव किया जाता है कि धारा 42ख जोड़कर इस प्रभाव को ठीक किया जाए। यदि इस मामले में संसद कोई कानून बनाती है तो प्रतिकूलता के सिद्धान्त के अधीन राज्य का संशोधन स्वतः ही अधिक्रमित हो जाएगा।

2.32.3 आयोग सिफारिश करता है कि यथापूर्वोक्त प्रस्तावित धारा 42क के पश्चात् एक नई धारा 42ख अन्तः स्थापित की जाए जो निम्नलिखित रूप में अन्तःस्थापित की जाए:-

42ख. महाराष्ट्र संशोधन अधिनियम, 1984 द्वारा यथासंशोधित भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 के अधीन अरजिस्ट्रीकृत भागीदारियों से संबंधित विशेष उपबंध

भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 की धारा 69 में संशोधन करने वाले, भारतीय भागीदारी (महाराष्ट्र संशोधन) अधिनियम, 1984 के उपबंधों का, महाराष्ट्र में लागू करते समय, निम्नलिखित के संबंध में किसी अधिकार के प्रवर्तन के प्रयोजन के लिए माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 के अधीन किसी कार्यवाही के प्रारम्भ पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा:-

(क) फर्म का विघटन;

(ख) विघटित फर्म के लेखाओं का निपटान; या

(ग) विघटित फर्म की सम्पत्ति की वसूली।"

2.34.1 एटलांटिक खण्ड संविदा (संशोधन) अधिनियम, 1996 द्वारा यथासंशोधित धारा 28 के उपबंधों को देखते हुए धारा 43(3) के अधीन पुरःस्थापित किए जाने वाला स्पष्टीकरण जिसके द्वारा "कालबधित करने वाले खण्ड" शून्य हो गए।

कई माध्यस्थम करारों में "कालबधित करने वाला" खण्ड एक सामान्य खण्ड है। हम ऐसे एक खण्ड का उदाहरण देंगे- इसमें कहा गया है कि करार द्वारा निश्चित समयावधि के भीतर माध्यस्थम कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए किसी पक्षकार को, (माध्यस्थम के लिए नोटिस जारी करने जैसे) कुछ कदम उठाने चाहिए, ऐसा न करने पर दावा ही कालबाधित या निर्वापित हो जाएगा। एटलांटिक शिपिंग केस, 1922(2), ए०सी० 250 में तथा भारत के उच्चतम न्यायालय ने वल्कैन इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड बनाम महाराज सिंह ए०आई०आर० 1976, एस सी 287 मामले में ऐसे एक खण्ड का अनुमोदन किया था। उच्चतम न्यायालय ने ऐसे खण्ड का अनुमोदन संविदा अधिनियम, 1872 की तत्समय विद्यमान धारा 28 के आधार पर किया था।

जहां तक ऐसा खण्ड विधिमान्य था, विधान मण्डल ने कठिनाई से राहत प्रदान करने की कोशिश की। 1950 के इंग्लिश अधिनियम की धारा 27 में और 1996 के हाल ही के इंग्लिश अधिनियम की धारा 12 तथा 1940 के भारतीय अधिनियम की धारा 37(3) एवं 1996 के अधिनियम की धारा 43(3) में इंग्लैण्ड के विधानमण्डल ने यह महसूस किया था कि दावे के ऐसे समयपूर्व निर्वापन से ही कठिनाई उत्पन्न हो सकती है, इसलिए, न्यायालय में कार्यवाही दाखिल करने के लिए अवधि बढ़ाकर कठिनाई के मामले में राहत प्रदान की जानी चाहिए। कठिनाई को दूर करने के लिए, 1996 के अधिनियम में न्यायालय द्वारा परिसीमा की अवधि बढ़ाए जाने के लिए निम्नलिखित उपबंध किया गया था:-

धारा 43(3) इस प्रकार है:

> "जहां भविष्य में विवादों को माध्यस्थम को सौंपने के माध्यस्थम करार से यह उपबंध किया गया है कि ऐसा कोई भी दावा जिस पर करार लागू होता है, कालबाधित हो जाएगा जब तक कि माध्यस्थम की कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए, करार द्वारा निश्चित समय के भीतर कोई उपाय नहीं किया जाता और कोई ऐसा विवाद उत्पन्न हो जाता है जिस पर करार लागू होता है, वहां न्यायालय यदि उसकी यह राय है कि मामले की परिस्थितियों में अन्यथा अनुचित कठिनाई होगी तथा इस बात के होते हुए भी कि इस तरह का निश्चित समय समाप्त हो गया है, तो न्यायालय ऐसी शर्तों पर यदि कोई हो, जो मामले के न्याय के लिए आवश्यक हो, समय की ऐसी अवधि तक जो वह उचित समझे, आगे बढ़ा सकता है।"

2.34.2 हम आयोग की 91वीं रिपोर्ट के अनुसरण में 8.1.99 से हुए परवर्ती परिवर्तन का भी उल्लेख करेंगे यानी संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 28 में संशोधन कर दिया गया है। संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 28 में संशोधन संविदा (संशोधन) अधिनियम, 1996 द्वारा किया गया था और 8.1.97 को प्रवृत्त हुआ तथा एक नई धारा 28 प्रतिस्थापित की गई। संशोधन विधेयक के उद्देश्यों तथा कारणों का कथन इस प्रकार है:-

> "भारत के विधि आयोग ने अपनी 97वीं रिपोर्ट में यह सिफारिश की है कि भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 28 में संशोधन किया जाए ताकि वर्तमान धारा द्वारा पैदा की गई अनियमितपूर्ण स्थिति को ठीक किया जा सके।
>
> न्यायालयों द्वारा कहा गया है कि उक्त धारा 28 किसी भी करार के केवल उस खण्ड को अधिधिमान्य करेगी जो उस करार के किसी भी पक्षकार को अपने अधिकारों का अनन्य प्रवर्तन करने से रोकती है या उस समय को सीमित करती है जिसके भीतर वह अपने अधिकारों का प्रवर्तन कर सकता है। परन्तु न्यायालयों का कहना है कि जब संविदागत शर्त के अन्तर्गत किसी पक्षकार के वाद चलने के अधिकार की समाप्ति का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया हो या दावे के संबंध में किसी भी पक्षकार को सभी दायित्वाओं से उन्मोचित करने की बात स्पष्ट रूप से कही गई हो तो यह धारा प्रवृत्त नहीं होगी। इस प्रकार धारा 28 द्वारा जिस चीज पर आघात किया गया है, वह है एक करार जिसके द्वारा केवल उपचार का त्याग किया गया है अर्थात् जहां कानून द्वारा समय-सीमा विनिर्दिष्ट की गई है।
>
> यह माना गया है कि उपचार और अधिकार में अन्तर है और यही अंतर वर्तमान स्थिति का आधार है जिसके अन्तर्गत उपचार का वर्जन करने वाला खण्ड शून्य हो जाता है लेकिन अधिकरण का निर्वापन करने वाला खण्ड वैध रहता है। यह दृष्टिकोण सैद्धान्तिक रूप से ठीक हो सकता है लेकिन व्यवहारिक

रूप से इससे गम्भीर कठिनाईयां उत्पन्न हुई और इसका दुरुपयोग भी किया जा सकता था। यह महसूस किया गया है कि 1872 के भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 28 में संशोधन किया जाना चाहिए क्योंकि इससे बड़े निगमों के साथ व्यवहार करने वाले उपभोक्ता के हितों को हानि पहुंचती है और उन लोगों को भारी कठिनाई होती है जो आर्थिक रूप से अलाभ की स्थिति में है। यह विधेयक उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए है।''

नई धारा 28 के खण्ड (ख) के अन्तर्गत यह घोषणा की गई थी कि किसी संविदा में कोई खण्ड ,जिसमें अधिकार के निर्वाचन का उपबंध किया गया है, शून्य हो जाएगा। नई धारा 28 इस प्रकार है:-

''धारा 28. कानूनी कार्यवाहियों में अवरोध के लिए करार शून्य

प्रत्येक करार,

(क) जिसके द्वारा उसके किसी पक्षकार को, किसी करार के अन्तर्गत या उसके संबंध में उसके अधिकारों के प्रवर्तन के लिए सामान्य अधिकरणों में आम कानूनी कार्यवाही द्वारा या जिसके अधिकारों के प्रवर्तन करने का समय सीमित हो जाता है, पूरी तरह निर्बन्धित किया गया है।

(ख) जो किसी संविदा के संबंध में या उसके अन्तर्गत विनिर्दिष्ट अवधि के समाप्त हो जाने पर किसी पक्षकार के अधिकार को निर्वापित करता है या उसके पक्षकार को किसी देयता से मुक्त करता है ताकि किसी पक्षकार को उसके अधिकारों के प्रवर्तन से किया जा सकता है तो वह उस सीमा तक शून्य होगा।''

(परन्तु नई धारा 28 के स्पष्टीकरणों के अन्तर्गत भविष्य तथा वर्तमान विवादों के माध्यस्थम की अनुमति दी गई है लेकिन ये वर्तमान संविदा से संगत नहीं है।)

संविदा अधिनियम की नई धारा 28(ख) को देखते हुए यदि किसी माध्यस्थम खण्ड में ऐसा कोई उपबंध है जिसके अन्तर्गत पक्षकार से माध्यस्थम करार में निश्चित समय के भीतर माध्यस्थम कार्यवाही आरम्भ करने के लिए कुछ कदम उठाने की गई हो और जिसके न होने पर दावा वर्जित हो जाता है तो ऐसा खण्ड शून्य होगा।

(देखिए, न्यायमूर्ति एस० के० चावला की 1996 के अधिनियम पर टीका का पृष्ठ 112 तथा न्यायमूर्ति वी० एन० मोहता की टीका का पृष्ठ 113, इस तरह के ''कालवर्जन खण्ड'' संविदा अधिनियम की नई धारा 28 लागू होने के बाद 8.1.1997 से शून्य हो गए हैं।)

बाद में यदि ऐसा कोई ,खण्ड शून्य है तो कठिनाई के आधार पर समयावधि बढ़वाने का प्रश्न जरूरी नहीं रह जाता। इस प्रकार धारा 43(3) का यह उपबंध भी 8.1.97 से अनावश्यक हो जाता है कि कोई पक्षकार कठिनाई से बचने के लिए न्यायालय से समयावधि बढ़ाए जाने की मांग कर सकता है।

आयोग ने वर्ष 2001 में स्थिति की पुनरीक्षा करते समय कहा था कि यदि धारा 28 में कानून में हुए इस परिवर्तन का ध्यान नहीं रखता और यदि यह बिना संशोधन किए 43(3) को यथावत् बने रहने देता है तो इससे कुछ संदेह उत्पन्न हो सकते हैं और यह आभास हो सकता है कि 8.1.97 से संविदा अधिनियम की धारा 28 में संशोधन हो जाने पर धारा 43(3) अभी भी बरकरार है।

2.34.3 अत: धारा 43(3) में निम्नलिखित स्पष्टीकरण जोड़कर स्थिति को स्पष्ट करने का निर्णय किया गया है:-

''स्पष्टीकरण--शंकाओं के निवारण के लिए एतद्द्वारा यह घोषित किया जाता है कि माध्यस्थम करार में किया गया ऐसा कोई उपबंध जिसमें यह व्यवस्था की गई हो कि ऐसा कोई भी दावा तब तक वर्जित हो जाएगा जब तक कि माध्यस्थम की कार्यवाही आरम्भ करने के लिए कुछ कदम, करार द्वारा निश्चित समय की भीतर नहीं उठाए जाते तो उस उपबंध को भारतीय संविदा (संशोधन) अधिनियम, 1996 की तारीख से शून्य माना जाएगा।''

2.35.1 धारा 43परिसीमन अधिनियम, 1963 के लागू होने के संबंध में धारा 43 में प्रस्तावित उपधारा (5) और (6)

बम्बई की सेमिनार में धारा 43 में एक कमी बतायी गई थी। परिसीमन अधिनियम, 1963 के प्रयोजनों

के लिए धारा 43(4) में अब जहां पंचाट को अन्तर्वलित अपास्त कर दिया गया हो, माध्यस्थम की कार्यवाही में लगायी गई अवधि को अपवर्जित कर दिया गया है।

2.35.2 लेकिन ऐसी अन्य स्थितियां है जहां माध्यस्थम करार के बारे में यह निर्णय लिया गया हो कि वह अब अस्तित्व में नहीं है या यह कि वह अब अकृत और शून्य हो गया है या अप्रिधिमान्य है। ऐसे मामले माध्यस्थम पंचाट के चरण से पूर्व अधिनियम की धारा 11 के अन्तर्गत, अब प्रस्तावित लचीले उपबंध को देखते हुए, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन करने के समय उत्पन्न हो सकते हैं। यदि इन दोनों में से कोई भी न्यायालय यदि यह निर्णय देता है कि माध्यस्थम के लिए कोई करार नहीं हुआ है या वह अमृत और शून्य या अप्रवर्तनीय या अप्रभावी है तो कोई माध्यस्थम नहीं हो सकता। (यह उपबंध 1940 वाले पुराने अधिनियम की धारा 33 के समान है जिसके बारे में विधि आयोग ने अपनी 76वीं रिपोर्ट में प्रस्ताव किया था कि परिसीमन के 1996 वाले अधिनियम के प्रयोजनों के लिए अवधि के वर्जन के लिए एक अलग उपबंध किया जाए।)

2.35.3 ऐसी ही स्थिति 1996 के अधिनियम की धारा 16(2) और (3) के अन्तर्गत उत्पन्न हो सकती है जहां अधिकारिता न होने का मामला माध्यस्थम खण्ड के दायरे से बाहर होने की दलीलें माध्यस्थम अधिकरण द्वारा स्वीकार कर ली जाती हैं या अपील पर न्यायालय द्वारा जिनकी पुष्टि कर दी जाती है (यदि इन दलीलों से इंकार कर दिया जाए तो मामला केवल पंचाट के बाद उत्पन्न हो सकता है, इस स्थिति का धारा 43(4) द्वारा समादेश कर लिया गया है। अतः हम प्रस्ताव करते हैं कि धारा 1 और धारा 16(2) और 16(3) से उत्पन्न होने वाले ऐसे मामलों का समादेश करने के लिए इसमें खण्ड (5) और (6) जोड़े जाएं। धारा 8 के अन्तर्गत ऐसा कोई प्रश्न पैदा नहीं होता क्योंकि यदि माध्यस्थम जारी नहीं रहता तो धारा 8 के अन्तर्गत फिर से कार्यवाही आरम्भ हो सकती है। ऐसे मामलों में कोई दिलार अस्तित्व में नहीं है, मध्यक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है।

2.35.4 प्रस्तावित संशोधन इस प्रकार है:

मूल अधिनियम की धारा 43 में उपधारा (4) के पश्चात् निम्नलिखित उपधारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:

"(5) किसी विवाद के संबंध में कार्यवाही आरम्भ करने के लिए परिसीमन अधिनियम, 1963 (1963 का 36) द्वारा विहित समय की संगणना करते समय, माध्यस्थम प्रारम्भ होने और नीचे उल्लिखित आदेशों की तारीख के बीच की अवधि को अपवर्जित किया जाएगा, अर्थात्–

(क) माध्यस्थम अधिकरण का ऐसा कोई आदेश जिसमें धारा 16 की उपधारा (2) या उपधारा (3) में निर्दिष्ट किसी दलील को स्वीकार किया गया हो;

(ख) न्यायालय द्वारा धारा 37 की उपधारा (2) के खण्ड (क) के अन्तर्गत किया गया कोई आदेश जिसके द्वारा खण्ड (क) के अन्तर्गत किए गए आदेश या आगे अपील, यदि कोई करार हो, पर उच्चतम न्यायालय का ऐसा कोई आदेश जिसमें पहले उल्लिखित आदेश की पुष्टि की गई हो;

(ग) ऐसा कोई आदेश जिसके द्वारा माध्यस्थम करार को अकृत और शून्य या अप्रभावी या अप्रिधिमान्य या अस्तित्व में न होना घोषित किया गया है और जो निम्नलिखित में किसी के द्वारा पारित किया गया हो–

(i) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं) से भिन्न माध्यस्थम के मामले में धारा 11 की उपधारा (13) के अन्तर्गत उच्च न्यायालय द्वारा या आगे अपील पर उच्चतम न्यायालय द्वारा;

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं) के मामले में धारा 11 की उपधारा (13) के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय द्वारा।

मूल अधिनियम की धारा 43 की उपधारा (3) में परन्तुकों के अन्तःस्थापन के संबंध में चर्चा पहले ही रिपोर्ट के पैरा 2.7.1 (ऊपर) के अन्तर्गत की जा चुकी है।

2.36 माध्यस्थम करार का अधिक्रमण–उपबंध के लिए दी गई दलील अस्वीकृत की गई

परामर्श-पत्र में यह प्रस्ताव किया गया था कि माध्यस्थम करार का अधिक्रमण करने के लिए 1940 के

के अधिनियम की धारा 19 जैसा उपबंध किया जाए। 1940 के अधिनियम की धारा 25 के परन्तुक में भी ऐसा उपबंध था। 1950 के अंग्रेजी अधिनियम में भी धारा 24(2) और 25(2) (ख) में इस प्रकार का उपबंध था। न्यायालय यह घोषणा कर सकता था कि मध्यस्थम करार का कोई प्रभाव नहीं होगा। यह करार के मामलों से संबंधित था या जहां मध्यस्थों को न्यायालय ने हटा दिया था। रसैल (पैरा 7.036) का कहना है कि इस उपचार का बहुत कम प्रयोग किया गया (प्रोपर्टी इनवेस्टमैन्ट्स (डवलेपमैंट) लिमिटेड बनाम बाई फील्ड बिल्डिंग सर्विसेज लिमिटेड (1985) 31 बिल्ड०एल०आर० 47 और यह कि 1996 के अधिनियम के अन्तर्गत यह उपचार उपलब्ध नहीं है। न्यायालय किसी रिक्ति को भर सकता है लेकिन माध्यस्थम करार को समाप्त करने के लिए सहमत होना पक्षकारों पर निर्भर करता है (इंग्लिश अधिनियम की धारा 23)

ऐसा प्रतीत होता है कि किसी मध्यस्थ को चुनौती देने की प्रक्रिया या कार्य करने की उसकी असफलता या असम्भाव्यता (14) तथा समापन और प्रतिस्थापन की शक्ति (धारा 15) पर्याप्त उपचार है। अतः माध्यस्थम करार के अधिक्रमण के लिए कोई उपबंध किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है।

2.37 विधि का प्रश्न न्यायालय को निर्दिष्ट करने हेतु मध्यस्थों को समर्थ बनाने के लिए उपबंध अस्वीकृत

1940 के अधिनियम की धारा 14(3) पर आधारित परामर्श-पत्र में एक प्रस्ताव किया गया था। इंग्लिश अधिनियम की धारा 45, पक्षकारों को, माध्यस्थम अधिकरण की अनुमति या आपसी सहमति से, किसी विधि-प्रश्न के बारे में, न्यायालय की राय प्राप्त करने के लिए समर्थ बनाता है यदि इससे लागत में पर्याप्त कमी होने की सम्भावना है।

परामर्श-पत्र पर हुए वाद-विवाद में यह सुझाव दिया गया था कि इससे माध्यस्थम की प्रक्रिया में विलम्ब हो सकता है। आयोग ऐसे उपबंध को सम्मिलित किए जाने के पक्ष में नहीं है।

2.38.1 त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम: भाग-एक में धारा 43क से 43घ (अध्याय-ग्यारह) प्रस्तावित

आधुनिक माध्यस्थम प्रणाली में, अनेक प्रकार के त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम हैं। उनमें कुछ "त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम" कहलाते हैं तथा कुछ अन्य को "द्रुत माध्यस्थम" तथा कुछ अन्य को "त्वरित माध्यस्थम" कहा जाता है (देखिए, खण्ड 10(1993) जरनल ऑफ इंटरनेशनल आर्बिट्रेशन, पृष्ठ 69, "व्हेन डार्विन्स मीट-फास्ट ट्रैक आर्बिट्रेशन एण्ड आई०सी०सी० एवं सम्प्रियन्स लेखक बैंजामिन डेविस एण्ड अदर्स)। हम अध्याय-ग्यारह में धारा 43क से 43घ और अनुसूची चार में जो प्रस्ताव किया था, वह पूरी तरह समयबद्ध त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम नहीं है बल्कि ऐसा माध्यस्थम है जहां पंचाट पारित करने के लिए प्रारम्भ में 6 महीने की अवधि दी जाती है जिसे पक्षकारों द्वारा तीन महीने तक और उसके बाद यदि पंचाट पारित नहीं होता तो धारा 29क की उपधारा (4) से (8) तक के अन्तर्गत परिकल्पित प्रक्रिया का तब तक पालन करना होता है जब तक कि पंचाट पारित न हो जाए। इसके अतिरिक्त हमने यह भी उपबंध किया है कि पंचाट को अपास्त करने का आवेदन धारा 2(1) (ड़) में उल्लिखित प्रधान न्यायालयों में नहीं बल्कि उच्च न्यायालय में दाखिल किया जाना चाहिए। इस प्रकार, जैसाकि नीचे बताया गया है, प्रधान न्यायालयों में मुकदमेबाजी का एक स्तर हटा दिया गया है।

विभिन्न माध्यस्थम संस्थाओं ने भी उन संस्थाओं द्वारा बनाए गए नियमों के त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के लिए उपबंध किया है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत पक्षकार त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम का विकल्प चुन सकते हैं और त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम की प्रक्रिया के अनुसार, पक्षकारों के बीच हुई सहमति के अनुसार निश्चित समय-सीमा में निर्देश के बारे में विनिश्चय करने हेतु माध्यस्थम प्रक्रिया आरम्भ करने से पूर्व माध्यस्थम अधिकरण से अनुरोध कर सकता है। उदाहरण के लिए, भारतीय माध्यस्थम परिषद के नियमों के नियम 43 से 57, वैकल्पिक विवाद संकल्प का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र, नई दिल्ली (आई०सी०ए०डी०आर०) के त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम नियम, 1996, अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के लंदन न्यायालय के नियमों के अनुच्छेद 9 में त्वरित माध्यस्थम का उपबंध है, चार्टर्ड इंस्टिट्यूट ऑफ आर्बिट्रेटर्स के लघु रूप माध्यस्थम नियम, 1999, चीनी अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक एवं व्यापार माध्यस्थम आयोग (सी०आई०ई०टी०ए०सी०) के माध्यस्थम नियम संक्षिप्त प्रक्रिया के बारे में हैं, विश्व की विभिन्न संस्थाओं द्वारा त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम को शासित करने के लिए निर्धारित किया गया है (देखिए, पी०ए० मोहता, माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996, पहला संस्करण, 2001)।

इस प्रकार त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के लिए उपबंध किए जाने की आवश्यकता है तथा उसके विस्तृत विवरण अधिनियम की अनुसूची में दिए गए हैं। अतः यह प्रस्ताव किया जाता है कि पक्षकारों को त्वरित प्रक्रिया

माध्यस्थम का विकल्प चुनने योग्य बनाने के लिए धारा 19 के पश्चात एक नई धारा 19क निम्नलिखित रूप में अन्त:स्थापित की जाए।

नई प्रस्तावित धारा 43क में सर्वप्रथम यह उपबंध किया गया है कि किसी न्यायालय में कानूनी कार्यवाही के पक्षकारों या माध्यस्थम करार के पक्षकारों को उनके द्वारा एकल नाम वाले माध्यस्थम द्वारा माध्यस्थम को त्वरित प्रक्रिया के लिए सहमत होना होगा। यदि वे इसके लिए सहमत होते हैं तो अनुसूची में दी गई प्रक्रिया लागू होगी। माध्यस्थम करार, यदि कोई है, में दी गई प्रक्रिया लागू नहीं होगी तथा अनुसूची में दी गई प्रक्रिया लागू होगी। यदि कोई ऐसा पक्ष रह जाता है जिसके बारे में अनुसूची में कुछ नहीं कहा गया है वहां यथासंभव अधिनियम के उपबंध ही लागू होंगे।

अनुसूची में एक अन्य पहलू यह है कि सामान्यत: माध्यस्थम 6 महीने में पूरा किया जाना चाहिए तथा पंचाट को अपास्त करने का आवेदन धारा 2(1)(ड़) के अन्तर्गत उल्लिखित न्यायालय में नहीं बल्कि उच्च न्यायालय में दाखिल किया जाता है तथा उच्च न्यायालय को मामले का निपटारा विरोधी पक्षकारों को नोटिस भेजकर तीन महीने के भीतर करना होगा।

2.38.2 भाग–एक में नए अध्याय–ग्यारह का अन्त:स्थापन

28. मूल अधिनियम की धारा 43 के पश्चात निम्नलिखित अध्याय का अन्त:स्थापन किया जाएगा, अर्थात्:—

"अध्याय–ग्यारह

एक सदस्यीय त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण तथा प्रक्रिया माध्यस्थम

त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के द्वारा विवादों का निपटारा

"43क. (1) धारा 8 में निर्दिष्ट किसी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष चल रही किसी कार्यवाही या धारा 8क में निर्दिष्ट न्यायालयों में से किसी न्यायालय के समक्ष चल रही कानूनी कार्यवाही या किसी माध्यस्थम करार या धारा 11 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायलय के समक्ष दाखिल किसी आवेदन के पक्षकार, यथास्थिति, माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति से पूर्व या नियुक्ति के बाद किसी स्तर पर, इस धारा, धारा 43ख से 43घ तथा चौथी अनुसूची (जिसे इसमें इसके पश्चात त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम कहा जाएगा) में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम के द्वारा अपने विवादों का समाधान कराने के लिए लिखित रूप में सहमत हो सकेंगे।

(2)यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट पक्षकार उपर्युक्त उपधारा के अन्तर्गत त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के द्वारा अपने विवादों का समाधान कराने के लिए सहमत हो जाते हैं तो उक्त दोनों पक्षकारों के बीच सहमति से नियुक्त माध्यस्थम अधिकरण को त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण कहा जाएगा।

(3) माध्यस्थम करार में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी —

(i) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण में एक एकमात्र मध्यस्थ होगा;

(ii) वह एकल मध्यस्थ पक्षकरों द्वारा सर्वसम्मति से चुना जाएगा;

(iii) मध्यस्थ को देय फीस और ऐसी फीस के संदाय का तरीका ऐसा होगा जैसाकि एकल मध्यस्थ तथा पक्षकारों के बीच सहमति से तय हुआ हो;

(iv) चौथी अनुसूची में निर्धारित प्रक्रिया (जिसे इसमें इसके पश्चात त्वरित प्रक्रिया कहा जाएगा) लागू होगी।

"43ख अधिनियम के अन्य उपबंध उपांतरणों के अध्यधीन लागू होंगे

जहां तक ऐसे मामलों का संबंध है जिनका उपबंध चौथी अनुसूची में नहीं किया गया है, उनके संबंध में इस भाग के अन्य उपबंध त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम पर उसी तरह लागू होंगे जैसे वे निम्नलिखित उपांतरणों के अध्यधीन अन्य माध्यस्थमों पर लागू होते हैं, अर्थात्:—

(क) (i) माध्यस्थम अधिकरण को निर्देशों में, जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, त्वरित

प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण को निर्देश सम्मिलित किया माना जाएगा; तथा

(ii) न्यायालयों को निर्देश से, धारा 27 तथा धारा 31क के सिवाय, "उच्च न्यायालय" को निर्देश माना जाएगा;

(ख) धारा 33 की उपधारा (1) से (4) में, "तीस दिन" शब्द के स्थान पर जहां कहीं भी वे आते हैं, "पंद्रह दिन" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे।

(ग) धारा 34 में—

(i) उपधारा (3), "तीन महीने" शब्दों के स्थान पर "तीस दिन" और "तीस दिन" शब्दों के स्थान पर क्रमशः "पंद्रह दिन" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे;

(i) उपधारा (5) में "साठ दिन" शब्दों के स्थान पर "तीस दिन" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे;

(ii) उपधारा (6) में "तीस दिन" और "तीस दिन" शब्दों के स्थान पर क्रमशः "पंद्रह दिन" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे;

(घ) धारा 37क में, "छः महीने" शब्दों के स्थान पर "तीन महीने" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे।

(ङ) धारा 37 की उपधारा (1) में अपील का उपबंध, धारा 37 की उपधारा (1) के खण्ड (क) और (ख) में निर्दिष्ट आदेशों पर लागू नहीं होगा।

43ग पश्चात्वर्ती आवेदनों को दाखिल करने के लिए समुचित न्यायालय

इस भाग में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में लेकिन धारा 43ख के खण्ड (क) के उपखण्ड (ii) के अधीन अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी जहां किसी माध्यस्थम करार के संबंध में, इस भाग में उल्लिखित ढंग से किसी न्यायालय के समक्ष कोई आवेदन किया जाता है या किए जाने के लिए अपेक्षित है, वहां ऐसा कोई आवेदन उच्च न्यायालय में किया जाएगा और उस करार से उत्पन्न होने वाले सभी पश्चात्वर्ती आवेदन तथा माध्यस्थम की कार्यवाही किसी अन्य उच्च न्यायालय में नहीं बल्कि उसी उच्च न्यायालय में की जाएगी।

इस अध्याय के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय

43. धारा 43ख और धारा 43ग में "उच्च न्यायालय" को निर्देश का अर्थ उस उच्च न्यायालय को निर्देश किया जाना लगाया जाएगा जिसकी प्रादेशिक सीमाओं में यथास्थिति, प्रधान सिविल न्यायालय या धारा 2 की उपधारा (1) के खण्ड (ङ) में निर्दिष्ट नगर सिविल न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश का न्यायालय स्थित है।"

आयोग सिफारिश करता है कि मूल अधिनियम की तीसरी अनुसूची के बाद निम्नलिखित चौथी अनुसूची (जिसे इसमें इसके पश्चात त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम कहा जाएगा) अन्तःस्थापित की जाए:—

"चौथी अनुसूची

त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम

(देखिए, भाग-एक, अध्याय-ग्यारह)

त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण का गठन

1. (1) धारा 43क की उपधारा (1) के अन्तर्गत त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थमों के प्रयोजन के लिए त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण उस तारीख से गठित हुआ माना जाएगा, जिस तारीख को पक्षकारों ने एकमात्र मध्यस्थ की सहमति प्राप्त करने के पश्चात लिखित में यह स्वीकार किया हो कि धारा 43क की उपधारा (1) के अन्तर्गत एकमात्र मध्यस्थ ही त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण होगा।

(2) पक्षकार उक्त करार के विषय में एकमात्र मध्यस्थ को उसी दिन सूचित करेंगे।

त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण के गठन की तारीख से प्रक्रिया

2. इस अनुसूची में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया, त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण के गठन की तारीख से, धारा 43क की उपधारा (1) के अन्तर्गत सभी त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थमों पर लागू होगी।

प्रक्रिया:—

3. (1) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण के गठन के पंद्रह दिन के भीतर वह व्यक्ति जिसने वाद उठाया है (जिसे इसमें इसके पश्चात दावेदार कहा जाएगा), अधिकरण और विरोधी पक्षकारों को (जिन्हें इसमें इसके पश्चात प्रतिवादी कहा जाएगा) निम्नलिखित चीजें एक साथ भेजेगा:-

(क) दावे का एक विवरण जिसमें तथ्य, विवाद के मुद्दे तथा दावा की गई राहत का उल्लेख किया जाएगा;

(ख) अपने मामले के समर्थन में दस्तावेजी साक्ष्य, यदि कोई हो;

(ग) जहां निर्भरता किसी साक्षी के परिसाक्ष्य पर रखी गई है (पक्षकार के परिसाक्ष्य सहित), साक्षी के लिखित शपथ पत्र की प्रति;

(घ) जहां निर्भरता किसी विशेषज्ञ की राय पर रखी गई है, वहां उस विशेषज्ञ से संबंधित विवरण, उसकी योग्यताएं तथा अनुभव और उसकी राय की एक प्रति;

(ङ) परिप्रश्न, यदि कोई हो, की सूची;

(च) दस्तावेज, यदि कोई हो, तो उनके प्रकटीकरण या प्रस्तुतीकरण के लिए आवेदन और उसकी सुसंगति का उल्लेख;

(छ) संवाद और पत्र व्यवहार को तेज करने के प्रयोजन के लिए सभी दावेदारों और पक्षकारों के पूरे, ई-मेल और फैक्स के पतों और टेलीफोन नम्बर, यदि कोई हो, के सहित;

(ज) कोई अन्य सामग्री जो आवेदक द्वारा संगत समझी गयी हो;

(2) प्रतिवादी दावे के विवरण तथा उपपैरा (1) में उल्लिखित दस्तावेजों की प्राप्ति के बाद पंद्रह दिन के भीतर, त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण तथा दावेदार को एक साथ, अपना प्रतिवाद विवरण, दस्तावेजी साक्ष्य, शपथ-पत्र सहित साक्षी का परिसाक्ष्य (पक्षकार के परिसाक्ष्य सहित) और उसके समर्थन में विशेषज्ञ की राय, यदि कोई हो, तथा प्रतिदावे, यदि कोई हों, तथा उनकी पुष्टि करने वाले दस्तावेज।

(3) इस अनुसूची में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया ऐसे सभी प्रतिदावों पर लागू होगी जैसी कि वह दावों पर लागू होती है।

(4) प्रतिवाद विवरण या प्रतिदावे की प्राप्ति के पंद्रह दिन के भीतर, दावेदार, त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण और प्रतिवादियों को अपना प्रत्युत्तर तथा प्रतिदावे का प्रतिवाद विवरण भेजेगा।

(5) प्रतिदावे के प्रतिवाद विवरण की प्राप्ति के पंद्रह दिन के भीतर, प्रतिवादी, उक्त विवरण के बारे में अपना प्रत्युत्तर त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण तथा दावेदार को साथ-साथ भेजेगा।

(6) दस्तावेजों के प्रकटीकरण या प्रस्तुतीकरण की अनुमति दे दिए जाने पर, पक्षकारों को अपने अनुपूरक विवरण, यदि कोई हों, विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण और उसके साथ ही उसकी प्रतियां एक दूसरे को देने की अनुमति दी जाएगी।

(7) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण तर्कों और दस्तावेजों, साक्ष्य के शपथ-पत्रों, विशेषज्ञ की राय, यदि कोई हो, तथा पक्षकारों द्वारा दाखिल किए गए लिखित निवेदनों के आधार पर विवादों का विनिश्चय करेगा।

(8) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण किसी साक्षी से मौखिक प्रश्न पूछे जाने की अनुमति दे सकेगा और जिस ढंग से साक्ष्य रिकार्ड किया जाएगा या मौखिक साक्ष्य के स्थान पर शपथ पत्र प्राप्त किए जाएंगे, उसका तरीका निर्धारित कर सकेगा।

(9) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण यदि यह समझता है कि किसी पक्षकार द्वारा मौखिक साक्ष्य के लिए किया गया अनुरोध औचित्यपूर्ण है या जहां त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण स्वयं

यह समझता है कि इस तरह का मौखिक साक्ष्य आवश्यक है तो वह अन्यथा मौखिक साक्ष्य पेश करने की अनुमति दे सकता है।

(10) इसके अतिरिक्त, त्वरित माध्यस्थम अधिकरण उसके सामने दिए गए तर्कों, दस्तावेजों और रखे गए साक्ष्य के अतिरिक्त पक्षकारों से और आगे जानकारी या स्पष्टीकरण मांग सकता है।

कार्उंसेल द्वारा प्रतिनिधित्व

4. त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण पक्षकारों को स्वयं उपस्थित होने या अपने वाद का संचालन स्वयं या आपने कार्उंसेल के माध्यम से या पक्षकारों द्वारा उनका प्रतिनिधित्व करने के लिए विधिवत प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा किए जाने की अनुमति देगा।

तर्कों की लिखित टिप्पणियां या मौखिक बहस

5. साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण, सभी पक्षकारों को अपने तर्कों की लिखित टिप्पणियां दाखिल करने का निदेश दे सकेगा और उसके अतिरिक्त मौखिक तर्क की अनुमति दे सकेगा तथा उसके लिए एक समय सूची निश्चित करेगा तथा मौखिक बहस की लम्बाई भी सीमित कर सकेगा।

कार्यवाही का संचालन

6. (1) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण अपनी कार्यवाही का ऐसे ढंग से संचालन करेगा कि माध्यस्थम कार्यवाही यथासंभव दिन प्रतिदिन और प्रत्येक अवसर पर कम से कम तीन दिन लगातार चले।

(2) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण सामान्यतः समय-सूची इस ढंग से निश्चित करेगा ताकि कार्यवाही प्रतिदिन 10.30 बजे प्रातः से 1 बजे अपराह्न तथा 2.00 बजे अपराह्न से 4.30 बजे अपराह्न तक लगातार चले।

पक्षकार प्रक्रिया तथा समय-सूची से आबद्ध होंगे

7. पैरा (3) और (5) के अन्तर्गत निश्चित समय-सूची तथा त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण द्वारा पैरा (6) के अन्तर्गत विनिर्दिष्ट प्रक्रिया पक्षकारों के लिए आबद्धकर होगी।

विशेषज्ञों का परामर्श

8. (1) माध्यस्थम के चलने की अवधि के दौरान किसी भी समय और पंचाट पारित किए जाने से पूर्व, त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण, अपने स्वविवेक से, यदि आवश्यकता हो, विवाद की विषय-वस्तु के संबंध में सहायता के लिए, पक्षकारों के खर्चे पर विशेषज्ञ या तकनीकी अर्हता प्राप्त या योग्य एकाउंटेन्ट से परामर्श कर सकेगा और उपर्युक्त व्यक्ति की रिपोर्ट पक्षकारों को भेजेगा ताकि वे अपना उत्तर दाखिल कर सकें।

(2) यदि त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण बाद में स्वयं या पक्षकारों के अनुरोध पर यह समझता है कि उपपैरा (1) में निर्दिष्ट उपर्युक्त व्यक्तियों में से किसी से स्पष्टीकरण मांगना या उसकी जांच करना या किसी अन्य व्यक्ति की जांच करना जरूरी है तो वह उक्त व्यक्ति को लिखित में स्पष्टीकरण जांच के लिए साक्षी के रूप में बुला सकेगा।

पक्षकारों द्वारा चूक के मामलों में प्रक्रिया

9.(1) यदि किसी पक्षकार की ओर से इस अनुसूची में विनिर्दिष्ट समय-सीमाओं या त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण द्वारा निश्चित समय-सीमाओं का पालन करने में चूक होती है या धारा 17 अथवा इस अनुसूची के अन्तर्गत त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण द्वारा जारी किन्हीं अन्तरिम आदेशों या निदेशों का उल्लंघन होता है तो त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण उसका अनुपालन करने के लिए और समय देते हुए चूककर्ता पक्षकार के विरुद्ध अनिवार्य आदेश पारित कर सकता है जिसमें अन्तरिम आदेश या निदेश के संबंध में समुचित प्रतिभूति उपलब्ध कराने के अनिवार्य आदेश सम्मिलित हैं।

(2) यदि त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण का यह समाधान हो जाता है कि माध्यस्थम को कोई पक्षकार अनुचित रूप से या जानबूझ कर माध्यस्थम की कार्यवाही में या अनिवार्य आदेशों के कार्यान्वयन

में विलम्ब कर रहा है तो त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण चूककर्ता पक्षकार पर ऐसी लागत जो वह उचित समझे, अधिरोपित कर सकेगा या संबंधित पक्षकार के तर्कों को रद्द करते हुए या उक्त पक्षकार के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष पर पहुंचते हुए या महत्वपूर्ण निष्कर्ष अपवर्जित करते हुए आदेश पारित कर सकेगा और यदि उपधारा (1) में अपेक्षित रूप में माध्यस्थम की लागत के लिए प्रतिभूति नहीं दी जाती तो दावे को खारिज किया जा सकेगा।

(3) उपधारा (2) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, त्वरित माध्यस्थम अधिकरण, यदि दावेदार मध्यस्थम की कार्यवाही का अभियोजन प्रभावी ढंग से नहीं करता या दिए गए समय के अन्दर दस्तावेज दाखिल नहीं करता या अधिकरण के अनिवार्य आदेशों का संदाय करने से इंकार करता है, तो दावे को खारिज कर सकता है।

परन्तु दावा विवरणया प्रतिदावे का विवरण दाखिल न कर पाना अपने आप में, दावे के विवरण या प्रतिदावे में, यथास्थिति, किए गए अभिकथनों की स्वीकृति नहीं माना जाएगा।

(4) यदि विरोधी पक्षकार अपना प्रतिवाद दाखिल नहीं करता या अपने प्रतिवाद का अभियोजन प्रभावी ढंग से नहीं करता है या दिए गए समय के अन्दर अपने दस्तावेज दाखिल नहीं करता या अधिकरण के अनिवार्य आदेशों का पालन करने से इंकार करता है तो त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण एकपक्षीय पंचाट दे सकता है।

त्वरित प्रक्रिया पंचाट छः महीने में पारित किया जाएगा

10. (1) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण अपने गठन की तारीख से 6 महीने के अन्दर या बढ़ाई गई ऐसी अवधि के भीतर जो उपधारा (2) से (4) में विनिर्दिष्ट की गई हैं, पंचाट पारित कर देगा।

(2) पक्षकार, आपसी सहमति से, उपधारा (1) में दी गई अवधि के तीन महीने से अनधिक अवधि तक आगे बढ़ा सकते हैं।

(3) यदि त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम पंचाट उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि और उपधारा (2) के अन्तर्गत पक्षकारों की सहमति से तय अवधि में नहीं दिया जाता तो माध्यस्थम कार्यवाही, उपधारा (4) के उपबंधों के अध्यधीन, उस समय तक निलम्बित रहेगी जब तक कि त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के किसी पक्षकार द्वारा समय बढ़ाए जाने के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन नहीं किया जाता या जहां कोई पक्षकार पूर्वोक्त प्रकार से आवेदन नहीं करता तो जब तक माध्यस्थम अधिकरण द्वारा ऐसा कोई आवेदन नहीं किया जाता।

(4) धारा 29क की उपधारा (4) से (8) के उपबंध, जहां तक हो सकेगा, उपधारा (3) में निर्दिष्ट आवेदन के निपटारे के लिए उच्च न्यायालय पर तब तक लागू होंगे जब तक पंचाट पारित नहीं किया जाता।

त्वरित प्रक्रिया पंचाट में कारणों का उल्लेख किया जाएगा

11. त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण जब तक पक्षकारों के बीच में यह सहमति न हो गई हो कि कोई कारण दिए जाने की आवश्यकता नहीं है या पंचाट विवादों के निपटारे पर आधारित है तब तक पैरा 10 में निर्दिष्ट समय-सीमा को ध्यान में रखते हुए पंचाट पारित करेगा और उस पंचाट के कारणों का उल्लेख करेगा।

2.39.1 धारा 82. उच्च न्यायालय के नियम

आयोग को पता चला है कि भारत में अधिकांश माध्यस्थमों का संचालन केवल एक या दो घंटे के लिए बड़े नैमित्तिक ढंग से किया जाता है और मामला सामान्यतः स्थगित कर दिया जाता है। ऐसे प्रत्येक अवसर पर वकील या मध्यस्थ और अधिक लम्बे समय तक मामले को स्थगित रखने का अनुरोध करते हैं। वास्तव में, वकील अन्य कार्यों में व्यस्त रहते हैं तथा माध्यस्थमों के सामने भी अन्य मामले सूचीबद्ध होते हैं। 1996 के अधिनियम के बाद भी वकीलों और मध्यस्थों के रवैये में कोई बहुत परिवर्तन नहीं हुआ है।

यह प्रस्ताव किया जाता है कि उच्च न्यायालयों को इस योग्य बनाया जाए कि वे माध्यस्थम को इस बात के लिए विवश करने के लिए नियम बना सकें कि प्रत्येक अवसर पर माध्यस्थम की कार्यवाही सवेरे 10.30 बजे से 4.30 बजे अपराह्न तक कम से कम पांच घण्टे चले जिसमें बीच में एक घण्टे का मध्यावकाश रखा जाए।

उच्च न्यायालय एक समान नियम बना सके, इसके लिए हमने धारा 82 में यह प्रस्ताव किया था कि इस संबंध में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति सभी उच्च न्यायालयों को मार्गदर्शी सिद्धांत जारी कर सकेंगे।

2.39.2 अतः हम धारा 82 में निम्नलिखित संशोधन करने की सिफारिश करते हैं—

धारा 82 में संशोधन

मूल अधिनियम की धारा 82 को उसकी उपधारा (1) के रूप में पुनःसंख्यांकित किया जाएगा और इस प्रकार पुनःसंख्यांकित उपधारा (1) के पश्चात् निम्नलिखित उपधारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:–

"(2) उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना निम्नलिखित के संबंध में नियम बनाये जाएंगे, अर्थात्:–

(क) वह रीति जिससे माध्यस्थम कार्यवाही का संचालन किया जाएगा;

(ख) दिनों की संख्या जिनके लिए अधिकरण की बैठक के प्रत्येक अवसर पर माध्यस्थम की कार्यवाही का निरन्तर संचालन किया जाएगा;

(ग) समय-सूची और घंटों की संख्या जितने समय प्रतिदिन कार्यवाही का संचालन करना होगा;

(घ) धारा 23 की उपधारा (1क) के प्रयोजनों के लिए अभिवचनों को दाखिल किए जाने की समय-सूची;

(ङ) धारा 24 की उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए साक्ष्य रिकार्ड करने और तर्क प्रस्तुत करने की समय-सूची;

(च) धारा 29 की उपधारा (6) के निर्दिष्ट माध्यस्थम अधिकरण द्वारा अपनाई जाने वाली भावी प्रक्रिया के संबंध में समय-सूची;

(3) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति उपधारा (2) में निर्दिष्ट मदों और माध्यस्थम अधिकरण द्वारा अपनाई जाने वाली अन्य प्रक्रियाओं के संबंध में उच्च न्यायालयों को मार्गदर्शी सिद्धांत जारी कर सकेंगे ताकि सभी उच्च न्यायालयों द्वारा एक जैसे नियम बनाए जा सकें।"

2.39.3 धारा 84. भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी माध्यस्थम के संबंध में माध्यस्थों के लिए निश्चित की जाने वाली फीस के संबंध में धारा 84 के अंतर्गत नियम बनाने की अनुमति के लिए उपबंध प्रस्तावित किया गया

भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी माध्यस्थम के संबंध में किसी भी दर पर फीस निश्चित किए जाने के बारे में अनेक सुझाव दिए गए हैं।

2.39.4 यह बताया गया है कि कई मामलों में देशी माध्यस्थम में दैनिक आधार या किसी दिन प्रति सैशन या घंटों के आधार पर फीस निश्चित किए जाने से पक्षकारों पर विशेष रूप से उस समय जबकि माध्यस्थम वर्षों तक चलता रहता है, पर्याप्त प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। मुम्बई सेमिनार में कुछ सुझाव दिए गए थे। मुम्बई सेमिनार में सुझाए गए उपबंध पर हमने विचार किया है और हम उसके संशोधित संस्करण का प्रस्ताव करते हैं। एक तरीका यह है कि मध्यस्थों को एकमुश्त राशि निश्चित करने की अनुमति दी जाए। दूसरा तरीका यह है कि उन्हें दैनिक फीस के आधार पर कार्य करने की अनुमति दी जाए बशर्ते कि वे प्राप्तव्य अधिक फीस निश्चित कर दें। इन दोनों ही स्थितियों में फीस में और वृद्धि केवल न्यायालय द्वारा की जाए। हम सिफारिश करते हैं कि धारा 84 के अन्तर्गत निम्नलिखित मार्गदर्शी सिद्धांतों के आधार पर नियम बनाए जाएं–

(क) माध्यस्थम की कार्यवाही की पहली सुनवाई में या उसके तत्काल पश्चात् माध्यस्थम अधिकरण अपने सदस्यों द्वारा ली जाने वाली फीस नियत करेगा।

(ख) प्रत्येक मध्यस्थ द्वारा एकमुश्त आधार पर फीस वसूल की जा सकेगी जिसमें पंचाट पारित किए जाने तक की अवधि शामिल होगी।

(ग) मध्यस्थ द्वारा प्रतिदिन या प्रतिदिन प्रति सैशन या प्रति घंटे के आधार पर फीस ली जाएगी परन्तु यह माध्यस्थम मध्यस्थ को देय कुल फीस की अधिकतम सीमा के अध्यधीन होगी।

(घ) खण्ड (क) में निर्धारित ऐसी एकमुश्त फीस या खण्ड (ख) में उल्लिखित फीस की अधिकतम सीमा, पक्षकारों की सहमति या माध्यस्थम अधिकरण के सभी सदस्यों द्वारा न्यायालय को किए गए आवेदन पर न्यायालयों द्वारा पारित आदेशों के सिवाए किसी भी मध्यस्थ द्वारा बढ़ाई नहीं जा सकेगी।

(ङ) खण्ड (घ) के अन्तर्गत आदेश पारित करते समय न्यायालय माध्यस्थम कार्यवाही में अन्तर्ग्रस्त कार्य के परिणाम, लगने वाले समय और जिस ढंग से कार्यवाही का संचालन किया गया है, पक्षकारों के आचरण तथा अन्तर्ग्रस्त और काम और अतिरिक्त अपेक्षित समय एवं अन्य संगत कारकों को ध्यान में रखेगा।

हम आशा करते हैं कि जब कभी भी ये नियम बन जाएंगे, इनसे फीस को विनियमित करने में मदद मिलेगी तथा माध्यस्थमों का निपटारा तेजी से होगा।

2.39.5 धारा 31क के अन्तर्गत रजिस्टर में उल्लिखित विवरणों के संबंध में भी नियम बनाए जाने चाहिए। अत: यह सुझाव दिया गया है कि उसके लिए अधिनियम की धारा 84 में एक नई उपधारा (1क) अन्त:स्थापित करके निम्नलिखित एक उपबंध शामिल किया जाना चाहिए:-

"(1क) उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, निम्नलिखित के संबंध में नियम बनाए जा सकेंगे:-

(क) वह रीति जिससे माध्यस्थम अधिकरणों की फीस तथा उससे संबंधित प्रक्रिया निश्चित की जा सकेगी;

(ख) धारा 31क की उपधारा (4) के खण्ड (च) के अन्तर्गत रजिस्टर में दर्ज करने के लिए अपेक्षित अन्य विवरण।"

2.40 प्रकीर्ण मदें

2.4.1 धारा 36. जिस स्थान पर प्रतिवादी की सम्पत्ति स्थित है, सीधे उसी स्थान पर पंचाट को प्रवर्तित करने का सुझाव अस्वीकृत किया गया।

यह सुझाव दिया गया है कि ऐसा कोई उपबंध होना चाहिए जिससे पंचाट को सीधे उन स्थानों पर कार्यान्वित किया जा सके जहां "निर्णय के ऋणदाता की सम्पत्ति" उपलब्ध है।

यह सुझाव प्रथम दृष्टया आकर्षक प्रतीत होते हैं यदि कोई व्यक्ति निष्पादन आवेदनों को भेजने के या आवेदनों के निपटारे में विलम्ब को ध्यान में रखता है। लेकिन इसमें व्यवहारिकताओं पर कई भारी कठिनाईयां हो सकती है। उदाहरण के लिए, मानलो, पंचाट बम्बई में पारित किया गया है और जिस सम्पत्ति के विरुद्ध निष्पादन की मांग की गई है वह कलकत्ता में है। यदि पंचाट को सीधे कलकत्ता में ही निष्पादित करने की अनुमति दे दी जाए तो क्या होगा यदि पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन दाखिल करने की समय सीमा के भीतर ऐसा आवेदन बम्बई में दाखिल कर दिया जाता है। इससे दो न्यायालयों में समनान्तर कार्यवाही आरम्भ हो जाएगी जिससे पर्याप्त भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो सकती है और उसके परिणामस्वरूप किसी एक पक्षकार पर गम्भीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

परामर्श दस्तावेज पर चर्चा के दौरान यह विचार व्यक्त किया गया था कि इस प्रकार निष्पादन की अनुमति पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन दाखिल करने की अवधि समाप्त होने के बाद दी जा सकती है। लेकिन तब भी परिसीमन अधिनियम, 1964 की धारा 5 के अन्तर्गत आवेदन करने के साथ पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन करने में जितना विलम्ब होगा, वहां वही समस्या उत्पन्न हो सकती है।

अत: यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया गया।

2.40.2 एक प्रश्न

यह बताया गया है कि यदि तीन मध्यस्थ हों और उनमें से एक-एक करोड़ रुपए तथा दूसरा 1.50 करोड़ रुपए

तथा तीसरा 1.25 करोड़ रुपए का पंचाट पारित करता है तो क्या होगा और इस प्रकार के मुद्दों का निपटान करने के लिए कुछ उपबंध करना पड़ेगा।

इस पहलू से कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होती। उपर्युक्त उदाहरण में बहुमत निर्णय 1.25 करोड़ रुपए होगा (1.50 करोड़ रुपए तथा 1.25 करोड़ रुपए को देखते हुए)। इस प्रकार की सभी सम्भाव्य आकस्मिकताओं से निपटने के लिए कानून में उपबंध नहीं कर सकते।

2.40.3 मध्यस्थों को हटाया जाना—सुझाव अस्वीकृत किया गया

यह सुझाव दिया गया है कि मध्यस्थ को हटाए जाने के लिए अधिनियम में उपबंध अन्तर्विष्ट नहीं है। यह कहा गया है कि पूरी तरह देशी तथा तदर्थ अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों (अर्थात गैर-संस्थागत) के मामले में ऐसी शक्ति आवश्यक नहीं है। यह सुझाव दिया गया है कि संस्थागत माध्यस्थमों के लिए एक अलग उपबंध आवश्यक है। हम समझते है कि ये प्रक्रियायें केवल पूरी तरह देशी माध्यस्थमों के लिए उपयुक्त हैं।

इंग्लिश अधिनियम की धारा 24(1) मध्यस्थ को न्यायालय द्वारा निम्नलिखित आधारों पर हटाए जाने के बारे में है:–

"(क) कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जो उसकी निष्पक्षता के बारे में न्यायपरक शंकाओं को जन्म देती हैं।

(ख) कि उसके पास माध्यस्थम करार द्वारा अपेक्षित अर्हतायें नहीं है।

(ग) कि वह कार्यवाही का संचालन करने के लिए शारीरिक या मानसिक रूप से अक्षम है या ऐसा करने की उसकी क्षमता के बारे में न्यायपरक शंकाएं हैं।

(घ) कि वह–

(i) कार्यवाही का समुचित रूप से संचालन करने, या

(ii) कार्यवाही का संचालन करने या पंचाट पारित करने में किसी वांछनीय दस्तावेजों का प्रयोग करने में,

असफल रहा या इंकार कर दिया है और यदि उसे हटाया नहीं गया तो आवेदक के साथ पर्याप्त अन्याय हुआ है या कारित होगा।"

जहां तक संस्थागत माध्यस्थम (देशी) का संबंध है, यह सुझाव दिया गया है कि उसके लिए एक अलग प्रक्रिया जरूरी है। इस प्रकार के मामलों में, जब तक संबंधित संस्था के समक्ष उसके नियमों के अनुसार उपचार चूक नहीं जाते तब तक न्यायालय द्वारा उपचार की अनुमति नहीं दी जा सकती। इंग्लिश अधिनियम की धारा 24(2) के अन्तर्गत ऐसे मामलों की व्यवस्था है तथा यह धारा इस प्रकार है:

"धारा 24. यदि ऐसा कोई माध्यस्थम या अन्य संस्था या व्यक्ति है जिसमें पक्षकारों द्वारा मध्यस्थ को हटाने की शक्ति निहित की गई है तो न्यायालय, जब तक उसका यह समाधान नहीं हो जाता कि आवेदक ने पहले उस संस्था या व्यक्ति के उपलब्ध उपाय का प्रयोग कर लिया है, मध्यस्थ को हटाने की अपनी शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा।"

इसके अतिरिक्त धारा 24(3) के अन्तर्गत किसी आवेदन के किए जाने तक माध्यस्थम कार्यवाही जारी रह सकती है। धारा 24(4) मध्यस्थ को हटाए जाने की स्थिति में मध्यस्थ को देय फीस के बारे में है।

आई॰सी॰सी॰ नियम, 1998 में भी आई॰सी॰सी॰ न्यायालय द्वारा इस प्रकार हटाए जाने का उपबंध है (यह उपबंध मॉडल विधि में नहीं है)। यह व्यवस्था पक्षकारों द्वारा चुनौती दिए जाने पर हटाए जाने से अलग है। जहां नियम 12 (एक) पक्षकारों द्वारा चुनौती से संबंधित है, वहीं नियम 12(ii), आई॰सी॰सी॰ न्यायालय को हटाये जाने की शक्ति के बारे में है। ये उपबंध इस प्रकार हैं:

नियम 12: (i) मध्यस्थ की मृत्यु हो जाने पर, मध्यस्थ का त्यागपत्र न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिए जाने पर या न्यायालय द्वारा चुनौती स्वीकार कर लिए जाने पर या सभी पक्षकारों के अनुरोध पर मध्यस्थ को प्रतिस्थापित किया जाएगा।

(ii) किसी मध्यस्थ को, कोई न्यायालय जब यह निश्चय कर लेता है कि उसे विधितः या वस्तुतः अपने कृत्यों के निर्वहन से रोका गया है या वह अपने कृत्यों का निर्वहन नियमों के अनुसार या विहित समय-सीमा के अन्दर नहीं कर रहा है तो, अपनी पहल से हटा सकता है।''

यहां यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त आई॰सी॰सी॰ नियमों के खण्ड (i) में भी ऐसी परिस्थिति का निर्देश है जहां सभी पक्षकार मध्यस्थों को बदलने का अनुरोध करते हैं

फोचार्ड आदि (1999) पैरा 998 में, हटाए जाने के उपबंध का इस प्रकार समर्थन करते हैः

''हालांकि यह उपबंध बहुत कम लागू किया जाता है, लेकिन यह सशक्त निवारक है और इसका पूर्ण औचित्य है। हालांकि गैर सरकार न्यायाधीशों के रूप में मध्यस्थों को पक्षकारों की तुलना में एक प्रकार की उन्मुक्ति प्राप्त है लेकिन जिन संस्थाओं ने उनकी नियुक्ति की है उनके प्रति वे अपने कृत्यों के निष्पादन के मामले में संविदात्मक रूप से निर्भर रहने योग्य रहते हैं। यह संस्था यदि यह सिद्ध हो कि मध्यस्थम का आयोजन और पर्यवेक्षण करने में चूक या लापरवाही हुई है तो पक्षकारों पर देनदारी लग सकती है।''

हम नहीं सोचते कि मध्यस्थों को हटाये जाने के लिए कोई विशेष उपबंध किए जाने की आवश्यकता है। जहां माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष और उसके पश्चात् न्यायालय के समक्ष चुनौती देने का उपबंध नहीं किया गया है वहां इस तरह का उपबंध जरूरी हो सकता है। लेकिन जहां, जैसाकि 1996 के अधिनियम में है, अधिकरण के समक्ष और उसके पश्चात् न्यायालय के समक्ष चुनौती दिए जाने का उपबंध है, वहां हटाने के लिए दूसरी प्रक्रिया शामिल करके प्रक्रिया को दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है।

2.40.4 अन्तरिम पंचाट: शब्दों का लोप करने का सुझाव अस्वीकृत किया गया

यह सुझाव दिया गया है कि अधिनियम की धारा 2(1) (ग), 31(6) तथा धारा 17 और 37(2) (घ) आदि में ''अंतरिम पंचाट'' शब्दों का प्रयोग किया गया है और यह शब्द भ्रामक है। यह कहा गया है कि इंग्लैण्ड में डी॰एम॰सी॰ की रिपोर्ट में ''अंतरिम पंचाट'' शब्द को भ्रामक माना गया था और छोड़ दिया गया था।

हम नहीं सोचते कि धारा 2(1) (ग) में ''अंतरिम पंचाट'' शब्द को छोड़ना जरूरी है। उदाहरण के लिए, ऐसे मामले हो सकते हैं जहां ''अंतरिम पंचाट'' उस मामले में, जहां किसी विशेष राशि के दावे तक की देनदारी स्वीकृत हो सकती है, अभिवचनों को देखते हुए, सीधे पारित किया जा सकता है। ऐसे मामले में पक्षकारों से सभी मुद्दों का विनिश्चय हो जाने तक प्रतीक्षा करने के लिए कहने के बजाए स्वीकृत राशि के संबंध में अंतरिम पंचाट सीधे पारित किया जा सकता है। इसलिए, धारा 2(1) (ग) के ''अंतरिम पंचाट'' शब्द को बनाए रखा।

इसके अतिरिक्त, माध्यस्थम अधिकरण (यथा प्रस्तावित) द्वारा धारा 13 और धारा 16 के अन्तर्गत प्रारम्भिक मुद्दों पर ''विनिश्चय'' अधिकरण का केवल ''अंतरिम आदेश'' हो सकता है। ये केवल धारा 5 को देखते हुए उसके अध्यधीन अपील योग्य हैं। इसलिए, इस बात की कोई संभावना नहीं है कि धारा 2(1) (ग) में ''अंतरिम पंचाट'' शब्दों को बनाए रखने से किसी तरह का कोई भ्रम होगा।

वस्तुतः विभिन्न संविधियों में विभिन्न अभिव्यक्तियों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण कि लिए, 1998 से पूर्व माध्यस्थम के आई॰सी॰सी॰ नियमों के अनुच्छेद 21 में ''आंशिक'' और ''निश्चायक'' पंचाटों के बीच अन्तर किया गया था। इसी प्रकार 1998 के आई॰सी॰सी॰ नियम इन्हें ''अन्तरिम, आंशिक और अंतिम'' पंचाट कहते हैं (अधिनियम 2 (iii) (देखिए फोचार्ड पैरा 1359)। अंतिम पंचाट वह होता है जिसके साथ कार्यवाही समाप्त हो जाती है और माध्यस्थों को ''पदकार्य निवृत'' कर देता है। उच्च न्यायालय की सिविल प्रक्रिया, अनुच्छेद 1049 में अंतिम पंचाट, आंशिक रूप से अंतिम पंचाट अथवा अंतरिम पंचाट का उपबंध है।

2.40.5 व्यवसाय की रीति-लोप करने का सुझाव — अस्वीकृत किया गया

यह सुझाव दिया गया है कि अधिनियम की धारा 28(3) ''व्यवसाय की रीति'' को ध्यान में रखने की अनुमति देती है तथा यह उपबंध अस्पष्ट है अतः इसका लोप किया जाना चाहिए। हम नहीं सोचते कि यह उपबंध अस्पष्ट है। हमारे देश में वाणिज्यिक मामलों का विनिश्चय करते समय न्यायालय व्यवसाय की रीतियों को ध्यान में रखते हैं। वस्तुतः ''वाणिज्यिक संविदाओं'' के मामलों में, व्यवसाय की रीतियों का बहुत अधिक महत्व है। व्यवसाय की रीतियों से उत्पन्न होने वाले सिद्धान्त वाणिज्यिक विधि का अंग हैं।

इस संबंध में देखिए यूरोपीयन कन्वेंशन का अनुच्छेद 7, मॉडल विधि का अनुच्छेद 28(4), फ्रांस की नई सिविल प्रक्रिया संहिता का अनुच्छेद 1496, आई॰सी॰सी॰ नियम, 1998 का अनुच्छेद 17(2) (फोचर्ड पैरा 378, 1447, 1448) जो "व्यवसाय की रीतियों" को ध्यान में रखे जाने की अनुमति देता है। यह अस्वीकृत किया जाता है।

2.40.6 क्या विदेशी पंचाटों के प्रवर्तन के लिए धारा 49 के अन्तर्गत प्रवर्तनीयता तथा निष्पादन का विनिश्चिय करने के लिए दो प्रक्रम होने चाहिए — इस प्रश्न का उत्तर उच्चतम न्यायालय के निर्णय में दिया गया है

इस पहलु का समाधान मैसर्स फ्यूर्स्ट डे लॉसन लिमिटेड बनाम जिन्दल एक्सपोर्ट लिमिटेड 2001(3) स्केल, पृष्ठ 708 में उच्चतम न्यायालय के निर्णय में किया गया है। अत: नए सिरे से कोई संशोधन जरूरी नहीं है। इसी आवेदन में अब प्रवर्तनीयता तथा निष्पादन दोनों का विनिश्चय किया जा सकता है।

धारा 49 के अन्तर्गत एक समस्या उठाई गई है। धारा 49 जो "विदेशी पंचाटों के प्रवर्तन के संबंध में है, इस प्रकार है:

"जहां न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि विदेशी पंचाट इस अध्याय के अधीन प्रवर्तनीय है, वहां पंचाट को उस न्यायालय की एक डिक्री होना समझा जायेगा।"

सबसे पहले हम इस प्रश्न से संबंधित सांविधिक उपबंधों में परिवर्तन की बात करेंगे। तब हम बताएंगे कि परिवर्तन के बावजूद यह सुझाव साध्य क्यों नहीं है।

विदेशी पंचाट (मान्यता तथा प्रवर्तन) अधिनियम, 1961 की धारा 6 के अन्तर्गत, न्यायालय को सबसे पहले पंचाट दाखिल करने का निदेश देते हुए आदेश पारित करना पड़ता था और इसलिए, न्यायालय को पंचाट के अनुसार निर्णय की घोषणा करनी पड़ती थी और उसके पश्चात् डिक्री करनी पड़ती थी। 1961 के अधिनियम के अन्तर्गत विभिन्न प्रक्रम थे। 1961 के अधिनियम की धारा 6 इस प्रकार है:—

"धारा 6(1) — जहां न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि विदेशी पंचाट इस अधिनियम के अधीन प्रवर्तनीय है, वहां न्यायालय पंचाट को दाखिल किए जाने का आदेश करेगा और पंचाट के अनुसार निर्णय सुनाने की कार्यवाही करेगा।"

(2) इस प्रकार निर्णय सुना दिए जाने पर डिक्री की जाएगी तथा डिक्री यदि इससे अधिक तथा पंचाट के अनुसार नहीं है तो इससे भिन्न स्थिति में डिक्री पर कोई अपील नहीं की जाएगी।"

(धारा 7 में विदेशी पंचाट के प्रवर्तन की शर्तें दी गई हैं)

इसमें कोई शक नहीं है कि अधिनियम की धारा 49 के अन्तर्गत स्पष्टत: उस प्रक्रिया से भिन्न प्रक्रिया की बात कही गई है। न्यायमूर्ति मेहता की व्याख्या के अनुसार (देखिए, पृष्ठ 332) वर्तमान धारा 49, 1961 के अधिनियम की धारा 6 से भिन्न है।

2.40.7 क्या नए अधिनियम की धारा 49 के अधीन प्रक्रिया में परिवर्तन किया जाना चाहिए, इस प्रश्न का उत्तर केवल नहीं में हो सकता है

वैस्टर्न शिप ब्रेकिंग कारपोरेशन बनाम क्लेयर हेवन, 1997 (3) गुज॰ एल॰ आर॰ 1985 में गुजरात उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि "प्रवर्तन" और "निष्पादन" में कोई अन्तर नहीं है। यह कहा गया था कि एक बार न्यायालय द्वारा यह घोषणा कर दिए जाने के बाद कि पंचाट प्रवर्तनीय है, निष्पादन के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत अलग से कार्यवाही की जाएगी। स्पष्टत: ऐसा ही होना चाहिए।

यह सुस्थापित बात है कि विदेशी डिक्रियों के संबंध में भारतीय न्यायालय की अधिकारिता पहले यह पता करना है कि क्या विदेशी डिक्रियां प्रवर्तनीय हैं। सी॰ पी॰ सी॰ की धारा 44क के उपखंड (3) में यह अपेक्षा की गई है कि न्यायालय अपना यह समाधान करेगा कि डिक्री धारा 13 के खण्ड (क) से (च) तक के अनुरूप है। विदेशी पंचाटों को अधिक ऊंचे स्तर पर नहीं रखा जा सकता तथा जैसाकि धारा 48 में विनिर्दिष्ट है, उन्हें भी प्रवर्तित या निष्पादित करने से पूर्व प्रवर्तनीयता की कसौटी पर खरा उतरना चाहिए।

2.40.8 परन्तु न्यायालय उसी आवेदन पर प्रवर्तनीयता तथा निष्पादन का विचार कर सकता है तथा इसके लिए दो आवेदन जरूरी नहीं है (मैसर्स ग्यूर्लेट डे लांसन लिमिटेड बनाम जिन्दल एक्सपोर्ट लिमिटेड 2001 (3) स्केल, पृष्ठ 708)।

2.40.9 पंचाट निष्पादन के प्रक्रम पर ब्याज –सुझाव अस्वीकृत किया गया

ट्यूप्लास इंटरनेशनल एरिया प्राइवेट लिमिटेड बनाम थापर इस्पात लिमिटेड, (ए॰आई॰आर॰ 1999, बम्बई, 417) (2000(1), अर्ब॰ एल॰ आर॰ 230, में बम्बई उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि पंचाट में पंचाट दिए जाने की तारीख के बाद ब्याज का उपबंध नहीं किया गया है, इस दृष्टि से अधिनियम में कमी है। इसलिए, न्यायालय ब्याज की अनुमति नहीं दे सकता तथा इस कमी का उपचार विधानमंडल द्वारा किया जाना चाहिए या अन्यथा उच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा 82 के अन्तर्गत नियम बनाए जाने चाहिए।

धारा 31(7) (ख) पर विचार करते समय इस पहलु पर पहले ही विचार किया जा चुका है। बम्बई दृष्टिकोण सही नहीं है। साधारण वादों के मामले में धारा 34 सी॰पी॰सी॰ न्यायालय को निर्णय की तारीख से संदाय की तारीख तक के ब्याज का भुगतान का उपबंध करने की शक्ति प्रदान करती है। जहां निर्णय की तारीख से वसूली की तारीख तक के ब्याज की अनुमति दिए जाने के बारे में न्यायालय मौन है, वहां यह माना जाता है कि उससे इंकार कर दिया गया है तथा वाणिज्यिक संविदाओं तथा व्यवसाय की रीतियों का बहुत महत्व है। व्यवसाय की रीतियों से उत्पन्न ये सिद्धान्त वाणिज्यिक विधि का अंग है। हम बम्बई उच्च न्यायालय के निर्णय को ठीक करने की बात न्यायिक प्रक्रिया पर छोड़ते हैं।

इस संबंध में देखिए यूरोपीयन कन्वेंशन का अनुच्छेद 7, मॉडल विधि का अनुच्छेद 28(4), फ्रांस की नई सिविल प्रक्रिया संहिता का अनुछेद 1496, आई॰सी॰सी॰ नियम, 1998 का अनुच्छेद 17(2) (फोचर्ड पैरा 378, 1447, 1448) इनमें से सभी ''व्यवसाय की रीतियों'' को ध्यान में रखे जाने की अनुमति देते हैं।

2.40.10 राज्य उन्मुक्ति: इस पर पृथक कानून के अधीन विचार किया जाएगा

राज्य उन्मुक्ति का प्रश्न उठाया गया था। यह बताया गया है कि धारा 86, 87क सी॰पी॰सी॰ राज्य की उन्मुक्ति के बारे में है।

न्यायमूर्ति बी॰ए॰ मेहता ने अधिनियम पर अपनी व्याख्या में (देखिए, पृष्ठ 46 से पृष्ठ 53) राज्य की उन्मुक्ति तथा राज्य के अभिकरणों की उन्मुक्ति पर विचार किया है। लेखक ने 1978 के ब्रिटेन के अधिनियम (अर्थात राज्य उन्मुक्ति अधिनियम, 1978), संयुक्त राज्य विदेशी उन्मुक्तियां अधिनियम, 1976 तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि आयोग द्वारा राज्य उन्मुक्ति पर तैयार किए गए प्रारूप अनुच्छेदों का उल्लेख किया है। न्यूयार्क कन्वेंशन के अनुच्छेद 14 में अन्तर्विष्ट अधित्यजन के सिद्धान्तों पर फारईस्ट स्टीमशिप यू॰एस॰एस॰ आर॰ बनाम भारत संघ: ए॰आई॰आर॰ मद्रास, 169, यू॰ओ॰आई॰ बनाम वैसल हौंग आर्किड के मालिक एवं उनके एजेन्ट, 1983 गुजरात, 34 में उच्च न्यायालयों द्वारा किए गए निर्णयों तथा धारा 86, 87क सी॰पी॰सी॰ एवं वैब डेट्रैच सिवेदेराई रोस्टोक (डी॰ एस॰आर॰ लाईंस) जर्मन जनवादी गणतंत्र का एक विभाग बनाम न्यू सेन्ट्री जूट मिल्स लिमिटेड, 1994 (1) एस सी सी, 282 में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय तथा केन्या एयरवेज बनाम जूलीबाई बी खेशवोले, ए॰आई॰आर 1998, बम्बई, 287 का भी हवाला दिया गया है। लेखक का कहना है कि कोई राज्य या उसका अभिकरण जिस माध्यस्थम खण्ड का पक्षकार है, वह कब और किस सीमा तक अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य में राज्य की उन्मुक्ति के अभित्यजन के निष्कर्ष को उत्पन्न करता है, यह घोषणा करना जरूरी है। प्रश्न यह है कि क्या राज्य या उसके अभिकरण द्वारा की गई संविदा में माध्यस्थम का कोई खण्ड है, यह माना जाना चाहिए कि इसने उसकी उन्मुक्ति का अभित्यजन कर दिया है। लेखक ने इस संबंध में पृथक सांविधिक उपबंध किए जाने की वकालत की है। लेखक का निष्कर्ष है:

> ''विधि की निश्चितता और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एवं वाणिज्य के बढ़ते हुए आयामों के हित में, विशेषरूप से एक्टाज्यूर जस्टियोनिस के संदर्भ में, भारत को राज्य उन्मुक्ति से संबंधित एक स्वतंत्र एवं व्यापक अधिनियम की जरूरत है। सिविल प्रक्रिया संहिता में भी समुचित रूप से संशोधन किया जा सकता है। वास्तव में, जहां अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम का संबंध है, नए अधिनियम में भी आवश्यक उपबंध किए जा सकते थे। इस मामले में कभी भी व्यवस्था न करने के बजाए देरी से ही सही व्यवस्था करना बेहतर है।''

इस विषय के महत्व तथा इस तथ्य को देखते हुए कि अन्य देशों ने पृथक कानून अधिनियमित किए हैं,

आयोग का विचार है कि केवल माध्यस्थम विषय से संबंधित कानून बनाने के बजाय राज्य उन्मुक्ति के सभी पहलुओं के बारे में एक पृथक कानून बनाया जाए।

2.41.1 अस्थायी उपबंध: सीमित भूतलक्षिता दी गई: संशोधनकारी अधिनियम की धारा 32

2001 का संशोधनकारी अधिनियम प्रक्रियात्मक अधिनियमिती होने के कारण यह संविधियों के निर्वचन पर लागू होने वाले सामान्य सिद्धान्तों के अधीन भूतलक्षी होगा। लेकिन आयोग का आशय यह नहीं है कि संशोधनकारी अधिनियम के सभी उपबंधों को भूतलक्षी प्रभाव दिया जाए। वस्तुत: संशोधनकारी अधिनियम के कई उपबंधों को भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जा सकता। इसलिए, संशोधनकारी अधिनियम की धारा 32 में यह कहा गया है कि संशोधनकारी अधिनियम, जिस सीमा तक भूतलक्षी बनाया गया है उसके सिवाए, भविष्यलक्षी होगा।

प्रस्तावित धारा 32 की उपधारा (1) में कहा गया है कि अधिनियम भविष्यलक्षी होगा और इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व पहले ही की जा चुकी मध्यस्थों की नियुक्ति या नियुक्तियों या पंचाटों के लिए किए गए पिछले अनुरोधों या आवेदनों पर लागू नहीं होगा।

जहां तक संशोधनकारी अधिनियम की तारीख तक पहले ही किए जा चुके "माध्यस्थम करारों" का संबंध है, अधिनियम की उपधारा (2) में यह बताया गया है कि यदि नियुक्ति या नियुक्तियों के लिए अनुरोध या आवेदन संशोधनकारी अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व किए गए हैं तो यह अधिनियम लागू नहीं होगा।

उपधारा (3) से (17), इन सीमित परिस्थितियों तथा उस सीमित विस्तार के बारे में है जहां तक संशोधनकारी अधिनियम लागू होता है। कुछ उपबंध उन विभिन्न प्रकार के आवेदनों पर लागू होता है जो इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय लम्बित थे, कुछ उपबंध इस अधिनियम के आरम्भ होने के समय लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होते हैं लेकिन जहां उस तारीख से कोई पंचाट पारित नहीं किए गए हैं वहां कुछ उपबंधों को इस अधिनियम के आरम्भ के पश्चात पारित पंचाटों पर लागू किया गया है और जहां माध्यस्थम की कार्यवाही, इस अधिनियम के आरम्भ के समय लम्बित थी। कुछ उपबंध, लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों में, संशोधनकारी अधिनियम के पश्चात पारित आदेशों पर लागू होते हैं।

2.41.2 धारा 32 संशोधनकारी अधिनियम की प्रस्तावित धारा 32 इस प्रकार है:—

अस्थायी उपबंध

32. (1) उपधारा (2) से (17) तक के उपबंधों के अध्यधीन, इस अधिनियम द्वारा संशोधित मूल अधिनियम के उपबंध प्रवर्तन के भविष्यलक्षी होंगे तथा विशेषरूप से निम्नलिखित पर लागू नहीं होंगे:—

(i) मूल अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष हुए माध्यस्थम करार के किसी पक्षकार द्वारा किया गया आवेदन या इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व उक्त धारा के अधीन किसी न्यायिक प्राधिकारी द्वारा की गई कोई नियुक्ति;

(ii) इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व मूल अधिनियम की धारा 11 के अधीन किसी पक्षकार या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से किया गया कोई अनुरोध;

(iii) माध्यस्थम करार के पक्षकारों द्वारा, मूल अधिनियम की धारा 11 के अधीन इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व की गई माध्यस्थम अधिकरण की कोई भी नियुक्ति या इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व उक्त धारा के अधीन किसी ऐसे पक्षकार द्वारा की गई कोई नियुक्ति जो माध्यस्थम करार के अधीन, माध्यस्थम करार के किसी अन्य पक्षकारों या पक्षकारों की सहमति के बिना ऐसी नियुक्ति करने के लिए अधिकृत था या इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उसके पदाभिहित अथवा किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या उसके पदाभिहित व्यक्ति द्वारा की गई कोई नियुक्ति;

(iv) इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व, मूल अधिनियम के अधीन पारित कोई पंचाट।

(2) उपधारा (3) के उपबंधों के अध्यधीन, इस अधिनियम के उपबंध इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व किए गए ऐसे माध्यस्थम करारों पर लागू होंगे जहां, इस अधिनियम के आरम्भ से पूर्व, मूल अधिनियम के अधीन—

(i) माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के लिए कोई अनुरोध; या

(ii) माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के लिए कोई आवेदन; या

(iii) माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति,

नहीं की गई है।

(3) इस अधिनियम की धारा 2 के खण्ड (ii) द्वारा, मूल अधिनियम में यथा अन्तःस्थापित धारा 2 की उपधारा (2) के खण्ड (ख) के उपबंध निम्नलिखित पर लागू होंगे:—

(i) मूल अधिनियम की धारा 8 के अधीन कानूनी कार्यवाही में किसी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष या मूल अधिनियम की धारा 9 के अधीन किसी न्यायालय के समक्ष किए गए वे आवेदन जो मूल अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट स्वरूप में माध्यस्थमों के संबंध में, इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय लम्बित है;

(ii) मूल अधिनियम की धारा 35 के अधीन उनकी अन्तिमता तथा मूल अधिनियम की धारा 36 के अधीन उनके प्रवर्तन के प्रयोजनों के लिए, इस अधिनियम के प्रारम्भ से पूर्व पारित, मूल अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट स्वरूप के माध्यस्थमों से उत्पन्न पंचाट।

(4) इस अधिनियम की धारा 2 के खण्ड (iii) द्वारा मूल अधिनियम में यथा अन्तःस्थापित, धारा 2 की उपधारा (10) के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय, उक्त उपधारा में निर्दिष्ट प्रधान न्यायालयों के समक्ष मूल अधिनियम के अधीन लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे।

(5) इस अधिनियम की धारा 4 द्वारा यथा संशोधित, मूल अधिनियम की धारा 6 के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय, किसी माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष, मूल अधिनियम के अधीन लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे।

(6) इस अधिनियम की धारा 8 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अन्तःस्थापित धारा 9 की उपधारा (4), (5) और (6) के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय न्यायालय में धारा 9 के अधीन लम्बित सभी आवेदन पर लागू होंगे।

(7) इस अधिनियम की धारा 9 द्वारा, मूल अधिनियम में यथा अन्तःस्थापित धारा 10क के उपबंध, उन माध्यस्थम करारों पर लागू होंगे जिनके संबंध में माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के अनुरोध, यदि माध्यस्थम अधिकरण ऐसे प्रारम्भ होने की तारीख को नियुक्ति नहीं किया गया था, तो इस अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख को विनिश्चय के लिए लम्बित थे।

(8) इस अधिनियम की धारा 14 द्वारा यथा प्रतिस्थापित मूल अधिनियम की धारा 17 के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय, किसी माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष, मूल अधिनियम के अधीन लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे।

(9) इस अधिनियम की धारा 15 द्वारा यथा प्रतिस्थापित मूल अधिनियम की धारा 20 की उपधारा (1) के उपबंध उन माध्यस्थम करारों पर लागू होंगे जिनके संबंध में माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के लिए किए गए अनुरोध तथा माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के लिए किए गए आवेदन, इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय, यदि माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति ऐसे प्रारम्भ की तारीख तक नहीं की गयी थी तो, विनिश्चय के लिए लम्बित थे।

(10) इस अधिनियम की धारा 16 द्वारा यथा संशोधित मूल अधिनियम की धारा 23 की उपधारा (1) के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय, जहां ऐसे प्रारम्भ की तारीख को दावा, प्रतिदावा, प्रत्युत्तर के विवरण, माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष दाखिल नहीं किए गए हैं, किसी माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष, मूल अधिनियम के अधीन लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे।

(11) इस अधिनियम की धारा 17 द्वारा यथा संशोधित मूल अधिनियम की धारा 24 की उपधारा (1) के उपबंध तथा उक्त धारा के द्वारा यथा अन्तःस्थापित मूल अधिनियम की धारा 24 की उपधारा (1क) के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय, जहां ऐसे प्रारम्भ के समय, यथास्थिति, मौखिक साक्ष्य

या मौखिक बहस पूरी नहीं की गई है, मूल अधिनियम के अन्तर्गत किसी माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे।

(12) इस अधिनियम की धारा 18 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अन्त:स्थापित धारा 24क के उपबंध माध्यस्थम अधिकरण के आदेशों पर लागू होंगे यदि इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय मूल अधिनियम की धारा 17, 23 और 24 के अधीन पारित किए गए हैं और जहां ऐसे आदेशों का ऐसे प्रारम्भ की तारीख को उस पक्षकार द्वारा पालन नहीं किया गया है जिसे वे निर्देशित किए गए थे।

(13) इस अधिनियम की धारा 19 द्वारा मूल अधिनियम की यथा संशोधित धारा 28 के उपबंध उन माध्यस्थम करारों पर लागू होंगे जिनके संबंध में, इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय, यदि उस तारीख तक माध्यस्थम अधिकरण नियुक्ति नहीं किया गया है तथा माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के अनुरोध और नियुक्ति के लिए आवेदन विनिश्चय के लिए लम्बित हैं।

(14) (i) इस अधिनियम की धारा 20 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अन्त:स्थापित धारा 29 की उपधारा (3);

(ii) इस अधिनियम की धारा 22 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अन्त:स्थापित धारा 31क;

(iii) इस अधिनियम की धारा 23 द्वारा यथा संशोधित धारा 34;

(iv) इस अधिनियम की धारा 24 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अन्त:स्थापित धारा 34क;

के उपबंध, मूल अधिनियम के अधीन उन माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे जो इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष लम्बित थीं यदि ऐसे प्रारम्भ की तारीख को पंचाट पारित नहीं किए गए हैं।

(15) इस अधिनियम की धारा 25 द्वारा मूल अधिनियम की यथा संशोधित धारा 36 के उपबंध, मूल अधिनियम के अधीन दिए गए उन सभी पंचाटों पर लागू होंगे जो इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय लम्बित थे।

(16) इस अधिनियम की धारा 26 द्वारा, मूल अधिनियम में यथा अन्त:स्थापित धारा 37क की उपधारा (1) और (2) के उपबंध, मूल अधिनियम की धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन किए गए उन आवेदनों तथा मूल अधिनियम की धारा 37 के अन्तर्गत की गई उन सभी अपीलों पर लागू होंगे जो इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय लम्बित थे, यदि ऐसे प्रारम्भ की तारीख से पहले मूल अधिनियम की धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत या मूल अधिनियम की धारा 37 के अधीन न्यायालय द्वारा कोई नोटिस जारी नहीं किया गया है।

परन्तु जहां इस तरह के आवेदन या अपील पर, न्यायालय द्वारा नोटिस जारी कर दिया गया है वहां मूल अधिनियम की धारा 37क की उपधारा (1) के उपबंध लागू नहीं होंगे।

(17) इस अधिनियम की धारा 28 के खण्ड (ख) द्वारा मूल अधिनियम में यथा अन्त:स्थापित धारा 43 की उपधारा (5) के उपबंध, उक्त उपधारा में निर्दिष्ट आदेशों पर लागू होंगे यदि ऐसे आदेश या इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात, किसी माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष, ऐसे प्रारम्भ के समय, मूल अधिनियम की लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों में पारित किए गए थे।

2.42 संशोधनकारी अधिनियम की धारा 33 – 1996 के अधिनियम के अधीन लम्बित माध्यस्थमों, आवेदनों तथा अपीलों के निपटान की समय-सीमा

आयोग के ध्यान में यह बात लाई गई है कि कई ऐसे माध्यस्थम, जो 25.1.1996 के पश्चात उस समय प्रारम्भ हुए जब नए अधिनियम के पूर्ववर्ती अध्यादेश को संसद द्वारा पहली बार पारित किया गया था, भी यथापेक्षित गति से आगे नहीं बढ़ रहे हैं। ऐसा इसलिए था क्योंकि नए अधिनियम की धारा 23 के उपबंधों में जो अभिवचन दाखिल करने की प्रक्रिया तथा धारा 24 के उन उपबंधों से संबंधित थे जिसमें प्रमुख साक्ष्य की प्रक्रिया निर्दिष्ट थी, पक्षकारों को भी समय-सीमा के संबंध में सहमत होने की अनुमति दी गई थी। नये अधिनियम के अन्तर्गत माध्यस्थम अधिकरण धारा 23 और 24 दोनों के अन्तर्गत बलपूर्वक अपने बात नहीं कह

सका और ऐसी समय-सूची निश्चित नहीं करा सका जो पक्षकारों या उनके प्रतिनिधियों के लिए बाध्यकर हो सके। परिणामत: बड़ी संख्या में माध्यस्थम विभिन्न माध्यस्थम अधिकरणों के समक्ष लम्बित हैं। 1996 के अधिनियम के अन्तर्गत संविधियों में, माध्यस्थम की कार्यवाही पूरी करने और पंचाट पारित करने के लिए किसी अधिकतम समय-सीमा का उपबंध नहीं किया गया है। हम पहले ही बता चुके है कि पुराने अधिनियम के अन्तर्गत जो समय-सीमा विद्यमान थी उसे 1996 में सम्मिलित क्यों नहीं किया गया है, देखिए, इस रिपोर्ट की धारा 29क के अधीन चर्चा। इस समय, पुरःस्थापित धारा 29क के उपबंध, संशोधनकारी अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात माध्यस्थम के भविष्य में किए जाने वाले निदेशों पर लागू होंगे।

धारा 30 की उपधारा (7) तथा उपधारा (8) से पता चलता है कि धारा 23 और 24 में किए गए संशोधनों को, (जिनके द्वारा अभिवचन दाखिल करने और साक्ष्य का संचालन करने की समय-सूची निश्चित करने के लिए पक्षकारों की सहमति से संबंधित खण्डों को हटा दिया गया है) तथा धारा 24क और 24ख के नए उपबंधों को 1996 के अधिनियम के अधीन लम्बित माध्यस्थमों पर लागू किए जाने का प्रस्ताव है। लेकिन इतना करना मात्र ही नए अधिनियम के अन्तर्गत लम्बित माध्यस्थमों की गति तेज करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा।

अत: आयोग ने यह अनुभव किया है कि धारा 29क के उपबंधों को 1996 के नए अधिनियम के अधीन लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर भी लागू किया जाना चाहिए बशर्ते कि ऐसी कार्यवाही इस अधिनियम के आरम्भ की तारीख से तीन वर्ष से अधिक लम्बे समय से लम्बित हों। आयोग का विचार है कि 1996 के अधिनियम के अन्तर्गत लम्बित कार्यवाहियों को पूरा करने के लिए एक वर्ष का समय और दिया जाना चाहिए। यह पर्याप्त उचित होगा। नए अधिनियम के अन्तर्गत उन माध्यस्थमों के मामले में जो पूर्वोक्त रूप से तीन वर्ष से अधिक लम्बे समय से लम्बित हैं, और जिन्हें दिए गए अतिरिक्त एक वर्ष की अवधि में पेश नहीं किया जा सकेगा, यह और भी उपयुक्त होगा कि जहां धारा 29क के उपबंधों के अनुसार न्यायालय द्वारा ऐसे माध्यस्थमों की निगरानी की जाएगी वहां उनकी गति भी तेज की जायेगी।

जैसाकि पहले ही देखा गया है, जब धारा 29क के अधीन न्यायालय में समयावधि बढ़ाए जाने का आवेदन दाखिल किया जाता है तो माध्यस्थम की कार्यवाही जारी रहेगी और न्यायालय माध्यस्थम की कार्यवाही के मामले में कोई स्थगन आदेश नहीं देगा।

ऐसे भी मामले है जहां 1996 के अधिनियम के अधीन माध्यस्थम कार्यवाहियों के आरम्भ होने के पश्चात, प्रस्तावित संशोधनकारी अधिनियम के आरम्भ होने की तारीख से तीन वर्ष की अवधि समाप्त नहीं हुई हैं। ऐसे मामले में, आयोग का यह मत है कि 1996 के अधिनियम के अधीन माध्यस्थम के आरम्भ होने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने के पश्चात, एक वर्ष की अवधि और बढ़ाई जा सकती है जिसके भीतर माध्यस्थम को पूरा कर लिया जाना चाहिए। तत्पश्चात, पक्षकारों को समय बढ़ाने की अनुमति न्यायालय से लेनी होगी, जो पंचाट के पारित होने तक समय-सीमा का निर्धारण कर, जैसाकि धारा 29क की उपधारा (4) से (8) तक में प्रावधान किया गया है, कार्यवाहियों की निगरानी करेगा।

इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए हमने संशोधनकारी अधिनियम की धारा 33 में 1996 के अधिनियम के अन्तर्गत लम्बित माध्यस्थमों, आवेदन-पत्रों और अपीलों के निपटान हेतु समय-सीमा निर्धारित करने का प्रस्ताव किया है।

2.42.1. संशोधनकारी अधिनियम की प्रस्तावित धारा 33 का यह इस प्रकार है:-

> "33. सभी कार्यवाहियों का शीघ्रता से पूरा किया जाना और मूल अधिनियम के अन्तर्गत पंचाट पारित करने के लिए समय-सीमा—
>
> (1) इस अधिनियम के आरम्भ के समय सभी माध्यस्थम कार्यवाहियां, जो ऐसी कार्यवाहियों के प्रारम्भ होने की तारीख से 3 वर्ष से अधिक समय से मूल अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्त माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष लम्बित हैं, को इस अधिनियम के आरंभ होने की तिथि से अगले और एक वर्ष की अवधि के भीतर अथवा उपधारा (2) और (3) में यथा विनिर्दिष्ट ऐसी बढ़ाई गई अवधि में पूरा किया जाएगा।
>
> परन्तु जहां इस अधिनियम के आरंभ होने की तारीख को ऐसी कार्यवाहियों के प्रारम्भ होने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि समाप्त नहीं हुई हैं वहां ऐसी कार्यवाहियों को माध्यस्थम

कार्यवाहियों को तीन वर्ष पूरे होने की तिथि से लेकर और बढ़ाई गई 6 महीने की अवधि के भीतर अथवा उपधारा (2) और (3) में यथा विनिर्दिष्ट ऐसी बढ़ाई गई अवधि में पूरा किया जाएगा।

(2) यदि उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट एक वर्ष अथवा 6 महीने की अवधि में, यथास्थिति, पंचाट नहीं दिया जाता है, तो उपधारा (3) के उपबंधों के अध्यधीन माध्यस्थम कार्यवाही को स्थगित माना जाएगा जब तक कि मध्यस्थता के लिए किसी पक्षकार ने अवधि बढ़ाने हेतु न्यायालय में आवेदन न किया हो अथवा किसी भी पक्षकार ने उपर्युक्त आवेदन न किया हो, जब तक कि माध्यस्थम अधिकरण द्वारा ऐसा आवेदन नहीं किया जाता है।

(3) इस अधिनियम की धारा 21 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अन्तःस्थापित धारा 29क की उपधारा (4) और (8) के उपबंध, जहां तक संभव हो, पंचाट के पारित होने तक माध्यस्थम कार्यवाहियों के शीघ्र निपटान को ध्यान में रखते हुए उपधारा (2) में उल्लिखित आवेदन के निपटान हेतु लागू होंगे।

(4) जहां इस अधिनियम की धारा 23 द्वारा मूल अधिनियम की यथा संशोधित धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत आवेदन और मूल अधिनियम की धारा 37 की उपधारा (1) के अन्तर्गत अपीलें, यथास्थिति, इस अधिनियम के आरंभ होने की तिथि पर, उन उपधाराओं में उल्लिखित किसी भी न्यायालय के समक्ष लम्बित हों, उन्हें ऐसे अधिनियम के आरम्भ की तिथि से 6 महीने के भीतर निपटाया जाएगा।

परन्तु मूल अधिनियम की धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत आवेदन पर विचार करते समय, यदि न्यायालय उस धारा की उपधारा (5) के अन्तर्गत कार्यवाही को स्थगित कर देता है तो 6 महीने की यह अवधि उस उपधारा के अन्तर्गत माध्यस्थम अधिकरण से आदेश प्राप्त होने की तिथि से मानी जाएगी।

(5) जहां इस अधिनियम के आरम्भ होने की तारीख पर मूल अधिनियम की धारा 37 की उपधारा (2) के अन्तर्गत अपीलें किसी न्यायालय के समक्ष लम्बित हों तो ऐसे अधिनियम के आरंभ होने की तारीख से तीन महीने के भीतर उन अपीलों का निपटान किया जाएगा।

2.43.1 संशोधनकारी अधिनियम की धारा 34 – माध्यस्थम अधिनियम, 1940 के अन्तर्गत लंबित माध्यस्थमों, आवेदनों और अपीलों के निपटान हेतु समय-सीमा

आयोग की जानकारी में यह बात लाई गई है कि बहुत से माध्यस्थम जिन्हें 1940 के अधिनियम के अन्तर्गत शुरू किया गया था, माध्यस्थम के चरण में अथवा पंचाट को न्यायालय का नियम बनाने के लिए आदेश/पंचाट के संबंध में आपत्तियों के चरण में अथवा उस अधिनियम की धारा 39 के अन्तर्गत अपीलों के चरण में अथवा 1940 के अधिनियम या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अन्तर्गत अपीलों या पुनरीक्षण आवेदनों के चरण में लंबित हैं।

आयोग ने यह महसूस किया है कि यदि 1940 के अधिनियम के अन्तर्गत शुरू किए गए माध्यस्थमों को 1996 के अधिनियम के 25.1.1996 से आरंभ होने के बाद भी पूरा नहीं किया गया है तो यह आवश्यक होगा कि 1996 के अधिनियम की धारा 23 और 24 के उपबंधों, जिसमें संशोधन किया जाना प्रस्तावित है, और साथ ही धारा 24क और 24ख, जो माध्यस्थम अधिकरण और न्यायालयों को यह शक्ति प्रदान करता है कि वे यह देखें कि उनके पक्षों द्वारा उनके आदेशों का तत्परता से पालन किया जाता है, को लागू करके ऐसे माध्यस्थमों का शीघ्रता से निपटान किया जाए। अतः यह भी प्रस्तावित किया जाता है कि 1940 के अधिनियम में उपर्युक्त उपबंधों से असंगत किसी बात के होते हुए भी, 1940 के अधिनियम के अन्तर्गत उन माध्यस्थमों पर लागू किया जाना चाहिए जो प्रस्तावित संशोधनकारी अधिनियम के आरंभ की तारीख को लम्बित होंगे।

जहां तक 1940 के अधिनियम के अन्तर्गत, लंबित माध्यस्थमों को पूरा करने के लिए समय-सीमा का संबंध है, आयोग ने प्रस्ताव किया था कि उन्हें प्रस्तावित संशोधनकारी अधिनियम के आरंभ की तारीख से एक वर्ष के भीतर या 1996 के अधिनियम के अन्तःस्थापित किए जाने के लिए यथा प्रस्तावित धारा 29क की उपधारा (4) से (8) तक के उपबंधों को लागू करके, 1940 के अधिनियम की धारा 2 या धारा 21 के खण्ड (ग) के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा और बढ़ाए गए समय के भीतर पूरा किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, 1940

के अधिनियम के अधीन उन सभी लंबित माध्यस्थमों में, यदि उन्हें प्रस्तावित संशोधनकारी अधिनियम के आरंभ की तारीख से एक वर्ष के भीतर पूरा नहीं किया जाता तो, पक्षकारों या मध्यस्थों के लिए यह जरूरी होगा कि वे समय बढ़ाने के लिए उपयुक्त न्यायालय में आवेदन दाखिल करें, प्रत्येक मामले में समयावधि बढ़ाने की अनुमति दी जाए तथा न्यायालय कार्यवाही पूरी करने के लिए समय-सूची निश्चित करेगा और पंचाट पारित किए जाने तक समय-समय पर आदेश पारित करेगा।

जहां तक 1949 के अधिनियम के अधीन लंबित माध्यस्थम कार्यवाहियों का संबंध है, उनके मामले में यही स्थिति है।

इसी प्रकार यह देखा गया है कि 1940 के अधिनियम के अधीन पारित पंचाटों को न्यायालय का नियम बनाने के लिए किए गए कई आवेदन/पंचाट पर की गई आपत्तियां, 1940 के अधिनियम की धारा 2 के खण्ड (ग) या धारा 21 के अन्तर्गत यथा परिभाषित न्यायालय में लंबित है। 1940 के अधिनियम की धारा 39 के अन्तर्गत भी कई अपीलें न्यायालयों में लंबित है। यह देखने का निर्णय किया गया है कि उन्हें प्रस्तावित संशोधन के आरम्भ की तारीख से एक वर्ष के भीतर निपटा दिया जाए।

जहां तक न्यायालय द्वारा पारित अन्तरिम आदेशों से उत्पन्न होने वाली ऐसी अपीलों या पुनरीक्षण आवेदनों का संबंध है जो संशोधनकारी अधिनियम के आरम्भ के समय लंबित थे, आयोग का विचार है कि उन्हें प्रस्तावित संशोधनकारी अधिनियम के आरंभ होने की तारीख से एक वर्ष के भीतर निपटा दिया जाए।

2.43.2 इन उद्देश्यों को देखते हुए, आयोग का प्रस्ताव है कि संशोधनकारी अधिनियम में निम्नलिखित धारा 34 अन्तःस्थापित की जाए।

यह धारा इस प्रकार है:—

"34. माध्यस्थम अधिनियम, 1940 (1940 का 10) के अन्तर्गत माध्यस्थमों, आवेदनों और अपीलों को शीघ्र निपटाने और निपटान के लिए समय-सीमा—

(1) इस अधिनियम की धारा 4, 16 और 17 द्वारा क्रमशः यथा संशोधित मूल अधिनियम की धारा 6, 23 और 24 के उपबंध, जहां तक हो सके, माध्यस्थम अधिनियम 1940 (1940 का 10) (जिसे इसमें एतदद्वारा "निरसित अधिनियम" कहा जाएगा) के अन्तर्गत ऐसी माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे जो इस अधिनियम के प्रारंभ होने के समय लंबित थी और निरसित अधिनियम के ऐसे किन्हीं उपबंधों पर अभिभावी होंगे जो उक्त धाराओं से असंगत हों।

(2) निरसित अधिनियम के उपबंधों अथवा उपधारा (1) के अन्तर्गत पारित आदेशों के अन्तर्गत एकमात्र मध्यस्थ अथवा मध्यस्थों द्वारा पारित किसी आदेश के अनुपालन की दशा में, निरसित अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्त, यथास्थिति, एकमात्र मध्यस्थ या अधिक मध्यस्थ, इस अधिनियम की धारा 18 द्वारा यथा अन्तःस्थापित, मूल अधिनियय की धारा 24क के अन्तर्गत आदेश पारित कर सकते हैं।

(3) उपधारा (2) के अन्तर्गत एकमात्र मध्यस्थ या मध्यस्थों द्वारा पारित किसी अनिवार्य आदेश के अनुपालन की दशा में, न्यायालय निरसित अधिनियम की धारा 21 अथवा धारा 2 के खण्ड (ग) के अर्थ में, यथास्थिति, इस अधिनियम की धारा 18 द्वारा यथा अन्तः स्थापित मूल अधिनियम की धारा 24ख के अन्तर्गत आदेश पारित कर सकता है।

(4) जहां इस अधिनियम के प्रारंभ होने के समय निरसित अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्त एकमात्र मध्यस्थ अथवा मध्यस्थों के समक्ष माध्यस्थम कार्यवाहियां लंबित हैं, ऐसी कार्यवाहियां इस अधिनियम के प्रारंभ होने की तारीख से आगे एक वर्ष की अवधि के भीतर अथवा ऐसी बढ़ाई गई अवधि के भीतर पूरी कर ली जाएगी जो उपधारा (5) और (6) में विनिर्दिष्ट की गई हों।

परन्तु जहां माध्यस्थम कार्यवाहियों पर न्यायालय के आदेशानुसार रोक लगाई गई हो, उस अवधि को, जिसके दौरान कार्यवाहियों पर इस प्रकार रोक लगाई गई हो, एक वर्ष की उक्त अवधि की गणना करते समय अपवर्जित किया जाएगा।

(5) यदि पंचाट उपधारा (4) में विनिर्दिष्ट एक वर्ष की आगे की अवधि के भीतर नहीं दिया जाता है तो, उपधारा (6) के उपबंधों के अध्यधीन माध्यस्थम कार्यवाहियां तब तक निलंबित रहेंगी जब तक उपधारा (3) में उल्लिखित न्यायालय को अवधि के विस्तार के लिए आवेदन माध्यस्थम के किसी पक्षकार द्वारा नहीं कर दिया जाता अथवा जहां किसी पक्षकार ने यथापूर्वोक्त आवेदन न किया हो, ऐसा आवेदन एकमात्र मध्यस्थ या मध्यस्थों द्वारा नहीं दिया जाता, जैसा भी मामला हो।

(6) इस अधिनियम की धारा 21 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अन्तःस्थापित धारा 29क की उपधाराओं (4) से (8) के उपबंध जहां तक हो सके, पंचाट पारित किए जाने तक माध्यस्थम कार्यवाहियों को शीघ्र पूरा करने की दृष्टि से, उपधारा (5) में उल्लिखित आवेदन के निपटान के लिए उपधारा (3) में उल्लिखित न्यायालय पर लागू होंगे।

(7) जहां पंचाट को न्यायालय का नियम बनाने के लिए किए गए आवेदन अथवा निरसित अधिनियम के अन्तर्गत पंचाट को अपास्त करने के लिए दाखिल की गई आपत्तियां अथवा निरसित अधिनियम की धारा 39 के अन्तर्गत दाखिल की गई आपत्तियां अथवा निरसित अधिनियम की धारा 39 के अन्तर्गत दाखिल की गई कोई अपील अथवा अन्य कोई आवेदन इस अधिनियम के प्रारंभ होने की तारीख को उपधारा (3) में उल्लिखित किसी न्यायालय के समक्ष लंबित हों तो, इनका निपटान निरसित अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार प्रारम्भ होने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर किया जाएगा।

(8) जहां उपधारा (3) में उल्लिखित न्यायालयों द्वारा पारित अन्तरिम आदेशों से उत्पन्न कोई अपील अथवा पुनरीक्षण आवेदन इस अधिनियम के प्रारंभ होने के समय निरसित अधिनियम के अन्तर्गत उत्पन्न माध्यस्थम कार्यवाहियों के संबंध में निरसित अधिनियम के अन्तर्गत अथवा सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 का 5) के अन्तर्गत लंबित है अथवा जहां माध्यस्थम कार्यवाहियों पर रोकादेश लगाए गए है, उनका निपटान सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) अथवा निरसित अधिनियम के उपबंधों के अनुसार, यथास्थिति, इसके प्रारम्भ होने की तारीख से 6 माह की अवधि के भीतर किया जाएगा।

(9) मूल अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (2) में अन्तर्विष्ट किसी भी असंगत बात के होते हुए भी इस धारा के उपबंधों का प्रभाव होगा।

2.43.3 चौथी अनुसूची का अन्तःस्थापन :

संशोधनकारी अधिनियम की धारा 35 द्वारा चौथी अनुसूची अन्तःस्थापित की गई है जो "त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम" के बारे में है जिसका उद्धरण अध्याय-ग्यारह में धारा 43क से 43घ के तत्काल पश्चात् पैरा 2.38.2 में नई अन्तःस्थापित के रूप में पहले ही दिया जा चुका है।

हमने "माध्यस्थम और सुलह (संशोधन) विधेयक, 2001" (अनुबंध-1) तैयार कर लिया है जिसमें विद्यमान माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 में अनुशंसित संशोधन दिए गए हैं। संशोधनों और स्पष्टीकारक टिप्पणों सहित सिफारिशों का सारांश अगले अध्याय में दिया गया है।

इस रिपोर्ट में आयोग ने त्वरित माध्यस्थम और न्यूनतम न्यायालय मध्यक्षेप के मुख्य सिद्धान्तों को ध्यान में रखा है। आयोग ने कंसल्टेशन पेपर के समय और तत्पश्चात न्यायिक मध्यक्षेप के संबंध में दिए गए अनेक सुझावों को मामंजूर कर दिया। इसने माध्यस्थम कार्यवाहियों तथा न्यायालय की कार्यवाहियों के शीघ्र निपटान के लिए अनेक विशेष उपबंध किए हैं। जहां तक भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी माध्यस्थम का संबंध है, आक्रमण के केवल दो अतिरिक्त आधारों को ही सम्मिलित किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम से संबंधित भाग को यथावत रखा गया है। आशा है कि इन संशोधनों से भारत में माध्यस्थम की स्थिति में सुधार होगा और विलम्ब का कलंक मिट जाएगा।

अध्याय-तीन

सिफारिशों का सारांश तथा व्याख्यात्मक टिप्पण

माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 में परिवर्धनों, उपांतरणों तथा प्रतिस्थापनों के बारे में पिछले अध्याय में की गई सिफारिशों का सारांश इस प्रकार है:-

1. धारा 2(1) (ङ): ''न्यायालय'' शब्द की परिभाषा में ''प्रधान न्यायाधीश का न्यायालय किसी नगर में मूल अधिकारिता का प्रयोग करने वाला नगर सिविल न्यायालय'' भी सम्मिलित किए जाने का प्रस्ताव किया गया है।

(पैरा 2.1.2)

2. धारा 2(1) (ङक) : इस खण्ड को जोड़े जाने का प्रस्ताव है तथा इसमें ''देशी माध्यस्थम'' को धारा 2 की विद्यमान उपधारा (7) के समान आधारों पर परिभाषित किया गया है जिसमें ''देशी पंचाट'' को परिभाषित किया गया है। ''देशी माध्यस्थम'' से अभिप्रेत है, (i) जहां सभी पक्षकार भारतीय राष्ट्रिक हैं, या (ii) जहां कम से कम एक पक्षकार भारतीय राष्ट्रिक नहीं है (अर्थात जहां माध्यस्थम अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप का है) चाहे माध्यस्थम वाणिज्यिक है या नहीं और माध्यस्थम भारत में है। भारत में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम को ''देशी माध्यस्थम'' माना जाएगा। उपखण्ड (3) में, भारत से भिन्न किसी देश में निगमित कम्पनी को सम्मिलित नहीं किया गया है।

(पैरा 2.1.3क)

3. धारा 2(1) (ङख) : इस खण्ड को जोड़े जाने का प्रस्ताव है तथा इसमें ''अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम'' को ऐसे माध्यस्थम के रूप में परिभाषित किया गया है जहां कम से कम एक पक्षकार भारतीय राष्ट्रिक नहीं है। यह माध्यस्थम अनिवार्यत: वाणिज्यिक होना जरूरी नहीं है। इस परिभाषा में भी, उपखण्ड (iii) में, भारत से भिन्न किसी देश में निगमित कम्पनी को सम्मिलित नहीं किया गया है। इस खण्ड में, भारत से भिन्न किसी देश में निगमित कम्पनी का निदेश ''भारत से भिन्न किसी भी देश में निगमित निकाय'' शब्द के अर्थ के अन्तर्गत आएगा।

(पैरा 2.1.3क)

4. धारा 2(1) (च) : इस खण्ड में ''अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम'' शब्द को ''अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम जो कि वाणिज्यिक स्वरूप का है'', के रूप में परिभाषित करके संशोधन करने का प्रस्ताव है।

(पैरा 2.1.3क)

5. धारा 2(1) (चक) : इस खण्ड को पुर:स्थापित किए जाने का प्रस्ताव है। धारा 8 के अन्तर्गत, जब कोई कार्यवाही ''किसी न्यायिक अधिकारी'' के समक्ष की जाती है तो उक्त प्राधिकारी को वह विवाद माध्यस्थम को निर्दिष्ट करना होता है यदि प्रतिवादी किसी माध्यस्थम खण्ड का अवलंब लेता है। इसलिए ''न्यायिक प्राधिकारी'' की एक परिभाषा यह करते हुए सम्मिलित करने का प्रस्ताव है कि ''न्यायिक प्राधिकारी'' में कोई भी ''अर्ध-न्यायिक सांविधिक प्राधिकारी'' सम्मिलित है। यह शब्द धारा 8 में तथा धारा 5 और धारा 42 में प्रस्तावित संशोधनों में आया है।

(पैरा 2.1.4)

6. धारा 2(2) : धारा 2(2) में खण्ड (क) और (ख) जोड़कर इस धारा में संशोधन करने का प्रस्ताव है। धारा 2(2) में यह उपबंधित है कि अधिनियम का भाग-एक भारत में माध्यस्थम पर लागू होता है। इसका अर्थ यह है कि भारतीय राष्ट्रिकों के बीच माध्यस्थम के मामले में और जहां एक पक्षकार भारतीय राष्ट्रिक नहीं है और जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में है, वहां अधिनियम का भाग-एक लागू होगा जहां

"अनसिट्रल मॉडल विधि" के 8, 9, 35 और 36 जैसे कतिपय अनुच्छेदों को देश से बाहर माध्यस्थमों पर लागू किए जाने की अनुमति देता है वहीं 1996 के अधिनियम में इस संबंध में कुछ छूट गया है। परिणामत: उदाहरण के लिए भारत से बाहर माध्यस्थम आरम्भ होने से पूर्व भारतीय न्यायालयों से अंतरिम उपाय प्राप्त नहीं कर सकता। जैसाकि ऊपर बताया गया है, कोई स्पष्ट उपबंध न होने से दिल्ली और कलकत्ता उच्च न्यायालयों में विरोधी निर्णय हुए हैं। प्रस्ताव है कि जब कभी भी माध्यस्थम भारत से बाहर हो वहां धारा 9 को लागू किया जाए। इसी प्रकार, जब कभी भी माध्यस्थम भारत से बाहर हो, वहां धारा 8, 27, 35 और 36 के उपबंध उपलब्ध कराने का प्रस्ताव है। लगभग उन सभी देशों में जहां मॉडल विधि अपनाई गई है, वहां इन उपबंधों के विचार देश से बाहर के माध्यस्थमों में लागू करने की अनुमति है।

धारा 2(2) के प्रस्तावित खण्ड (क) में कहा गया है कि अधिनियम का भाग-एक भारत में देशी माध्यस्थमों पर लागू होता है तथा प्रस्तावित खण्ड (ख) में कहा गया है कि धारा 8, 9, 27, 35 और 36 भारत से बाहर अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए उपलब्ध होंगी।

(पैरा 2.1.5 तथा 2.1.7)

7. धारा 2(10) : इस खण्ड के अन्तर्गत, धारा 2(1) (ङ) में निर्दिष्ट प्रधान न्यायालयों को अपने समक्ष विचाराधीन मामलों को नियामक अधिकारिता वाले न्यायालयों को अन्तरित करने की अनुमति देने का प्रस्ताव है। इस खण्ड द्वारा उच्च न्यायालयों के उन कुछ निर्णयों को अधिक्रमित करने का प्रस्ताव है जिनमें कहा गया है कि धारा 2(1) (ङ) में दिया गया प्रधान न्यायालय मामलों को अन्य न्यायालयों को अंतरित नहीं कर सकता। इससे प्रधान न्यायालयों में भीड़ कम हो जाएगी।

(पैरा 2.1.2क)

8. धारा 5 : धारा 5 में "तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि" शब्दों, जो कि अध्यारोही खण्ड में दिए गए हैं, के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए एक स्पष्टीकरण जोड़ने का प्रस्ताव है। प्रस्तावित स्पष्टीकरण में यह उपबंध किया जाएगा कि उपर्युक्त शब्दों में—

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 (1908 का 5);

(ख) उच्च न्यायालय के भीतर आंतरिक अपीलों का उपबंध करने वाली कोई विधि;

(ग) कोई ऐसी विधि जिसके द्वारा किसी अन्य न्यायिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेशों के संबंध में किसी न्यायिक प्राधिकारी द्वारा पर्यवेक्षण करने का उपबंध किया गया हो

के अन्तर्गत किया गया कोई पर्यवेक्षण सम्मिलित होगा।

प्रस्तावित स्पष्टीकरण को देखते हुए, अपील संबंधी सभी उपचारों या सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन पुनरीक्षण अथवा लैटस पेटेण्ट के अधीन की गई अपीलों या उच्च न्यायालय में अधिनियमों के अधीन की गई अपीलों तथा किन्हीं न्यायिक प्राधिकारियों के आदेशों के विरुद्ध विशेष संविधियों के अधीन सभी अन्य उपचारों को अपवर्जित कर दिया गया है।

(पैरा 2.2.1)

9. धारा 6 : धारा 6 में अपने वर्तमान रूप में यह उपबंध किया गया है कि माध्यस्थम कार्यवाहियों के संचालन को सुगम बनाने के लिए, पक्षकार अथवा माध्यस्थम अधिकरण, पक्षकारों की सहमति से किसी उपयुक्त मध्यस्थ अथवा व्यक्ति द्वारा प्रशासनिक सहायता के लिए व्यवस्था कर सकेगा।

अध्याय-दो में दिए गए विस्तृत कारणों की वजह से "या पक्षकारों की सहमति से माध्यस्थम अधिकरण" शब्दों का लोप करने का प्रस्ताव है।

(पैरा 2.2.5)

10. धारा 7(4) (ख): इस धारा की उपधारा (4) के खण्ड (ख) में कुछ शब्द जोड़कर इसमें संशोधन करने का प्रस्ताव है ताकि "माध्यस्थम करार" की परिभाषा में विवक्षित तौर पर ऐसा करार शामिल किया जा सके जहां कोई पक्षकार दूसरे पक्षकारों को प्रस्तावित संविदा में एक माध्यस्थम खण्ड

जोड़ने या शामिल करने की संसूचना भेजता है। जिस पक्षकार को संसूचना प्राप्त हुई है चाहे उसने उत्तर न दिया हो, उसके मौन को उस माध्यस्थम खण्ड को स्वीकार करना समझा जाएगा जिसे अन्य पक्षकार द्वारा बिना आपत्ति के स्वीकार कर लिया जाता है। इस खण्ड के अन्तर्गत ''दलाल की पर्चियों'' जैसे उन मामलों को शामिल कर लिए जाने का प्रस्ताव है जो माध्यस्थम खण्डों को निरुद्ध करते हैं।

(पैरा 2.3.2)

11. धारा 8 : धारा 8 में कई संशोधन करने का प्रस्ताव है जो इस प्रकार है:—

(एक) धारा 8(1): जैसाकि अनसिट्रल मॉडल विधि के अन्तर्गत उपबंधित है, उसी तरह इस उपधारा के अन्तर्गत भी किसी न्यायिक प्राधिकारी को ऐसे कई प्रारम्भिक प्रश्नों का विनिश्चय करने की अनुमति देने के लिए संशोधन करने का प्रस्ताव है जो कि अन्तिम कथन दाखिल करने से पूर्व प्रतिवादी द्वारा उठाए जाएं, ताकि मामले को माध्यस्थम को भेजने से पूर्व उन मुद्दों का विनिश्चिय किया जा सके।

(पैरा 2.4.9)

(दो) धारा 8(1क): अधिकारिता के प्रारम्भिक मुद्दों पर निर्णय होने तक, न्यायिक प्राधिकारी उन प्रारम्भिक मुद्दों पर विनिश्चय के परिणाम के अध्यधीन कार्यवाही स्थगित कर सके इसके लिए यह उपधारा जोड़े जाने का प्रस्ताव है।

(पैरा 2.4.9)

(तीन) धारा 8(3): धारा 8(3) में संशोधन करने का प्रस्ताव है। वर्तमान स्थिति के अनुसार माध्यस्थम अधिकरण, यदि वह प्रतिवादी द्वारा पहले ही नियुक्त कर दिया गया है, माध्यस्थम की कार्यवाही आरम्भ कर सकता है जबकि न्यायालय अभी प्रतिवादी द्वारा पहले निर्दिष्ट कराने की अनुमति के लिए दिए गए पहले के आवेदन पर विचार ही कर रहा है। प्रस्तावित संशोधन में यह उपबंध किया गया है कि ऐसी किसी माध्यस्थम की कार्यवाही का जारी रहना प्रारम्भिक मुद्दों पर न्यायिक प्राधिकारी के निर्णय पर निर्भर करेगा यदि न्यायिक प्राधिकारी द्वारा अधिकारिता के प्रारम्भिक मुद्दों को मंजूर करने तथा मामला दूसरे न्यायिक अधिकरण को भेजे जाने का निर्णय किया जाता है तो प्रतिवादी द्वारा नियुक्त पूर्ववर्ती माध्यस्थम अधिकरण का आदेश समाप्त हो जाएगा।

(पैरा 2.4.9)

(चार) धारा 8(4): यह उपधारा जोड़े जाने का प्रस्ताव है ताकि न्यायिक प्राधिकारी प्रस्तावित उपधारा (5) के अध्यधीन इन प्रारम्भिक मुद्दों का विनिश्चय कर सके कि क्या (क) कोई विवाद विद्यमान नहीं है, (ख) माध्यस्थम करार शून्य व अकृत है या अप्रवृत्त है, (ग) माध्यस्थम करार निष्पादन योग्य नहीं है, (घ) माध्यस्थम करार अस्तित्व में नहीं है।

(पैरा 2.4.9)

(पांच) धारा 8 (5): यह उपधारा इस आशय का उपबंध करने हेतु जोड़ने का प्रस्ताव है कि यदि (क) संगत तथ्य या दस्तावेज विवादास्पद है, या (ख) मौखिक साक्ष्य लिया जाना जरूरी है, या (ग) प्रारम्भिक मुद्दों की जांच से मामला माध्यस्थम को निर्दिष्ट किए जाने में विलम्ब होने की संभावना है, या (घ) प्रश्नों का विनिश्चय होने से माध्यस्थम की लागत में पर्याप्त बचत होने की संभवना नहीं है, या (ङ) ऐसा कोई उचित कारण नहीं है कि इन प्रश्नों का विनिश्चय इस स्तर पर किया जाए तो न्यायिक प्राधिकारी प्रस्तावित उपधारा (4) में निर्दिष्ट उपर्युक्त मुद्दों का विनिश्चय नहीं कर सकेगा। उपर्युक्त कारकों को देखते हुए न्यायिक प्राधिकारी या तो मुद्दों का विनिश्चय करेगा या मामला माध्यस्थम को निर्दिष्ट करेगा। उपर्युक्त शर्तें यह सुनिश्चित करने के लिए लगाई गई हैं कि मामले को भेजने में विलम्ब करने के लिए प्रारम्भिक स्तर पर बेकार के अधिकारिता संबंधी मुद्दे न उठाए जाएं। इसके साथ ही यदि कथित मुद्दे उसासानी से और बिना किसी मौखिक साक्ष्य के विनिश्चित किए जा सकते हैं तो विनिश्चित किए जाएं और इससे निश्चित रूप से माध्यस्थम की लागत में बचत होगी।

(पैरा 2.4.9)

(छ:) धारा 8 (6): स्काट बनाम एवरी नामक खण्ड से उत्पन्न स्थिति से निपटने के लिए यह उपधारा जोड़े जाने का प्रस्ताव है। इस तरह के खण्ड के अन्तर्गत कोई भी पक्षकार माध्यस्थम खण्ड की उपेक्षा करके किसी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही दाखिल नहीं कर सकता तथा यह खण्ड पक्षकार से यह अपेक्षा करता है कि न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष कार्यवाही दाखिल करने की पूर्व शर्त के रूप में वह पहले माध्यस्थम पंचाट प्राप्त करे। लेकिन ऐसे मामले हो सकते हैं जहां न्यायिक प्राधिकारी यह विनिश्चित कर दे कि माध्यस्थम करार अक्षत और शून्य, अप्रवर्तनीय या अप्रभावी है या अस्तित्व में नहीं है तो ऐसे मामले में यह स्पष्ट है कि खण्ड में अपेक्षित पंचाट प्राप्त नहीं किया जा सकता। प्रस्तावित उपधारा (6) में यह उपबंध किया गया है कि उपयुक्त निर्दिष्ट ऐसी स्थितियों में स्काट बनाम एवरी खण्ड में दी गई पूर्व शर्त को पूरा किए जाने की आवश्यकता है।

(पैरा 2.4.9)

12. धारा 8क तथा स्पष्टीकरण : धारा 8 के निर्वचन में उच्चतम न्यायालय के सामने आ रही कठिनाई को देखते हुए यह धारा जोड़े जाने का प्रस्ताव है ताकि वाद लम्बित रहने की अवधि के दौरान किए गए माध्यस्थम करारों को इसमें शामिल किया जा सके। निःसंदेह उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया था कि धारा 8 की भाषा का कुछ कठिनाई के साथ विस्तार करके उसमें ऐसी स्थिति को शामिल किया जा सकता है। लेकिन उच्चतम न्यायालय ने उसी मामले में यह कहा था कि यदि अपील के स्तर पर भी उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा कोई मामला निर्दिष्ट किया जाता है तो पंचाट से संबंधित आपत्तियां धारा 2(1)(ङ) में यथास्थिति, प्रधान न्यायालय में ही दायर करनी होंगी। इस तरह की प्रक्रिया से स्पष्टतः जिला न्यायालय से आरम्भ होकर अतिरिक्त मुकदमेबाजी होगी जोकि पूरी तरह अवांछनीय है। अतः यह जरूरी हो जाता है कि जिस न्यायालय ने मामले को निर्दिष्ट किया है, उसी में पंचाट संबंधी आपत्तियां दायर करने की अनुमति देकर इन समस्याओं का निराकरण किया जाए।

उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक मामले में जो स्थिति उत्पन्न हुई थी उस स्थिति के समाधान के लिए नई धारा 8क में एक स्पष्टीकरण जोड़ने का प्रस्ताव है। उस मामले में रिट न्यायालय ने रिट कार्यवाही लम्बित करके, पक्षकारों द्वारा किए गए करार के अनुसार उन्हें माध्यस्थम को निर्दिष्ट कर दिया था। अतः ऐसी स्थिति के संबंध में उपबंध करने का प्रस्ताव है ताकि जहां पक्षकारों के बीच सिविल विधि के अधीन अपने अधिकारों के संबंध में विवाद है, वहां वे रिट अधिकारिता के अन्तर्गत माध्यस्थम के लिए जा सकें। इस स्पष्टीकरण में यह उपबंध किया गया है कि जहां पक्षकारों के बीच सिविल विवाद अन्तर्ग्रस्त है वहां धारा 8क में "विधिक कार्यवाही" शब्द में रिट याचिकाएं भी शामिल होंगी।

13. धारा 9: (i) इस धारा का पुनर्विन्यास करके और इस धारा के उस बाद वाले हिस्से को जो न्यायालय की शक्तियों से संबंधित है, पहले लाकर और न्यायालय की प्रदत्त शक्तियों को धारा के बाद वाले भाग में लाकर संशोधन करने का प्रस्ताव है। धारा के वर्तमान रूप से यह आभास होता है कि न्यायालय की जो शक्तियां धारा के बाद वाले भाग में निर्दिष्ट हैं वह धारा के पूर्ववर्ती भाग में निर्दिष्ट शक्तियों के समान ही सीमित हैं। वर्तमान धारा को उपधारा (1) से (3) में विभाजित करके इस स्थिति को स्पष्ट किया जा रहा है।

(पैरा 2.6.2)

(ii) उपधारा (4) से (6) भी जोड़े जाने का प्रस्ताव है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कोई पक्षकार जो न्यायालय से अन्तरिम आदेश प्राप्त करता है, माध्यस्थम अधिकरण नियुक्त कराने के उपाय करने से परहेज न करे। अन्यथा उसे बिना किसी समय-सीमा के अंतरिम आदेश के लाभ प्राप्त होते रहेंगे। प्रस्तावित उपधारा (4) से (6) के अन्तर्गत न्यायालय से यह अपेक्षा की गयी है कि वह धारा 9 के अधीन अंतरिम आदेश देते समय यह भी निदेश दे कि पक्षकार को धारा 11 के अधीन 30 दिन के भीतर माध्यस्थम अधिकरण नियुक्त कराने के लिए कदम उठाने चाहिए और अन्यथा न्यायालय द्वारा समय-सीमा न बढ़ाए जाने की स्थिति में अंतरिम आदेश निष्प्रभावी हो जाएगा। यह उपबंध भी किया गया है कि यदि पक्षकार ऐसे कदम नहीं उठाता और अंतरिम आदेश निष्प्रभावी हो जाता है तो न्यायालय मामले की परिस्थितियों को देखते हुए, यथावश्यक रूप से प्रत्यास्थापन आदेश पारित कर सकेगा।

(पैरा 2.6.2)

14. धारा 10क: यह धारा यह सुनिश्चित करने के लिए जोड़ने का प्रस्ताव है कि कोई पक्षकार (जो सरकार या सरकारी क्षेत्र के उपक्रम का कोई सांविधिक प्राधिकरण नहीं है) संयुक्त व्यापारिक हित आदि वाले अपने किसी कर्मचारी को परामर्शदाता या मध्यस्थ नियुक्त नहीं करेगा। माध्यस्थम करारों में ऐसे खण्ड उस सीमा तक शून्य हो जाएंगे। इसके अतिरिक्त, यह भी उपबंध किया गया है कि यह उपबंध उन अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम करारों पर लागू नहीं होगा जिनका माध्यस्थम का स्थान भारत में है।

(पैरा 2.7.2)

15. धारा 11: धारा 11 में कई संशोधन करने का प्रस्ताव है। इसके साथ ही यह सुनिश्चित करने का भी ध्यान रखा जाएगा कि मामले को माध्यस्थम को निर्दिष्ट करने में विलम्ब न हो।

(i) धारा 11(4) से (12): इन उपधाराओं में ''भारत के मुख्य न्यायमूर्ति'' तथा ''मुख्य न्यायमूर्ति'' शब्दों के स्थान पर ''उच्चतम न्यायालय'' तथा ''उच्च न्यायालय'' शब्द प्रतिस्थापित करने का प्रस्ताव है ताकि मध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति न्यायिक पक्ष पर की जाए। विद्यमान धारा 11 के अधीन होने वाले लाभों के संबंध में कतिपय गलत अवधारणाओं तथा ऐसे किसी संशोधन के लाभों पर आयोग की रिपोर्ट में विस्तार से चर्चा की गई है और यह भी कहा गया है कि अनसिट्राल मॉडल विधि तथा विभिन्न देशों के नई माध्यस्थम विधियों के अधीन माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति न्यायिक पक्ष पर की जाए। आयरलैण्ड में हाल ही में पारित उस अधिनियम का भी हवाला दिया गया है जिसके अधीन उच्च न्यायालय के अध्यक्ष के रूप में परिभाषित किया गया है जिसका अर्थ यह है कि माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति उच्च न्यायालय के अध्यक्ष द्वारा न्यायिक पक्ष पर की जाए।

(पैरा 2.8.15)

(ii) धारा 11(5क): यह उपधारा उन स्काट जनाम एवरी खण्डों से संबंधित प्रस्तावित धारा 10क के परिणामस्वरूप जोड़े जाने का प्रस्ताव है जहां पक्षकार, धारा 8 के अधीन कार्यवाही को किसी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष दाखिल करने से पूर्व पंचाट प्राप्त करने की पूर्व शर्त को पूरी नहीं कर सकता। कारण यह है कि यदि माध्यस्थम करार अवृत्त व शून्य आदि पाया जाता है तो पंचाट प्राप्त करना संभव नहीं होता। ऐसे मामलों में पक्षकारों को प्रस्तावित उपधारा (5क) के अधीन यह अनुमति दी गई है कि वे माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के लिए धारा 11 के अधीन उपलब्ध प्रक्रिया का लाभ उठाएं क्योंकि माध्यस्थम करार को अवृत्त एवं शून्य आदि ठहरा दिया गया है।

(पैरा 2.8.15)

(iii) धारा 11(4), (5) और (6) में संशोधन करने का प्रस्ताव है: इन उपधाराओं में संशोधन करके यथापूर्वोक्त रूप में यह उपबंध करके जोड़ने का प्रस्ताव है कि यदि कोई पक्षकार जिससे माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के लिए अनुरोध किया गया है, नियुक्ति करने की कार्यवाही के लिए कदम नहीं उठाता तो यह मान लिया जाना चाहिए कि उक्त पक्षकार ने नियुक्ति के अपने अधिकार का अधित्यजन कर दिया है। यह उपबंध इसलिए भी जरूरी हो गया है क्योंकि बहुत से पक्षकार जिन्हें माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के लिए नोटिस प्राप्त होता है, न तो कोई जवाब देते हैं और न ही मध्यस्थ की नियुक्ति करते हैं और जब दूसरा पक्षकार धारा 11 के अधीन अनुमति प्राप्त करने के लिए न्यायालय का सहारा लेता है, तो ये नियुक्ति करने के अपने विशेषाधिकार का अवलम्ब लेते हैं। हम यह प्रस्ताव भी करते हैं कि उपधारा (4) और (5) में नियुक्ति के लिए 30 दिन की अवधि को बढ़ाकर 60 दिन कर दिया जाए। हमने यह प्रस्ताव भी किया है कि यदि उपधारा 6 में बताई गई नियुक्ति की प्रक्रिया का अनुसरण नहीं किया जाता तो यह माना जाएगा कि प्रक्रिया के अन्तर्गत नियुक्ति करने के अधिकार का अधित्यजन न कर दिया गया है।

(पैरा 2.8.15)

(iv) धारा 11(13), (14): इन दो उपधाराओं को उसी प्रकार जोड़े जाने का प्रस्ताव है जिस प्रकार पूर्वोक्त धारा 8 में उपधारा (4) और (5) जोड़ी गई है ताकि यह अपेक्षित किया जा सके कि यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय (अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम या भारत में दो भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी माध्यस्थम में धारा 11 के अधीन किसी आवेदन की दशा में) इन

प्रारम्भिक मुद्दों का विनिश्चय करेगा कि क्या (क) कोई विवाद अस्तित्व में नहीं है, या (ख) माध्यस्थम करार अकृत एवं शून्य या अप्रवर्तनीय है, या (ग) इन प्रश्नों की जांच करने से माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट किए जाने में विलम्ब होने की संभावना है, या (घ) प्रश्न का विनिश्चय करने के लिए किए गए अनुरोध अनुचित रूप से अधिक विलम्ब से किए गए, या (ङ) प्रश्न का विनिश्चय माध्यस्थम के मामले में पर्याप्त लाभ होने की संभावना नहीं है, या (च) ऐसा कोई उचित कारण नहीं है कि इन प्रश्नों का इसी चरण में विनिश्चय किया जाए। यदि उपर्युक्त न्यायालय यह देखते हैं कि प्रारम्भिक प्रश्न पर्याप्त रूप से सरल है तो वे उनका विनिश्चय कर सकते हैं अन्यथा वे इन प्रश्नों को भी माध्यस्थम अधिकरण को निर्दिष्ट कर सकते हैं। इस प्रकार यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त सावधानी बरती गई है कि कोई भी व्यक्ति अधिकारिता संबंधी प्रारम्भिक मुद्दों को उठाने के अधिकार का अनुचित लाभ न उठा सके या मध्यस्थों की नियुक्ति में विलम्ब न कर सके। इसके साथ ही इस बात की भी सावधानी बरती गई है कि पक्षकार माध्यस्थम को निर्दिष्ट किए जाने की वजह से अनावश्यक व्यय वहन न करें।

(पैरा 2.8.15)

16. धारा 12: इस धारा में संशोधन करने का प्रस्ताव है ताकि प्रस्तावित मध्यस्थों को उन विशिष्ट परिस्थितियों को लिखित में बताने का निर्देश दिया जा सके जो कि उनकी जानकारी में है जैसे उनका अपने पक्षकारों में से किसी से या अपने परामर्शदाता से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विगत में कोई संबंध था या वर्तमान में कोई संबंध है या ऐसे कोई तथ्य हैं जो किसी संबद्ध वित्तीय कारोबार, व्यावसायिक या अन्य प्रकार के हैं जिनसे उनके स्वतंत्र या निष्पक्षता के संबंध में न्यायसंगत शंकाएं उत्पन्न होती हों।

(पैरा 2.9.2)

17. धारा 14: इस धारा में इस आशय का उपबंध करने हेतु संशोधन करने का प्रस्ताव है कि जहां किसी मध्यस्थ के आदेश को समाप्त कर दिया गया है वहां न्यायालय उसे देय फीस की राशि का विनिश्चय कर सकेगा।

(पैरा 2.11.2)

18. धारा 15: इस धारा में इस आशय का उपबंध करने हेतु संशोधन करने का प्रस्ताव है कि प्रतिस्थापी मध्यस्थ की नियुक्ति 30 दिन के अन्दर कर दी जाए तथा यह कि जिस मध्यस्थ का आदेश समाप्त कर दिया गया है, उसे देय फीस की राशि का विनिश्चय न्यायालय करेगा।

(पैरा 2.11.3)

19. धारा 17: इस धारा में उन शक्तियों की सूची में कुछ और शक्तियां जोड़कर संशोधन करने का प्रस्ताव है जिनका प्रयोग माध्यस्थम अधिकरण द्वारा किया जा सकता है जैसा कि 1996 के इंग्लिश अधिनियम में अन्तर्विष्ट है।

(पैरा 2.13.3)

20. धारा 20: धारा 20(1) में वर्तमान रूप में यह उपबंध किया गया है, "पक्षकारों को माध्यस्थम के स्थान पर करार करने की स्वतंत्रता होती है"। धारा 20 अधिनियम के भाग-एक में है तथा यह भारत में माध्यस्थमों के बारे में है। इससे स्पष्ट है कि धारा 20(1) धारा 2(2) के अध्यधीन है तथा जिन माध्यस्थमों पर भाग-एक लागू होता है, उनके मामलों में, अध्याय-दो में बताए गए कारणों की वजह से माध्यस्थम का स्थान केवल भारत में हो सकता है। गलतफहमी को दूर करने के लिए और अध्याय-दो में बताए गए कारणों की वजह से हमारा प्रस्ताव है कि धारा (1) के अन्त में "भारत के भीतर" शब्द जोड़े जाए ताकि चुना गया स्थान भारत तक सीमित हो तथा अन्य उपधाराओं को परन्तुकों में परिवर्तित किया जाए ताकि पक्षकारों के असहमत होने की स्थिति में भी, माध्यस्थम अधिकरण केवल भारत के ही स्थान का चयन कर सके।

(पैरा 2.14.1)

21. धारा 23(1): इस उपधारा में संशोधन करके उन शब्दों का लोप करने का प्रस्ताव है जो पक्षकारों को माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष अभिकथन दाखिल करने हेतु प्रक्रिया या समय-सूची निर्धारित करने

की अनुमति देते हैं। परिणामतः अब दोनों को निश्चित करने का काम माध्यस्थम अधिकरण का होगा। इस संशोधन द्वारा माध्यस्थम कार्यवाहियों को तेज करने और उन पक्षकारों या व्यक्तियों का परिहार करने का प्रस्ताव है जो कारण करके और अनावश्यक स्थगन की मांग करके उनका प्रतिनिधित्व करते हैं। यह उपबंध करने का भी प्रस्ताव है कि अभिवचन दाखिल करने के प्रयोजन के लिए माध्यस्थम अधिकरण द्वारा यथास्थिति, प्रक्रिया और समय-सूची पक्षकारों के लिए बाध्यकारी होनी चाहिए। यह संशोधन कई मध्यस्थों की इस शिकायत को देखते हुए जरूरी हो गया है कि भारत में पक्षकार या वे लोग जो उनका प्रतिनिधित्व करते हैं, धारा 23(1) के विद्यमान उपबंधों का अनुचित लाभ उठाकर बिना किसी उचित कारण के स्थगन के लिए सहमत हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त, धारा 23(1क) के अधीन उच्च न्यायालय धारा 82 के अधीन माध्यस्थम प्रक्रिया को तेज करने के लिए नियम विहित कर सकता है। भारत में विभिन्न स्थितियों को देखते हुए यह संशोधन आवश्यक हो गया है।

(पैरा 2.15.2)

22. धारा 24 (1): इस उपधारा में से उन शब्दों का लोप करके संशोधन करने का प्रस्ताव है जो पक्षकारों या उन लोगों को जो कि उनका प्रतिनिधित्व करते हैं, बिना किसी उचित कारण के साक्ष्य के दौरान माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष कार्यवाहियों को स्थगित कराने के लिए सहमत होने की अनुमति देते हैं। यह प्रस्ताव है कि माध्यस्थम अधिकरण को साक्ष्य की प्रक्रिया तथा समय-सूची निश्चित करने की शक्तियां प्रदान की जाएं। अधिकरण को अभिसाक्षी की जांच करने के पक्षकारों के किसी भी अधिकार के अध्यधीन शपथ-पत्र पर साक्ष्य लेने की भी स्वतंत्रता होगी। माध्यस्थम अधिकरण द्वारा निश्चित प्रक्रिया और समय-सूची पक्षकारों या उनका प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों के लिए बाध्यकारी होंगी। यह भी ऐसे नियम के अध्यधीन होगा जो उच्च-न्यायालय द्वारा धारा 82 के अधीन बनाए जायें। भारत में विभिन्न स्थितियों को देखते हुए यह संशोधन आवश्यक हो गया है।

(पैरा 2.16.2)

23. धारा 24क: यह धारा अन्तःस्थापित करने का प्रस्ताव है ताकि जिस माध्यस्थम अधिकरण ने धारा 17, 23 या 24 के अधीन आदेश पारित किए हैं, उससे पक्षकारों द्वारा उक्त आदेशों का पालन कराया जा सके तथा उनका अनुपालन न किए जाने की स्थिति में अधिकरण अभिवचनों को रद्द करके या लागत लगाकर या महत्वपूर्ण दस्तावेजों को छोड़कर या प्रतिकूल निष्कर्ष निकालकर आदेश पारित कर सकता है।

(पैरा 2.17.2)

24. धारा 24ख: इस धारा को जोड़े जाने का प्रस्ताव है पक्षकार या माध्यस्थम अधिकरण (यदि आवश्यकता हो तो) धारा 17, 23 और 24 के अधीन माध्यस्थम अधिकरण द्वारा पारित अंतरिम आदेशों के कार्यान्वयन के प्रयोजन के लिए न्यायालय से सम्पर्क कर सकें। लेकिन न्यायालय से सम्पर्क करने से पूर्व माध्यस्थम अधिकरण को अंतरिम आदेश के समान आधार पर ही अनिवार्य आदेश पारित करना होगा। यह उपबंध इसलिए आवश्यक हो गया है क्योंकि कई मध्यस्थों ने यह शिकायत की है कि जब पक्षकार उनके अंतरिम आदेशों का पालन नहीं करते तो वे असहाय हो जाते हैं। 1996 के इंग्लिश अधिनियम में इस तरह का उपबंध है।

(पैरा 2.18.2)

25. धारा 28(1),(1क): धारा 28(1) की अपने वर्तमान रूप में, इन शब्दों के साथ शुरूआत होती है, जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में स्थित है तथा खण्ड (क) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के बारे में न होकर पूरी तरह देशी माध्यस्थम के बारे में है। इसके वर्तमान रूप से यह आभास होता है कि दो भारतीय राष्ट्रिकों या भारतीय कंपनियों के बीच के इस तरह के पूरी तरह देशी माध्यस्थम के मामले में, विदेशी विधि संविदा के अधीन विवाद पर लागू हो सकता है। धारा 20(1) के संबंध में अध्याय-दो में दिए गए कारणों की वजह से, ऐसे मामलों में माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर रखने का कोई प्रश्न ही नहीं है। हमने पहले ही धारा 20(1) के अंत में "भारत के भीतर" शब्द जोड़ने का प्रस्ताव किया है। धारा 28(1) में प्रयुक्त इन शब्दों जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में स्थित है, अर्थात् यह स्थान भारत के बाहर भी हो सकता है, से उत्पन्न होने वाली धारणा के निराकरण के लिए हमारा प्रस्ताव है कि उपधारा (1) खण्ड

(क) से उपयुक्त शब्दों की प्रयोज्यता का अपवर्जन किया जाए। तदनुसार हम बिना उक्त शब्दों के खण्ड (क) को उपधारा (1) के रूप में अभिहित करते हैं तथा खण्ड (ख) को उपधारा (1क) के रूप में अभिहित करते हैं और उपर्युक्त शब्दों को इस उपधारा में स्थानान्तरित करते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय मध्यस्थम से संबंधित है।

(पैरा 2.19.2)

26. धारा 29: धारा 29 में यह उपबंध करने के लिए संशोधन करने का प्रस्ताव है कि अल्पमत राय को माध्यस्थम पंचाट के साथ संलग्न किया जाएगा यदि वह अन्य मध्यस्थों के विनिश्चय के 30 दिन के भीतर उपलब्ध कर दिया जाता है।

(पैरा 2.20.1)

27. धारा 29क: पंचाट पारित करने और माध्यस्थम प्रक्रिया को तेज करने के लिए समय-सीमा निश्चित करने के लिए यह धारा जोड़े जाने का प्रस्ताव है। 1996 के अधिनियम में पंचाट पारित करने के लिए समय-सीमा निश्चित करने के लिए इस आधार पर कोई उपबंध नहीं किया गया था कि न्यायालय में अवधि बढ़ाए जाने के लिए दिए गए आवेदनों का पर्याप्त शीघ्रतापूर्वक निपटारा नहीं किया जा रहा तथा यह कि इसमें अत्यधिक विलम्ब हो रहा था। यह प्रस्ताव किया जाता है कि माध्यस्थम आरम्भ होने के बाद आरम्भ में एक वर्ष का समय दिया जाए तथा पक्षकारों को भी अवधि अधिकतम एक वर्ष और बढ़ाने के लिए सहमत होने की अनुमति दी जाए। तत्पश्चात्, यदि और अधिक विलम्ब होता है, तो जब तक न्यायालय में पक्षकारों द्वारा आवेदन नहीं किया जाता या यदि पक्षकार ऐसा नहीं करते तो जब तक माध्यस्थम अधिकरण द्वारा अवधि बढ़ाने के लिए आवेदन दाखिल नहीं किया जाता तो कार्यवाही निलम्बित रहेगी। जैसे ही आवेदन दाखिल कर दिया जाएगा, कार्यवाही फिर से प्रारम्भ हो जाएगी। यह उपबंध करने का प्रस्ताव है कि समय बढ़ाने के लिए आवेदन पर विचार किए जाने तक माध्यस्थम कार्यवाही का स्थगन नहीं होगा तथा यह कि आवेदन-पत्र पर विचार होने तक माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम की कार्यवाही जारी रखेगा न्यायालय पंचाट पारित करने के लिए समय बढ़ाएगा तथा न्यायालय विलम्ब के कारण, पक्षकारों के आचरण, फीस और अन्य व्ययों की मदों में पहले ही खर्च की जा चुकी धनराशि, पहले किए जा चुके कार्य और किए जाने के लिए शेष कार्य के परिमाण को देखते हुए समय-सूची और आगे की प्रक्रिया निश्चित करेगा। न्यायालय पंचाट पारित किए जाने तक समय-समय पर आदेश पारित करेगा। 1996 के अधिनियम के बाद भी भारत में विद्यमान विचित्र स्थितियों को देखते हुए यह उपबंध करना और भी आवश्यक हो जाता है। प्रस्तावित धारा 29क की उपधारा 8 के अन्तर्गत यह अपेक्षित किया गया है कि समय बढ़ाने के आवेदन पर पहला आदेश प्रतिपक्ष को नोटिस तामील किए जाने की तारीख से एक महीने के भीतर पारित किया जाएगा। उच्च न्यायालय द्वारा आगे की प्रक्रिया, धारा 82 के अधीन नियम बनाकर विहित की जा सकती है।

(पैरा 2.21.6)

28. धारा 31क: यह धारा जोड़े जाने का प्रस्ताव है ताकि माध्यस्थम अधिकरण से यह अपेक्षा की जा सके कि वह धारा 2(1)(ङ) में निर्दिष्ट प्रधान न्यायालयों में माध्यस्थम रिकार्डों के साथ-साथ माध्यस्थम पंचाट की फोटो प्रति भी दाखिल करेगा। पंचाट का दाखिल किए जाना केवल रिकार्ड के प्रयोजन के लिए है। पक्षकार पंचाट या अन्य दस्तावेजों या माध्यस्थम कार्यवाहियों की फोटो प्रति की प्रमाणित प्रतिलिपियां प्राप्त कर सकते हैं। यदि किसी अन्य न्यायालय द्वारा रिकार्ड मंगाया जाता है तो उस रिकार्ड को उस न्यायालय को भेजे जाने का उपबंध किया गया है। रिकार्डों का संरक्षण न्यायालय में संरक्षित अन्य रिकार्डों पर लागू होने वाले विद्यमान नियमों से शासित होगा। न्यायालय को पंचाटों का एक रजिस्टर रखना होगा जिसमें इस धारा में अपेक्षित विवरण तथा ऐसे अन्य विवरण होंगे जो नियम बनाने वाले प्राधिकारी द्वारा अपेक्षित हों।

(पैरा 2.24.4)

29. धारा 34: यह धारा पंचाट को अपास्त करने के आवेदनों के बारे में है। इस धारा में संशोधन करने का प्रस्ताव है ताकि कतिपय कमियों को दूर किया जा सके और प्रस्तावित धारा 32क से उत्पन्न होने

वाले कुछ पारिणामिक संशोधनों का उपबंध किया जा सके जिनका विवरण क्रमांक 30 के अन्तर्गत दिया गया है।

(पैरा 2.25.1)

(i) धारा 34 की उपधारा (1): इस धारा में संशोधन का प्रस्ताव है ताकि पक्षकारों को भारतीय राष्ट्रिकों से संबंधित पूरी तरह देशी माध्यस्थम पंचाटों के मामले में धारा 34क में प्रस्तावित अतिरिक्त कारणों की पंचाट अपास्त करने के अपने आवेदनों में शामिल करने की अनुमति दी जा सके।

(पैरा 2.25.2)

(ii) धारा 34 के नीचे स्पष्टीकरण-II धारा 34 के अनुसार पक्षकार धारा 13(2) के अधीन माध्यस्थम अधिकरण द्वारा किए ऐसे विनिश्चय के संबंध में आपत्ति नहीं कर सकते जिसके द्वारा धारा 16(2) या (3) के अन्तर्गत उक्त अधिकरण के निर्णय के संबंध में दिए गए किसी पूर्वाग्रह के तर्क या आपत्ति को अस्वीकृत किया गया हो या माध्यस्थ अधिकरण की तरफ से अधिकारिता न होने के तर्क को अस्वीकृत किया गया हो। तथापि, इन उपचारों की विद्यमानता का उल्लेख धारा 13 और 16 में किया गया था लेकिन इन उपचारों को धारा 34 में शामिल नहीं किया गया था तथा इसके अलावा धारा 34(1) में "केवल" शब्द का प्रयोग धारा 13 और 16 में कही गई बातों के प्रतिकूल था धारा 34 की उपधारा (2) के नीचा स्पष्टीकरण-II जोड़कर इस स्थिति को ठीक किया जा रहा है और इस स्पष्ट किया जा रहा है कि उपर्युक्त विनिश्चयों के बारे में धारा 34(1) के अधीन किए गए आवेदनों में न्यायालय के समक्ष आक्षेप किया जा सकता है।

(पैरा 2.10.1)

(iii) उपधारा (1क): हम धारा 34 में उपधारा (1क) जोड़ने का प्रस्ताव करते है ताकि पंचाट अपास्त करन के लिए कोई आवेदन दाखिल करते समय, पक्षकार मूल पंचाट आवेदक की पूर्ति (सप्लाई) न किए जाने की स्थिति में, पंचाट की एक फोटो प्रति संलग्न कर सकें।

(पैरा 2.25.2)

(iv) उपधारा (5) और (6): इन उपधाराओं को जोड़े जाने का प्रस्ताव है ताकि उपधारा (4) के पश्चात अर्थात जिस माध्यस्थम अधिकरण को पंचाट, उपधारा 34 की उपधारा (1) के अधीन दाखिल आवेदन में उल्लिखित कमियों को दूर करने के लिए दिया गया है, उसके आदेश की प्राप्ति के पश्चात अपनाई जाने वाली आगे की प्रक्रिया का निर्देश किया जा सके। आगे की प्रस्तावित प्रक्रिया यह है कि पक्षकार ऐसे प्रेषण के पश्चात अधिकरण द्वारा पारित आदेश के बारे में अपनी आपत्तियां दाखिल कर सकते हैं तथा यह भी उपबंध किया गया है कि न्यायालय धारा 34 और प्रस्तावित धारा 34क के अधीन अनुमत्य आधारों के प्रकाश में, उक्त आपत्तियों पर भी विचार कर सकता है।

(पैरा 2.25.2)

30. धारा 34क: उन पूरी तरह देशी माध्यस्थमों के मामले में, जहां दो भारतीय राष्ट्रिकों के बीच कोई पंचाट पारित किया गया है, यह प्रस्ताव किया जाता है कि पक्षकारों को धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन अपने आवेदन में आपत्ति के दो अतिरिक्त आधार शामिल करने की अनुमति दी जाए। ये दो अतिरिक्त आधार है--(i) कि माध्यस्थम पंचाट रूप से ऐसी गलती की गई है जिससे विधि का सारभूत प्रश्न उद्भूत होता है और (ii) यह कि यद्यपि यह ऐसा पंचाट था जिसमें कारण बताना अपेक्षित था क्योंकि यह पंचाट समझौते के आधार पर नहीं दिया गया था या जिसमें करार में यह उपबंध नहीं किया गया था कि कारण बताए जाने की आवश्यकता नहीं है, तथापि पंचाट में कारण नहीं बताए गए हैं।

ऊपर निर्दिष्ट अतिरिक्त आधार (i) के मामले में, विशेष शर्तें लगाई जाती हैं अर्थात यह कि पक्षकार को उक्त आधार को उठाने की अनुमति के लिए आवेदन दाखिल करना चाहिए तथा न्यायालय का इस बारे में प्रथम दृष्टया समाधान करना चाहिए कि इस तरह का प्रश्न माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष उठाया गया था और यह कि यह पक्षकारों के अधिकारों को पर्याप्त रूप से प्रभावित करता है और प्रश्न का विनिश्चय करना उचित होगा। धारा 34(1) के अधीन दिए उस आवेदन में उठाए गए सारभूत प्रश्न का विशिष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए प्रस्तावित धारा 34क की उपधारा (3) में यह उपबंध किया गया कि अतिरिक्त आधार (i) वहां उपलब्ध नहीं होगा जहां कोई विशिष्ट विधि का प्रश्न माध्यस्थम अधिकरण को निर्दिष्ट किया गया था।

(पैरा 2.26.3)

31. धारा 36(1): (i) धारा 36 में उसके वर्तमान रूप में यह उपबंध किया गया है कि धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन पंचाट को आपास्त करने के लिए कोई आवेदन दाखिल किए जाने पर पंचाट का प्रवर्तन रुक जाएगा पक्षकार आजकल ऐसे आवेदन दाखिल कर रहे हैं चाहे ऐसे आवेदनों में कोई भी सार न हो। अतः धारा 36 में विद्यमान धारा को उपधारा (1) बनाकर तथा उन शब्दों का लोप करके जिनमें कहा गया है कि धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन आवेदन दाखिल कर दिए जाने पर पंचाट को प्रवर्तित नहीं किया जाएगा, संशोधन करने का प्रस्ताव है। (ii) इस धारा में इस बात का उपबंध करने का प्रस्ताव है कि किसी पंचाट को अपास्त करने के लिए धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन आवेदन दाखिल करने मात्र से पंचाट का स्थगन नहीं होगा जब तक कि न्यायालय प्रस्तावित उपधारा (3) के अधीन कोई आदेश पारित नहीं कर देता। (iii) उपधारा (3) से (5): ये उपधाराएं जोड़े जाने का प्रस्ताव है ताकि न्यायालय धारा 34 और 34क के अधीन उपलब्ध सीमित आधारों के आलोक में ऐसी शर्तों के अध्यधीन, जो वह उचित समझे, पंचाट के प्रवर्तन का स्थगन कर सके। इन उपधाराओं के अधीन, न्यायालय तीसरे पक्षकार या ऐसी सम्पत्ति के विरुद्ध जो कि माध्यस्थम की विषय-वस्तु नहीं है, उस पक्षकार के हितों की रक्षा के प्रयोजन के लिए, जिसके पक्ष में पंचाट पारित किया गया है, आदेश पारित कर सकता है।

(पैरा 2.29.7)

32. धारा 34क: इस धारा को जोड़े जाने का प्रस्ताव है कि ताकि न्यायालय धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन किसी आवेदन को (पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन) या किसी अपील को (चाहे वह नियमित अपील हो या अधिकरण के अन्तरिम आदेश के विरुद्ध की गई कोई अपील), प्रतिपक्ष को नोटिस जारी किए जाने से पूर्व भी आरम्भ में ही खारिज कर सकेगा। यह भी उपबंध करने का प्रस्ताव है कि जिस मामले में प्रतिपक्ष को नोटिस जारी कर दिया गया है, उसमें भी न्यायालय उपर्युक्त मामलों के निपटारे के समय तब तक मध्यक्षेप नहीं करेगा जब तक कि यथास्थिति, आवेदक या अपीलार्थी द्वारा 'पर्याप्त पूर्वाग्रह' न दर्शाया गया हो। यह भी उपबंध किया गया है कि सभी आवेदन और अपीलें प्रतिपक्ष को नोटिस तामील किए जाने के छः महीने के भीतर निपटाने होंगे। ये उपबंध सभी आवेदनों और अपीलों को अपने आप रिजेक्ट होने से बचाने के लिए तथा न्यायालयों में वर्षों तक अनिर्णित रखे जाने से बचाने के लिए किए जाने का प्रस्ताव है।

(पैरा 2.29.11)

33. धारा 42: इस धारा में संशोधन करने का प्रस्ताव है ताकि उन सभी स्थितियों में जहां प्रथम आवेदन धारा 8 के अधीन किसी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष या धारा 8क में निर्दिष्ट किसी न्यायालय के समक्ष या धारा में निर्दिष्ट किसी न्यायालय के समक्ष या धारा 11 के अधीन उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट किए जाने के लिए किया गया है, जहां परवर्ती आवेदन दाखिल किए जाने के लिए फोरम का उल्लेख किया जा सके। धारा 42 की विभिन्न प्रस्तावित उपधाराओं में उस न्यायालय का पृथक रूप से निदेश किया गया है जिसके समक्ष परवर्ती आवेदन या पंचाट आदि अपास्त करने के लिए धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन दिए गए आवेदन दाखिल करने होंगे। धारा 42 की उपधारा (1) सामान्य है, उपधारा (2) उन स्थितियों का निर्देश करती है जहां प्रथम आवेदन धारा 2(1) (ङ) के अधीन न्यायालय के समक्ष दाखिल किया गया है, उपधारा (3) उन स्थितियों के बारे में है जहां पहला आवेदन धारा 8 के अधीन किसी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष दाखिल किया गया है, उपधारा (4) उन स्थितियों के बारे में है जहां प्रथम आवेदन धारा 8क में निर्दिष्ट न्यायालयों में से किसी न्यायालय के समक्ष दाखिल किया गया है और उपधारा (5) में उन स्थितियों का उल्लेख किया गया है जहां पहला आवेदन धारा 11 के अधीन माध्यस्थम को प्रेषित करने की अनुमति के लिए उच्चतम न्यायालय के समक्ष दाखिल किया गया है।

(पैरा 2.30.6)

34. धारा 42क: यह धारा इसलिए जोड़े जाने का प्रस्ताव है ताकि भारत के मुख्य न्यायमूर्ति अपनी बनाई गई योजना के अधीन, ऐसी शर्तों के अध्यधीन जो वह निर्दिष्ट करे, मध्यस्थों की तालिका तैयार कर सके।

(पैरा 2.31.2)

35. धारा 42 ख: यह धारा इसलिए जोड़े जाने का प्रस्ताव है ताकि भारतीय भागीदारी अधिनियम की धारा 69 पर 1984 के महाराष्ट्र संशोधन के प्रभाव को समाप्त किया जा सके जिसने अरजिस्ट्रीकृत फर्म के भागीदारों को फर्म के विघटन, फर्म के लेखाओं के निपटारे या फर्म की आस्तियों की वसूली की अनुमति प्राप्त करने के अयोग्य बना दिया था। धारा 42ख इस असमर्थता का उस सीमा तक निवारण करती है जहां तक यह माध्यस्थम का कार्यवाही वृतान्तों के माध्यम से उपर्युक्त राहत की अनुमति प्राप्त करने के भागीदारों के अधिकार से संबंधित है।

(पैरा 2.32.3)

36. धारा 43: धारा 43 में दो संशोधन प्रस्तावित है:

(i) धारा 43(3): इस उपधारा में संशोधन किए जाने का प्रस्ताव है ताकि संविदा (संशोधन) अधिनियम, 1996 के उस प्रभाव की घोषणा की जा सके जिसके कारण भारतीय संविदा अधिनियम की धारा 28 में संशोधन किया गया। संविदा अधिनियम में किए गए उक्त संशोधन द्वारा पड़ने वाले प्रभाव को, जिसे एटलांटिक खण्ड के रूप में जाना जाता है, संसद द्वारा निष्प्रभावी किया गया। संशोधन में यह उपबंध किया गया था कि संविदा में रखे गए किसी खण्ड के प्रभाव स्वरूप यदि किसी अधिकार का निर्वापन होता है और पक्षकार द्वारा एक कदम विशेष (अर्थात कार्यवाही करने के तत्काल बाद 30 दिन का नोटिस देना) नहीं उठाया जाता तो इस तरह का खण्ड शून्य हो जाएगा। अब उपधारा (3) में संशोधन किए जाने का प्रस्ताव है तथा यह बताया गया है कि ऐसे खण्ड शून्य हो जाएंगे तथा यह कि जैसाकि इस समय उपधारा (3) में उपबंधित है, परिसीमा अधिनियम, 1963 के अधीन विहित अवधि के संबंध में पक्षकारों द्वारा समय-सीमा बढ़ाने के लिए किसी न्यायालय की अनुमति प्राप्त किए जाने की आवश्यकता नहीं होगी।

(पैरा 2.34.3)

(ii) धारा 43(5): यह उपधारा जोड़े जाने का प्रस्ताव है कि ताकि जहां माध्यस्थम अधिकरण ने धारा 16(2) या 16(3) के अधीन यह निष्कर्ष निकाला हो कि उसकी कोई अधिकारिता नहीं है या जहां आगे अपील किए जाने पर ऐसे आदेश को अधिपुष्टि की गई हो या जहां धारा 11(13) के अधीन किसी आवेदन में, यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला हो कि कोई माध्यस्थम करार नहीं हुआ है या यह कि यह अकृत और शून्य आदि है, वहां निष्फल माध्यस्थम कार्यवाही में लगी अवधि को अपवर्जित किया जा सके। ऐसे मामलों में, यदि पक्षकार को प्रस्तावित संशोधन के अधीन कोई नियमित वाद दाखिल करना है ,तो वह अब माध्यस्थम कार्यवाही में लगी अवधि को अपवर्जित कर सकेगा।

(पैरा 2.35.4)

37. संशोधनकारी अधिनियम की धारा 30-मूल अधिनियम की धारा 82 का संशोधन: उच्च न्यायालयों को यह निश्चित करने के लिए नियम बनाने होते है कि किस तरीके से माध्यस्थम की कार्यवाही संचालित की जाएगी, निरन्तर प्रतिदिन किस प्रकार से कार्यवाही की जाएगी तथा प्रतिदिन प्रात: 10.30 बजे से अपराह्न 4.00 बजे या कम से कम पांच बजे कार्यवाही की जाएगी

(पैरा 2.39.1)

38. संशोधनकारी अधिनियम की धारा 31-एक नई उपधारा (1क) का अन्त:स्थापन करके धारा 84 का संशोधन: इस प्रस्तावित उपधारा (1क) में केन्द्र सरकार को माध्यस्थम अधिकरण के सदस्यों की फीस निश्चित करने तथा उससे संबंधित प्रक्रिया एवं धारा 31क की उपधारा (4) के खण्ड (च) के अधीन भरे जाने वाले अन्य विवरणों के बारे में नियम बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। भारतीय राष्ट्रिकों के बीच पूरी तरह देशी माध्यस्थमों के संबंध में फीस निश्चित करने के बारे में मार्गदर्शी सिद्धान्त भी निर्धारित किए गए हैं।

(पैरा 2.39.3 तथा 2.39.4)

39. भाग एक में अध्याय-ग्यारह (धारा 43क से 43घ तथा अनुसूची-चार): त्वरित प्रक्रिया

माध्यस्थम के लिए अधिनियम के भाग-एक में यह अध्याय एवं अनुसूची-चार जोड़े जाने का प्रस्ताव है। यदि पक्षकार सर्वसम्मति से यह करार करते हैं कि वे इस प्रकार के माध्यस्थम का विकल्प चुन रहे हैं तो संविदा में किसी उपबंध के होता हुए भी, एकल मध्यस्थ द्वारा किया जाएगा तथा उसके द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया वही होगी जिसका उल्लेख अधिनियम के अध्याय-ग्यारह तथा अनुसूची-चार में किया गया है। जिस सीमा तक यह प्रक्रिया पूर्वोक्त उपबंधों के अन्तर्गत नहीं आती, उस सीमा तक इस अधिनियम के भाग-एक के अन्य उपबंध लागू होंगे। पंचाट, एकल सदस्य वाली माध्यस्थम अधिकरण के गठन की तारीख से छः महीने के भीतर पारित किया जाएगा। यदि ऐसा आदेश पारित नहीं किया जाता तो पक्षकार सहमति से, अवधि को अधिकतम तीन महीने और बढ़ा सकते हैं। यदि पंचाट छः महीने की अवधि में पारित नहीं किया जाता और जैसाकि ऊपर बताया गया है, पक्षकार और अवधि बढ़ाने के लिए करार करते हैं तो जब तक दोनों पक्षकारों में से कोई भी पक्षकार अवधि बढ़ाने के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन नहीं करता या जब तक एकल मध्यस्थ द्वारा अवधि बढ़ाने के लिए आवेदन नहीं करता और पक्षकार भी इस तरह का आवेदन नहीं करता तो कार्यवाही निलम्बित रहेगी और उसके पश्चात धारा 29 की उपधारा (4) से (8) तक के उपबंध लागू होंगे ताकि उच्च न्यायालय, पंचाट पारित किए जाने तक स्थगन की समय-सूची तथा अन्य प्रक्रिया पर निगरानी रख सके।

जहां तक माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष अभिवचन दाखिल करने तथा साक्ष्य दाखिल करने का संबंध है, वहां प्रत्येक चरण के लिए पन्द्रह-पन्द्रह दिनों की छोटी अवधियों का उपबंध किया गया है। जहां तक इस अध्याय का संबंध है, इस अधिनियम में उल्लिखित अन्य अवधियां कम हो जाती हैं।

किसी पंचाट को अपास्त करने के लिए धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन आवेदन जैसे सभी उत्तरवर्ती आवेदन, उसी उच्च न्यायालय में दाखिल करने होंगे।

माध्यस्थम अधिकरण के आदेशों को कार्यान्वित करने के लिए माध्यस्थम अधिकरण को समर्थ बनाने वाले उपबंध तथा माध्यस्थम अधिकरण के आदेशों को कार्यान्वित करने के लिए उच्च न्यायालय को समर्थ बनाने वाले उपबंध प्रस्तावित संशोधन में सम्मिलित किए गए हैं।

पक्षकारों द्वारा माध्यस्थम अधिकरण के आदेशों का समय-सूची के भीतर अनुपालन न किए जाने की स्थिति में या माध्यस्थम अधिकरण द्वारा उल्लिखित प्रक्रिया का पालन न किए जाने की स्थिति में माध्यस्थम अधिकरण को आदेश पारित करने हेतु समर्थ बनाने के लिए भी उपबंध किया गया है।

यह अध्याय तथा अनुसूची अन्य माध्यस्थम संस्थाओं द्वारा विहित सामान्य त्वरित माध्यस्थम प्रक्रिया का रूपान्तरित स्वरूप है जिसमें केवल इतना अन्तर है कि उन प्रक्रियाओं की तरह इसमें समय-सीमा कठोर नहीं है। इस अध्याय के अन्तर्गत दी गई प्रक्रिया को एक त्वरित माध्यस्थम प्रक्रिया कहा जा सकता है जिसमें अधिकतम सीमा परिवर्तनीय है तथा उच्च न्यायालय द्वारा नियंत्रित की जाती है।

प्रथम चरण में ही उच्च न्यायालय को लाकर, पहले जिला न्यायालय में जाने की आवश्यकता को समाप्त कर दिया गया है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन उच्च न्यायालय के बाद और आगे यदि कोई अपील की जाएगी तो वह केवल उच्चतम न्यायालय में की जाएगी।

(पैरा 2.38.2)

40. संशोधनकारी अधिनियम की धारा 32, 33 और 34: यह प्रस्ताव किया गया है कि धारा 32 "अस्थायी उपबंधों", धारा 33, 1996 के अधिनियम के अधीन लम्बित माध्यस्थम प्रक्रियाओं के लिए "समय-सीमाओं तथा माध्यस्थम की प्रक्रिया को तेज करने" तथा धारा 34, 1940 के अधिनियम के अधीन लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों के संबंध में "समय-सीमाओं तथा माध्यस्थम प्रक्रिया का तेज करने" से संबंधित है।

(i) संशोधनकारी अधिनियम की धारा 32 प्रस्तावित संशोधनकारी अधिनियम, प्रक्रियात्मक स्वरूप का होने के कारण, जब तक उक्त अधिनियम को भविष्यलक्षी नहीं बनाया जाता, तब तक माध्यस्थम कार्यवाहियों पर भी लागू होगा। इस लक्ष्य को पूरा करने के लिए धारा 32 की उपधारा (1) में यह उपबंध किया जा रहा है कि उपधारा (2) से (17) तक के उपबंधों के अध्यधीन संशोधन भविष्यलक्षी होंगे। उपधारा (2) से (17) में प्रस्तावित संशोधनकारी अधिनियम के कतिपय विशिष्ट उपबंध किए गए

हैं जो 1996 के अधिनियम के अधीन पहले ही पारित लम्बित माध्यस्थमों, लम्बित आवेदनों तथा पंचाटों पर लागू होंगे।

(पैरा 2.41.2)

यह सुनिश्चित करने के लिए पर्याप्त सावधानी बरती गई है कि केवल वे ही उपबंध लागू होंगे जिनसे माध्यस्थम अधिकरण तथा धारा 2(1) (ङ) के अधीन न्यायालयों के समक्ष या अपीली न्यायालय से उच्च न्यायालय तक के समक्ष माध्यस्थम प्रक्रिया में तेजी आएगी।

प्रस्तावित धारा 37क को लम्बित माध्यस्थम प्रक्रियाओं पर लागू करने योग्य बनाए जाने का प्रस्ताव है ताकि न्यायालय पर्याप्त पूर्वाग्रह दर्शाए जाने पर आवेदनों तथा अपीलों को आरम्भ में ही खारिज कर सकें।

(ii) (क) संशोधनकारी अधिनियम की धारा 33: प्रस्तावित धारा 34 में यह उपबंध किया गया है कि 1996 के अधिनियम के अधीन नियुक्त किसी माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष तीन वर्ष से अधिक समय से लम्बित माध्यस्थम कार्यवाही को अगले वर्ष के भीतर पूरा किया जाना चाहिए नहीं तो विद्यमान प्रक्रिया के अनुसार, पंचाट पारित किए जाने तक न्यायालय, धारा 29क की उपधारा (4) से (8) में बताए अनुसार, समय-सूची निर्धारित कर सकता है। धारा 33 के अधीन धारा 23(1) तथा 24(1) और 24क में प्रस्तावित उपबंध भी 1996 के अधिनियम के अधीन लम्बित कार्यवाहियों पर लागू किए जाते हैं।

1996 के अधिनियम से उद्भूत न्यायालयों में लम्बित सभी आवेदनों और अपीलों का निपटान 6 महीने में करना होता है तथा अन्तरिम आदेशों के विरुद्ध की गई सभी अपीलों का निपटान, संशोधनकारी अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख से तीन महीने के भीतर करना होता है।

धारा 37क को लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होने वाला बनाया गया है ताकि न्यायालय पर्याप्त पूर्वाग्रह दर्शाए जाने पर ही आवेदनों और अपीलों को प्रारम्भ में ही खारिज कर सके या उनका निपटारा कर सकें।

(ख) 1996 के अधिनियम के अधीन लम्बित माध्यस्थम के मामले में, जहां प्रस्तावित संशोधनकारी अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख तक तीन वर्ष समाप्त नहीं हुए हों, वहां यह प्रस्ताव किया गया है कि उस अवधि के पूरा होने पर, पंचाट पारित करने के लिए और 6 महीने की अवधि दी जाती है और फिर भी पंचाट पारित न होने पर, उपर्युक्त बताए अनुसार धारा 29क की उपधारा (4) से (8) तक के अधीन दी गई समय-सूची तथा प्रक्रिया पंचाट पारित होने तक लागू होगी।

(पैरा 2.42.1)

(iii) संशोधनकारी अधिनियम की धारा 34: इस धारा में यह उपबंध किया गया है कि सभी माध्यस्थम कार्यवाहियां जो 1940 के अधिनियम के अधीन आरम्भ की गई थी यदि संशोधनकारी अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख तक (जब तक स्थगन आदेश न हो) पूरी नहीं की गई है तो उन्हें ऐसे प्रारम्भ से एक वर्ष के भीतर पूरा करना होगा, ऐसा नहीं होने पर समय-सूची और प्रक्रिया की निगरानी यथास्थिति, पंचाट पारित किए जाने तक धारा 29क की उपधारा (4) के उपबंध लागू करके 1940 के अधिनियम की धारा 2(ग) या धारा 21 के अधीन संगत न्यायालय द्वारा की जाएगी।

यदि मामले मध्यस्थों के समक्ष लम्बित हों तो समय-सूची निश्चित करने और मध्यस्थों के आदेशों को कार्यान्वित कराने या उपर्युक्त संगत न्यायालय के द्वारा कार्यान्वित कराने के मामले में मध्यस्थों के हाथ मजबूत करने के लिए धारा 23(1) और धारा 24(1) और 2 ख लागू की जाएंगी।

पंचाट को न्यायालय का नियम बनाने के लिए न्यायालय में लंबित आवेदनों या पंचाट अपास्त करने के लिए की गई लम्बित आपत्तियों और 1940 के अधिनियम के अन्तर्गत धारा 39 के अधीन अधिनियम के प्रारम्भ से एक वर्ष के भीतर निपटारा करना होगा।

जहां माध्यस्थम कार्यवाहियों के बारे में न्यायालयों ने स्थगन आदेश दे दिए हैं, वहां अन्तरिम आदेशों के विरुद्ध की गई अपीलों और पुनरीक्षणों तथा अन्य आवेदनों का निपटारा, संशोधनकारी अधिनियम के प्रारम्भ की तारीख से 6 महीने के भीतर करना होगा।

धारा 37क को लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर भी लागू किया जा सकेगा ताकि न्यायालय, केवल पर्याप्त पूर्वाग्रह दर्शाए जाने पर, आवेदनों और अपीलों को आरम्भ में ही खारिज कर सकें या उनका निपटारा कर सकें।

(पैरा 2.43.2)

41. धारा 36: यह धारा मूल अधिनियम में, जहां त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के बारे में भाग-एक में अध्याय-ग्यारह जोड़ा गया है, अनुसूची-चार अन्तःस्थापित किए जाने के बारे में है।

(पैरा 2.38.2)

हम तदनुसार सिफारिश करते हैं।

ह०
(न्यायमूर्ति बी० पी० जीवन रेड्डी)
अध्यक्ष

ह०
(न्यायमूर्ति एम० जगन्नाथ राव)
उपाध्यक्ष

ह०
(डा० एन० एम० घटाटे)
सदस्य

ह०
(पि० टी० के० विश्वनाथन)
सदस्य-सचिव

दिनांक: 12.9.2001

उपाबंध-I

माध्यस्थम और सुलह (संशोधन) विधेयक, 2001

खण्डों का प्रबंधन

खण्ड सं॰

1. संक्षिप्त नाम तथा प्रारम्भ
2. धारा 2 का संशोधन
3. धारा 5 का संशोधन
4. धारा 6 का संशोधन
5. धारा 7 का संशोधन
6. धारा 8 का संशोधन
7. नई धारा 8क का अन्तःस्थापन
8. धारा 9 का प्रतिस्थापन
9. नई धारा 10क का अन्तःस्थापन
10. धारा 11 का संशोधन
11. धारा 12 का संशोधन
12. धारा 14 का संशोधन
13. धारा 15 का संशोधन
14. धारा 17 का संशोधन
15. धारा 20 का संशोधन
16. धारा 23 का संशोधन
17. धारा 24 का संशोधन
18. नई धाराओं 24क तथा 24ख का अन्तःस्थापन
19. धारा 28 का संशोधन
20. धारा 29 का संशोधन
21. नई धारा 29क का अन्तःस्थापन
22. नई धारा 31क का अन्तःस्थापन
23. धारा 34 का संशोधन
24. नई धारा 34क का अन्तःस्थापन
25. धारा 36 का प्रतिस्थापन
26. नई धारा 37क का प्रतिस्थापन
27. धारा 42 के स्थान पर नई धाराओं का प्रतिस्थापन
28. धारा 43 का संशोधन
29. भाग-एक में नए अध्याय-ग्यारह का अन्तःस्थापन

30. धारा 82 का संशोधन

31. धारा 84 का संशोधन

32. अस्थायी उपबंध

33. मूल अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों का शीघ्रता से पूरा किया जाना और पंचाट पारित करने के लिए समय-सीमा

34. माध्यस्थम अधिनियम, 1940 के अधीन कार्यवाहियों का शीघ्रता से पूरा किया जाना और पंचाट पारित करने के लिए समय-सीमा

35. नई अनुसूची का अन्तःस्थापन

माध्यस्थम् और सुलह (संशोधन) विधेयक, 2001

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 में

संशोधन करने हेतु

एक विधेयक

भारत गणराज्य के 52वें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो–

संक्षिप्त नाम

1. इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम माध्यस्थम और सुलह (संशोधन) अधिनियम, 2001 है।

धारा 2 का संशोधन

2. माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 (यहां इसके पश्चात मूल अधिनियम के रूप में निर्दिष्ट) की धारा 2 में–

(i) उपधारा (1) में खण्ड (ङ) और (च) के स्थान पर निम्नलिखित खण्ड प्रतिस्थापित किए जाएंगे, अर्थात:–

(ङ) न्यायालय से एक जिले में आरम्भिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय, किसी शहर में आरंभिक अधिकारिता वाला सिटी सिविल न्यायालय और इसमें माध्यस्थम् के विषय-वस्तु को बनाने वाले प्रश्नों को अवधारित करने की अधिकारिता रखने वाली इसकी साधारण प्रारंभिक सिविल अधिकारिता रखने वाला उच्च न्यायालय भी सम्मिलित है यदि वह एक वाद की विषय-वस्तु बन चुका था लेकिन इसमें ऐसे प्रधान सिविल न्यायालय या प्रधान न्यायाधीश सिटी सिविल न्यायालय या लघु वादों के किसी भी न्यायालय के निम्नतर श्रेणी का कोई न्यायालय सम्मिलित नहीं है।

(ङ क) "देशी माध्यस्थम्" से विधिक नातेदारी से उद्भूत होने वाले विवादों से संबंधित, चाहे संविदात्मक हों अथवा नहीं, माध्यस्थम् अभिप्रेत है जहां कोई भी पक्षकार नहीं है:–

(i) कोई ऐसा व्यक्ति जो भारत से भिन्न किसी दूसरे देश का नागरिक हो या आध्यासिक तौर पर निवासी हो;

(ii) कोई निगमित निकाय जिसे भारत से भिन्न किसी दूसरे देश में निगमित किया गया हो; या

(iii) कोई संगम या ऐसे व्यक्तियों का एक निकाय जिसका केन्द्रीय प्रबंधन और नियंत्रण भारत से भिन्न किसी दूसरे देश में किया जाता हो; या

(iv) विदेशी सरकार;

और इसमें अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् और अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् भी, जहां माध्यस्थम् का स्थान भारत में हो, सम्मिलित होंगे।

(ङ ख) "अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम्" से विधिक नातेदारी से उद्भूत होने वाले विवादों से संबंधित, संविदात्मक हों अथवा नहीं, माध्यस्थम् अभिप्रेत है और जहां कम से कम एक पक्षकार है–

(i) कोई ऐसा व्यक्ति जो भारत से भिन्न किसी दूसरे देश का नागरिक है या आध्यासिक तौर पर निवासी हो,

(ii) कोई निगमित निकाय जिसे भारत से भिन्न किसी दूसरे देश में निगमित किया गया हो, या

(iii) कोई संगम या ऐसे व्यक्तियों का एक निकाय जिसका केन्द्रीय प्रबंधन और नियंत्रण भारत से भिन्न किसी दूसरे देश में किया जाता हो, या

(iv) विदेशी सरकार;

और इसमें अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् और अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम् भी, जहां माध्यस्थम् का स्थान भारत में हो, सम्मिलित होंगे।

(च) "अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्" से ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् अभिप्रेत है जो भारत में प्रवृत विधि के अधीन वाणिज्यिक माना जाता है।

(च क)न्यायिक प्राधिकरण में कोई भी अर्ध–न्यायिक कानूनी प्राधिकरण सम्मिलित है"

(ii)उपधारा (2) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात:—

"(2) (क) यह भाग देशी माध्यस्थों पर लागू होगा;

(ख) इस भाग की धारा 8, 9, 27 और 36 ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों (वाणिज्यिक हों या नहीं) के लिए भी लागू होंगी जहां माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर हो या माध्यस्थम करार में विनिर्दिष्ट न किया गया हो"।

(iii) उपधारा (9) के पश्चात निम्नलिखित उपधारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात:—

"(10) किसी जिले में आरम्भिक अधिकारिता वाला प्रधान सिविल न्यायालय या प्रधान न्यायाधीश का न्यायालय, किसी शहर में आरम्भिक अधिकारिता का उपयोग करने वाले सिटी सिविल न्यायालय यथास्थिति, अपने समक्ष लम्बित अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही से संबंधित किसी भी मामले को, यथास्थिति , जिले या शहर में, निर्णय के लिए समय-समय पर किसी भी समन्वित अधिकारिता वाले न्यायालय को स्थानान्तरित कर सकेगा।"

धारा 3 का संशोधन

3. मूल अधिनियम की धारा 5 के अन्त में निम्नलिखित स्पष्टीकरण जोड़ा जाएगा, अर्थात:—

"स्पष्टीकरण: संदेहों को दूर करने के लिए, एतद्द्वारा यह उल्लेख किया जाता है कि "तत्समय प्रवृत किसी अन्य विधि" नामक अभिव्यक्ति में सदैव निम्नलिखित सम्मिलित समझा जाएगा:—

(क) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5);

(ख) उच्च न्यायालय में अन्तरिम अपील का उपबंध करने वाली कोई विधि;

(ग) किसी अन्य न्यायिक प्राधिकरण द्वारा पारित आदेशों के बारे में न्यायिक प्राधिकरण द्वारा मध्यक्षेप का उपबंध करने वाली कोई अधिनियमिति।"

धारा 6 का संशोधन

4. मूल अधिनियम की धारा 6 में "या पक्षकारों की सहमति से माध्यस्थम अधिकरण" शब्दों का लोप किया जाएगा।

धारा 7 का संशोधन

5. मूल अधिनियम की धारा 7 में उपधारा (4) के खण्ड (ख) में इन शब्दों "पत्रों के आदान–प्रदान" शब्दों के स्थान पर "किसी एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को कोई लिखित पत्र, जिसे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में दूसरे पक्ष द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है, पत्रों का आदान–प्रदान" प्रतिस्थापित किया जाएगा।

धारा 8 का संशोधन

6. मूल अधिनियम की धारा 8 में—

(क) उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात् —

"(1) उपधारा (4) तथा (5) के उपबंधों के अध्यधीन एक न्यायिक प्राधिकरण जिसके समक्ष किसी ऐसे मामले में कार्यवाही संस्थित की जाती है जो एक माध्यस्थम् का विषय है, यदि कोई पक्षकार उसके बाद ऐसा आवेदन नहीं करता है जब विवाद के सार पर वह अपना प्रथम कथन प्रस्तुत कर रहा हो तो, जब तक कि उसे उपधारा (4) में निर्दिष्ट उस उपधारा के अधीन प्राथमिक मामलों के रूप में किसी प्रश्न का निर्णय न करना हो, पक्षकारों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित करेगा।

(1क) न्यायिक अधिकरण, जिसके समक्ष कार्यवाही संस्थित की जाती है, उपधारा (4) में दिए गए प्रश्नों का निर्णय करने के उद्देश्य से कार्यवाही को रोक सकेगा और इस प्रकार दिया गया रोकादेश उक्त उपधारा तथा उपधारा (5) के अधीन पारित किए गए आदेशों के परिणामों के अध्यधीन होगा।"

(ख) उपधारा (3) के अन्त में निम्नलिखित परन्तुक अन्तःस्थापित किया जाएगा, अर्थात्—

"परन्तु यह कि इस प्रकार प्रारम्भ हुई माध्यस्थम् कार्यवाही समाप्त समझी जाएगी यदि न्यायिक प्राधिकरण, सभी पक्षों को सुनने के पश्चात, उपधारा (4) के अधीन इस आशय का आदेश पारित करता है, अर्थात्—

(क) माध्यस्थम् के लिए उस उपधारा के खंड (क) से (ग) में निर्देशित किसी प्रश्न पर उसके निर्णय के कारण निर्देश नहीं किया जा सकेगा; अथवा

(ख) यद्यपि माध्यस्थम् को निर्देश किया जाना है, कार्यवाही एक भिन्न माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा की जाएगी।"

(ग) उपधारा (3) के पश्चात निम्नलिखित उपधारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात्—

"(4) जहां किसी पक्षकार द्वारा न्यायिक प्राधिकरण को एक आवेदन दिया गया है जिसमें निम्नलिखित प्रश्न उठाया गया है कि—

(क) कोई विवाद विद्यमान नहीं है;

(ख) माध्यस्थम् करार अथवा उसका कोई खण्ड अकृत तथा शून्य अथवा अप्रवर्तनीय है;

(ग) माध्यस्थम् करार निष्पादित किए जाने में समर्थ नहीं है।

(घ) माध्यस्थम् करार विद्यमान नहीं है।

(5) जहां न्यायिक प्राधिकरण यह पाता है कि उपधारा (4) में उल्लिखित प्रश्नों पर निर्णय नहीं किया जा सकेगा क्योंकि,—

(क) संबंधित तथ्य अथवा दस्तावेज विवादित है; अथवा

(ख) मौखिक साक्ष्य लिया जाना आवश्यक है; अथवा

(ग) इन प्रश्नों की जांच करने से मामले को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित करने में विलम्ब की संभावना है; अथवा

(घ) प्रश्न पर निर्णय करने के लिए अनुरोध करने में अनावश्यक विलम्ब किया गया है; अथवा

(ङ) प्रश्न पर निर्णय करने से माध्यस्थम् पर आने वाली लागत में पर्याप्त बचत होने की संभावना नहीं है; अथवा

(च) इस बात के लिए पर्याप्त कारण नहीं है कि इन प्रश्नों का निर्णय इस स्तर पर ही क्यों किया जाए,

यह उक्त प्रश्नों पर निर्णय देने से इंकार कर सकेगा और उक्त प्रश्नों को भी निर्णय के लिए माध्यस्थम् अधिकरण को निर्देशित कर सकेगा।

(6) यदि न्यायिक प्राधिकरण ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि माध्यस्थम् करार विद्यमान है परन्तु वह अकृत और शून्य है अथवा अप्रवर्तनीय अथवा निष्पादित किए जाने में असमर्थ और विधिक कार्यवाही को रोकने से इंकार करता है तो माध्यस्थम् करार में कोई भी ऐसा उपबंध कि पश्चात किसी भी मामले के बारे में विधिक कार्यवाही प्रारम्भ करने के लिए एक पूर्व उदाहरण है, कार्यवाहियों के बारे में किसी प्रकार से भी प्रभावी नहीं होगा।"

नई धारा 8 का अन्तःस्थापन

7. मूल अधिनियम की धारा 8 के पश्चात निम्नलिखित धारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात्—

पक्षकार लम्बित विधिक कार्यवाहियों में माध्यस्थम् की मांग कर सकेंगे।

"[क]. जहां, यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय में या किसी जिले के मूल अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय में या किसी नगर में मूल अधिकारिता वाले सिटी सिविल न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश के न्यायालय में या समन्वित अधिकारिता वाले किसी न्यायालय या ऐसे प्रधान न्यायालयों के किसी अवर न्यायालय में सभी पक्षकार अपने विवादों के समाधान के लिए कोई माध्यस्थम करार करते हैं, तब वह न्यायालय, जहां उक्त विधिक कार्यवाही लंबित है, माध्यस्थम् के किसी पक्षकार द्वारा आवेदन किए जाने पर, विधिक कार्यवाही के विषय से संबंधित विवादों को माध्यस्थम् के लिए निर्देशित होगा।

स्पष्टीकरण:— इस धारा के प्रयोजनों से "विधिक कार्यवाही" से इस धारा में उल्लिखित न्यायालयों में लंबित पक्षकारों के सिविल अधिकारों से संबंधित कोई कार्यवाही अभिप्रेत है चाहे संस्थित किए जाने के स्तर पर हो या अपील के स्तर पर अथवा पुनरीक्षण के स्तर पर और इसमें सिविल अधिकारों से संबंधित वे कार्यवाहियां भी सम्मिलित हैं जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 या 227 के अधीन उच्च न्यायालय या आगे अपील के रूप, में यदि कोई हो, उच्चतम न्यायालय में संस्थित की गई हो।"

धारा 9 के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन

8. मूल अधिनियम की धारा 9 के स्थान पर निम्नलिखित धारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्:—

न्यायालय द्वारा अंतरिम उपाय आदि:—

"9 (1) कोई पक्षकार माध्यस्थम् पंचाट के प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् किसी भी समय या माध्यस्थम् कार्यवाही के दौरान या पहले, लेकिन धारा 36 के अनुसार इसके प्रवर्तनीय होने से पहले न्यायालय के समक्ष अंतरिम उपायों के लिए आवेदन कर सकेगा।

(2) न्यायालय को उपधारा (1) के अधीन आदेश पारित करने की वही शक्तियां प्राप्त होंगी जो उसे उसके समक्ष किसी कार्यवाही के संबंध में और इसके प्रयोजन के लिए प्राप्त हैं।

(3) कोई पक्षकार, विशेष रूप से और उपधारा (2) पर किसी प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, न्यायालय में निम्नलिखित में से किसी के लिए आवेदन कर सकेगा, अर्थात:—

(क) माध्यस्थम कार्यवाही के प्रयोजन से किसी अल्पायु या विकृत चित्त व्यक्ति के लिए एक संरक्षक की नियुक्ति करने के लिए,

(ख) निम्नलिखित में से किसी मामले के संबंध में संरक्षण के अन्तरिम उपाय के लिए, अर्थात—

(i) किसी भी माल के परिरक्षण, अंतरिम अभिरक्षा या विक्रय जो माध्यस्थम करार की विषय-वस्तु है;

(ii) माध्यस्थम् विवादग्रस्त रकम को प्राप्त करने के लिए;

(iii) किसी सम्पत्ति या वस्तु का निरोध, परिरक्षण या निरीक्षण जो माध्यस्थम् में एक विवाद की विषय–वस्तु है या जिसके बारे में कोई भी प्रश्न उसमें पैदा हो सकता है और किसी पक्षकार के कब्जे में किसी भी भूमि या इमारत का कार्यभार संधारण के लिए किसी व्यक्ति किसी व्यक्ति को उपर्युक्त प्रयोजनों में से किसी के लिए प्राधिकृत करना या किसी भी नमूने के लिए जाने के या किसी भी प्रेक्षण के प्रस्तुत किए जाने के लिए या किसी भी प्रयोग के किए जाने के लिए प्राधिकृत करना जो सम्पूर्ण सूचना या साक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयोजन से आवश्यक या समीचीन हो;

(iv) अंतरिम व्यादेश या प्राप्तिकर्ता की नियुक्ति;

(ग) संरक्षण के ऐसे दूसरे अंतरिम उपाय जो न्यायालय को न्यायपूर्ण एवं सुविधाजनक प्रतीत हों।

"(4) जहां कोई पक्षकार माध्यस्थम् आरम्भ होने से पूर्व अंतरिम उपायों की मंजूरी के लिए उपधारा (1) के अधीन आवेदन करता है, तो न्यायालय उस पक्षकार को जिसके पक्ष में अंतरिम उपाय की स्वीकृति

दी गई है, धारा 11 में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार माध्यस्थम् अधिकरण की नियुक्ति के लिए आदेश पारित होने की तिथि से 30 दिन के भीतर आवश्यक कदम उठाएगा।

(5) न्यायालय यह निदेश दे सकेगा कि उपधारा (4) में विनिर्दिष्ट 30 दिन की अवधि के भीतर यदि ऐसे कदम नहीं उठाए जाते हैं तो उपधारा (2) और (3) के अधीन स्वीकृत अंतरिम उपाय उक्त अवधि के पूरा हो जाने पर आतिल समझे जाएंगे।

परन्तु यह कि न्यायालय कदम उठाने में विलम्ब के लिए पर्याप्त कारण दर्शाए जाने पर उक्त अवधि का विस्तार कर सकेगा।

(6) जहां अंतरिम उपाय स्वीकृत करने वाला कोई आदेश उपधारा (5) के अधीन आतिल हो जाता है वहां न्यायालय प्रत्यास्थापन के लिए ऐसे आदेश पारित कर सकेगा जो वह पक्षकार के विरुद्ध, जिसके पक्ष में इस धारा के अधीन अंतरिम उपाय स्वीकृत किया गया था, उचित समझे।

नई धारा 10क का अन्तःस्थापन

9. मूल अधिनियम की धारा 10 के अन्त में निम्नलिखित धारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात:—

कतिपय मामलों में कर्मचारियों आदि का मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया जाना

"10क (1) उपधारा (2) के उपबंधों के अध्ययधीन, जहां किसी माध्यस्थम करार में ऐसा खण्ड अन्तर्विष्ट है जो पक्षकारों में से किसी को अपने कर्मचारी, सलाहकार या परामर्शदाता या उससे कारोबारी संबंध रखने वाले किसी व्यक्ति के मध्यस्थ नियुक्त करने का अधिकार देता है, उस सीमा तक वह खण्ड शून्य होगा।

(2) उपधारा (1) के उपबंध लागू नहीं होंगे।

(क) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् के किसी करार पर (चाहे वाणिज्यिक हो अथवा नहीं);

(ख) किसी माध्यस्थम् करार में कोई ऐसा खण्ड, जो, यथास्थिति, केन्द्रीय या राज्य सरकार या सरकारी उपक्रम या सांविधिक निकाय या सांविधिक निगम या अन्य लोक प्राधिकरण को अपने कर्मचारी या सलाहकार या परामर्शदाता या कारोबारी संबंध रखने वाले किसी व्यक्ति को मध्यस्थ नियुक्त करने का अधिकार देता है, शून्य समझा जाएगा।

धारा 11 का संशोधन

10. प्रधान अधिनियम की धारा 11 में—

(क) उपधारा (4) में—

(i) खंड (क) और (ख) में "तीस दिन" शब्दों के लिए "साठ दिन" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे।

(ii) "मुख्य न्यायाधीश या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा पक्षकार के अनुरोध पर नियुक्ति की जाएगी" शब्दों के स्थान पर "यदि ऐसी नियुक्ति उक्त अवधि के अन्दर नहीं की जाती है तो ऐसी नियुक्ति करने के अधिकार का अधित्यजन करना माना जाएगा और उच्च न्यायालय द्वारा नामनिर्दिष्ट पक्षकार या किसी व्यक्ति या संस्था या इसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था के अनुरोध पर नियुक्ति की जाएगी" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे।

(ख) उपधारा (5) के स्थान पर निम्नलिखित उपधाराएं प्रतिस्थापित की जाएंगी, अर्थात:—

"(5) एकल मध्यस्थ के साथ किसी माध्यस्थम में उपधारा (2) में निर्देशित करार के असफल होने पर यदि पक्षकार ऐसी सहमति के लिए दूसरे पक्षकार से एक पक्षकार द्वारा अनुरोध प्राप्त होने से 60 दिन के अन्दर मध्यस्थ पर सहमति होने पर असफल रहती है तो ऐसी नियुक्ति करने के अधिकार का अधित्यजन करना माना जाएगा, यदि ऐसी नियुक्ति उक्त अवधि के अन्दर नहीं की जाती है और उच्च न्यायालय या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा नियुक्ति की जाएगी।

(5क) जहां मध्यस्थम् करार में अन्तर्विष्ट निम्नलिखित प्रक्रिया धारा 10 क की उपधारा (1) के अधीन अपर्याप्त हो जाती है, वहां पक्षकार किसी एक पक्षकार से अनुरोध प्राप्त होने के 60 दिन के अन्दर किसी मध्यस्थ की नियुक्ति हेतु सहमत हो सकते हैं।

परन्तु यह कि जहां पक्षकार 60 दिन की उक्त अवधि के भीतर किसी मध्यस्थ पर सहमत होने हेतु असफल रहते है तो उच्च न्यायालय या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा एक पक्षकार के अनुरोध पर नियुक्ति की जाएगी।"

(ग) उपधारा (6) में--

पक्षकार आवश्यक कार्यवाही करने के लिए मुख्य न्यायाधीश या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था से अनुरोध कर सकेगा जब तक नियुक्ति प्रक्रिया पर नियुक्ति प्राप्त करने के लिए दूसरे मामलों का प्रावधान नहीं करता है "शब्दों के स्थान पर" और जहां पक्षकारों द्वारा सहमति व्यक्त की गई नियुक्ति प्रक्रिया के अनुसार ऐसे उपाय नहीं किए जाते हैं तो ऐसे उपाय करने के अधिकार को अधित्यजन करना माना जाएगा और आवश्यक उपाय करने के लिए पक्षकार उच्च न्यायालय या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था से अनुरोध कर सकते हैं जब तक कि नियुक्ति प्रक्रिया प्राप्त करने के लिए दूसरे मामलों का प्रावधान नहीं करता है" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे।

(घ) उपधारा (7) में---

(i) कोष्ठकों और आंकड़े "उपधारा (5)" शब्द के बाद कोष्ठकों, आंकड़े और पत्र या "उपधारा (5क)" शब्द अंतःस्थापित किए जाएंगे;

(ii) "मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था" शब्दों के स्थान पर "उच्च न्यायालय या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था" शब्दों को प्रतिस्थापित किया जाएगा।

(ङ) उपधारा (8) में "मुख्य न्यायमूर्ति या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था" शब्दों के स्थान पर "उच्च न्यायालय या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था" शब्दों को प्रतिस्थापित किया जाएगा।

(च) उपधारा (9) के लिए निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्—

"(9) एक अंतर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् (चाहे वाणिज्यिक हो या नहीं) में एकल या तीसरे मध्यस्थ की नियुक्ति के मामले में, उच्चतम न्यायालय या उसके द्वारा नामनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति या संस्था पक्षकारों की राष्ट्रीयता से भिन्न राष्ट्रीयता के एक मध्यस्थ की नियुक्ति कर सकेगा जहां पक्षकार विभिन्न राष्ट्रीयता के होते हैं"।

(छ) उपधारा (11) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्---

"(11) जहां एक से अधिक अनुरोध विभिन्न उच्च न्यायालयों या उसके नामनिर्दिष्टों के समक्ष उपधारा (4) या उपधारा (5) या उपधारा (6) के अधीन किए गए है वहां उच्च न्यायालय या उनके नामनिर्दिष्ट जिसके समक्ष सुसंगत उपधारा के अधीन प्रथम अनुरोध या विवेदन किया गया है, अकेले विवेदन पर विनिश्चय करने के लिए सक्षम होगा।"

(i) उपधारा (12) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्---

"12(क) जहां उपधारा (4), (5), (5क) (6), (7), (8) और (10) में निर्देशित किए गए मामले उद्भूत होते हैं, उन सभी उपधाराओं में "उच्च न्यायालय" के निर्देश अंतर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् (चाहे वाणिज्यिक हो या नहीं) में उद्भूत होते हैं, का अर्थान्वयन "उच्चतम न्यायालय" को किसी निर्देश के रूप में किया जाएगा।"

(ख) जहां उपधारा (4), (5), (6), (7), (8) और उपधारा (10) में निर्देशित किए गए मामले उद्भूत होते हैं, उन उपधाराओं में "उच्च न्यायालय" को निर्देश का अर्थान्वयन

उच्च न्यायालय को निर्देश के रूप में किया जाएगा जिनकी प्रादेशिक परिसीमाओं के भीतर धारा 2 की उपधारा (1) के खंड (ङ) में निर्देशित की गई प्रधान सिविल न्यायालय या शहर सिविल न्यायालय के प्रधान न्यायमूर्ति के न्यायालय, यथास्थिति, स्थित है और जहां उच्च न्यायालय स्वयं उस उच्च न्यायालय के उस खंड में निर्देशित किया गया कोई न्यायालय है।"

"(13) जहां कोई प्रश्न कर रहे पक्षकार द्वारा इस धारा के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय, यथास्थिति, कोई आवेदन-पत्र प्रस्तुत किया जाता है—

(क) कि इस संबंध कोई विवाद नहीं है;

(ख) कि माध्यस्थम् करार या इसका कोई खंड अकृत और अमान्य या अप्रवर्तनीय है;

(ग) कि माध्यस्थम् करार पालन किए जाने हेतु असक्षम है;

(घ) कि माध्यस्थम् करार विद्यमान नहीं है।

उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय, यथास्थिति, उपधारा (14) के प्रावधानों के अध्यधीन, इसका निर्णय ले सकेंगे।

(14) यदि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय, यथास्थिति, यह सोचता है कि उपधारा (13) के अधीन उठाए गए प्रश्नों पर निर्णय नहीं लिया जा सकता है, क्योंकि—

(क) संबंधित तथ्यों का कारोबार विवादित है; या

(ख) मौखिक साक्ष्य पेश किया जाना आवश्यक है; या

(ग) इन प्रश्नों को हल से माध्यस्थम् के लिए निर्देश में विलंब होने की संभावना है; या

(घ) प्रश्न का निर्णय लेने हेतु आवेदन में अनावश्यक विलंब हुआ था माध्यस्थम् की लागत; या

(ङ) प्रश्न पर निर्णय से माध्यस्थम् की लागत में पर्याप्त बचत होने की संभावना नहीं है; या

(च) इस आधार के पर्याप्त कारण हैं क्योंकि प्रश्नों का उस स्तर पर निर्णय लिया जाना चाहिए था।

यह उक्त प्रश्नों पर निर्णय देने हेतु मना कर सकेगा और उक्त प्रश्नों को माध्यस्थम् अधिकरणों को निर्देशित भी कर सकेगा।"

धारा 12 का संशोधन

11. मूल अधिनियम की धारा 12 में उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्:—

"(1) जब एक व्यक्ति मध्यस्थ के रूप में उसकी संभाव्य नियुक्ति के संबंध में पहुंचता है तब वह लिखित तौर पर उन सभी परिस्थितियों को प्रकट करेगा जैसे कि किसी पक्षकार या उनके किसी सलाहाकार के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष कोई पूर्व या वर्तमान संबंध विद्यमान, चाहे यह वित्तीय, व्यापारिक, व्यवसायिक, सामाजिक या अन्य प्रकार का हो या विवादित विषय-वस्तु के संबंध में जिससे उसकी स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में न्यायोचित संदेह उत्पन्न हो जाने की संभावना है।"

धारा 14 का संशोधन

12. मूल अधिनियम की धारा 14 में, उपधारा (3) के पश्चात् निम्नलिखित उपधारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:—

"(4) जहां मध्यस्थ का आदेश समाप्त कर दिया गया है वहां न्यायालय ऐसे मध्यस्थ को देय शुल्क की मात्रा का निर्णय ले सकेगा।"

धारा 15 का संशोधन

13. मूल अधिनियम की धारा 15 में

(क) उपधारा (2)में ''किसी प्रतिस्थापित मध्यस्थ की नियुक्ति की जाएगी'' शब्दों के स्थान पर ''किसी प्रतिस्थापित मध्यस्थ की 30 दिन के भीतर नियुक्ति की जाएगी'' शब्दों को प्रतिस्थापित किया जाएगा।

(ख) उपधारा (4) के पश्चात् निम्नलिखित उपधारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:

''(5) जहां मध्यस्थ का आदेश समाप्त कर दिया गया है, न्यायालय ऐसे मध्यस्थ को देय शुल्क की मात्रा का निर्णय ले सकेगा।''

धारा 17 के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन

14. मूल अधिनियम की धारा 17 के स्थान पर नई धारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात:

माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा अंतरिम निदेश और अन्य शक्तियां

''17. माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम कार्यवाहियां लंबित रहने पर निम्न निदेश दे सकेगा:

(क) माध्यस्थम कार्यवाहियों के लिए पक्षकार के अनुरोध पर अन्य पक्षकार माध्यस्थम अधिकरण द्वारा आवश्यक समझे जाने वाले तरीके से विवादित विषय-वस्तु की सुरक्षा के लिए कदम उठाएगा; या

(ख) एक पक्षकार, खण्ड (क) के अधीन जारी निदेशों के संबंध में उपयुक्त प्रतिभूति प्रस्तुत करेगा; या

(ग) दावा करने वाला पक्षकार माध्यस्थम् की लागत के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करे; या

(घ) किसी सम्पत्ति, जो माध्यस्थम् कार्यवाहियों की विषय-वस्तु है तथा जो पक्षकार के स्वामित्व या कब्जे में है, के संबंध में कार्यवाही करने:

(i) निरीक्षण के प्रयोजन के लिए माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा, विशेषज्ञ द्वारा या पक्षकार द्वारा सम्पत्ति के फोटोचित्रण, परीरक्षण, अभिरक्षण या निरोध; या

(ii) उक्त सम्पत्ति का नमूना लेने या प्रेक्षण करने या कोई प्रयोग करने; या

(ङ) पक्षकार या साक्षी का शपथ या प्रतिज्ञान का परिक्षण करने और उस प्रयोजन के लिए आवश्यक शपथ दिलाने या आवश्यक प्रतिज्ञान के लिए निदेश देने; या

(च) पक्षकार को अपनी अभिरक्षा या नियंत्रण में किसी साक्ष्य के संरक्षण के लिए कदम उठाना जो कार्यवाहियों के प्रयोजन के लिए आवश्यक हो सकेगा।''

धारा 20 के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन

15. मूल अधिनियम की धारा 20 के स्थान पर निम्नलिखित धारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात:

माध्यस्थम् का स्थान

''20. (1) उपधारा (2) के प्रावधानों के अध्यधीन पक्षकारों को माध्यस्थम् के स्थान पर करार करने की स्वतंत्रता होती है।

परन्तु यह कि जहां पक्षकार करार करने में असफल हो जाते हैं वहां माध्यस्थम् के स्थान का अवधारण पक्षकारों की सुविधा को सम्मिलित कर मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा किया जाएगा।

परन्तु यह और कि माध्यस्थम् अधिकरण, जब तक अन्यथा पक्षकारों द्वारा करार नहीं किया जाता, ऐसे किसी भी स्थान पर मिलेंगे जिसे यह इसके सदस्यों के बीच परामर्श करने के लिए, साक्षियों, विशेषज्ञों या पक्षकारों की सुनवाई करने के लिए या दस्तावेजों, माल या दूसरी सम्पत्ति का निरीक्षण करने के लिए उचित समझता है।

(2) माध्यस्थम् का स्थान भारत में ही होगा।''

धारा 23 का संशोधन

16. मूल अधिनियम की धारा 24 में, उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित धारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्:

(1) माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा निर्धारित की जाने वाली कालावधि के भीतर दावेदार अपने दावे, वाद विषयों के बिन्दुओं और प्राप्त किए गए अनुतोष या उपचार का समर्थन करने वाले तथ्यों का विवरण प्रस्तुत करेगा तथा प्रतिवादी इन सभी विशिष्टियों के बाबत् अपनी प्रतिरक्षा का विवरण प्रस्तुत करेगा तथा दावेदार अपना प्रत्युत्तर प्रस्तुत करेगा, यदि कोई हो, और जब तक अधिकरण समय का विस्तार नहीं करता, पक्षकारों को माध्यस्थम अधिकरण द्वारा इस प्रकार नियत की गई समय अनुसूची का पालन करना होगा।

(1 क) ऐसे नियमों, जैसेकि इस संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा बनाए जा सकेंगे, के अध्यधीन माध्यस्थम् अधिकरण माध्यस्थम् प्रक्रिया में तेजी लाने का प्रयास करेगा।"

धारा 24 का संशोधन

17. मूल अधिनियम की धारा 24 में, उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित धारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्:--

"(1) इस संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा बनाए जाने वाले ऐसे नियमों के अध्यधीन, माध्यस्थम् यह विनिश्चय करेगा कि क्या साक्ष्य के प्रस्तुतीकरण के लिए या मौखिक बहस के लिए मौखिक सुनवाई को अवधिनिर्धारित करना या क्या कार्यवाही का संचालन दस्तावेजों और दूसरे तत्वों के आधार पर किया जाएगा या मौखिक साक्ष्य के बदले शपथ-पत्र प्राप्त किया जाएगा बशर्ते कि साक्षी से मौखिक रूप से प्रश्न किए जा रहे हों।

परन्तु कि माध्यस्थम् अधिकरण, कार्यवाहियों के किसी उपयुक्त स्तर पर, मौखिक साक्ष्य के प्रस्तुतीकरण के प्रयोजन हेतु मौखिक सुनवाई कर सकेगा।

(1 क) उपधारा (1) के प्रावधानों के अध्यधीन, माध्यस्थम अधिकरण इसके समक्ष प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं के संबंध में आदेश पारित करेगा।

(1 ख) उपधारा (1 क) के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, आदेश पारित करने के लिए माध्यस्थम् अधिकरण की शक्तियों में निम्न शामिल है:

क. मौखिक साक्ष्य, यदि कोई हो, प्रस्तुत करने के लिए पक्षकारों हेतु समय अनुसूची नियत करना;

ख. मौखिक बहस के लिए समय अनुसूची नियत करना;

ग. वह तरीका, जिसमें मौखिक साक्ष्य रिकार्ड किया जाना है;

घ. यह विनिश्चय करने की शक्ति कि क्या कार्यवाहियां दस्तावेजों और दूसरे तत्वों के आधार पर ही संचालित की जाएंगी या अन्य तरीका जिसमें कार्यवाहियां संचालित की जा सकेंगी।

(1 ग) उपधारा (1 क) के अधीन निर्धारित प्रक्रिया और माध्यस्थम अधिकरण द्वारा उपधारा (1 ख) के अधीन नियत की गई समय अनुसूची पक्षकारों पर बाध्य होगी।"

नई धारा 24क और 24ख का अन्तःस्थापन

18. मूल अधिनियम की धारा 24 के अन्त में निम्नलिखित धारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:--

धारा 17, 23 और 24 के अधीन पारित अपने आदेशों को लागू करने के लिए माध्यस्थम् अधिकरण की शक्तियां

24क (1) यदि पर्याप्त कारण बताए बिना कोई पक्षकार धारा 17, 23 या 24 के अधीन, यथास्थिति, पारित किए गए माध्यस्थम् अधिकरण के किसी आदेश की अनुपालना करने में असफल रहता है, माध्यस्थम् अधिकरण उसी प्रभाव का अनिवार्य आदेश दे सकेगा, अनुपालना के लिए ऐसा समय विहित कर सकेगा जैसाकि वह उपयुक्त समझे।

(2) यदि कोई दावेदार माध्यस्थम् की लागत के लिए प्रतिभूति प्रस्तुत करने हेतु धारा 17 की उपधारा (1) के खण्ड (ग) के अधीन दिए गए निदेश के संबंध में उपधारा (1) के अधीन पारित अनिवार्य आदेश अनुपालना करने में असमर्थ रहता है, माध्यस्थम् अधिकरण उसके दावे को निरस्त कर सकेगा और तदनुसार पंचाट कर सकेगा।

(3) यदि कोई पक्षकार उपधारा (1) के अधीन माध्यस्थम अधिकरण द्वारा पारित किसी दूसरे अनिवार्य आदेश की अनुपालना करने में असफल रहता है, तो वक्त अधिकरण निम्न कर सकेगा:–

(क) गैर-अनुपालना के परिणामस्वरूप माध्यस्थम कार्यवाहियों पर आई लागत का भुगतान करने हेतु ऐसा आदेश दे सकेगा, जैसाकि वह उपयुक्त समझे;

(ख) यह निदेश दे सकेगा कि दोषी पक्षकार अपने अभिवचन में किसी आरोप पर या किसी सामग्री, जो आदेश की विषय-वस्तु थी, पर विश्वास किए जाने हेतु पात्र नहीं होगा;

(ग) गैर-अनुपालना के कार्य से ऐसा प्रतिकूल अनुमान लगा सकेगा जो परिस्थितियों के लिए उपयुक्त हो;

(घ) धारा 25 के अधीन की जा सकने वाली किसी कार्यवाही पर कोई प्रभाव डाले बिना ऐसी सामग्री, के आधार पर पंचाट तैयार कर सकेगा जैसाकि इसे उपलब्ध करायी गई है।''

माध्यस्थम अधिकरण के अनिवार्य आदेशों के प्रवर्तन के लिए न्यायालय की शक्तियां

''24ख (1) धारा 9 के अधीन न्यायालय की शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, न्यायालय किसी पक्षकार द्वारा आवेदन किए जाने पर, ऐसा आदेश पारित कर सकेगा जिसके अन्तर्गत उस पक्षकार से जिसे माध्यस्थम अधिकरण का आदेश निर्दिष्ट किया गया था, धारा 24क की उपधारा (1) के अन्तर्गत पारित माध्यस्थम अधिकरण के अनिवार्य आदेशों का अनुपालन करने की अपेक्षा की गई हो।

(2) उपधारा (1) के अन्तर्गत आवेदन निम्नलिखित द्वारा किया जा सकेगा:–

(क) पक्षकारों को नोटिस देने के पश्चात् माध्यस्थम अधिकरण द्वारा, या

(ख) पक्षकारों को नोटिस देने के पश्चात् माध्यस्थम अधिकरण की अनुमति से माध्यस्थम कार्यवाही के किसी पक्षकार द्वारा।

(3) न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अन्तर्गत तब तक कोई आदेश पारित नहीं किया जाएगा जब तक उसका यह समाधान नहीं हो जाता कि जिस व्यक्ति को माध्यस्थम अधिकरण का आदेश निर्दिष्ट किया गया था वह माध्यस्थम अधिकरण के आदेश में निश्चित समय सीमा के भीतर या यदि कोई समय-सीमा निश्चित नहीं की गई है तो समुचित समय के भीतर उसका अनुपालन करने में असफल रहा है।

(4) न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अंतर्गत पारित कोई भी आदेश, ऐसे आदेशों के अध्यधीन होगा जो धारा 37 की उपधारा (2) के खंड (ख) के अंतर्गत की गई अपील पर न्यायालय द्वारा पारित किए जाएं।

धारा 28 का संशोधन

19. मूल अधिनियम की धारा 28 में, उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्–

(1) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं) से भिन्न किसी माध्यस्थम में माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम को प्रस्तुत किए गए विवाद का विनिश्चय भारत के तत्समय प्रवृत्त अधिष्ठायी विधि के अनुसार करेगा।

(1क) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं), जहां माध्यस्थम का स्थान भारत में है:–

(i) माध्यस्थम अधिकरण विवाद का विनिश्चय विवाद के सार पर पक्षकारों द्वारा अभिहित विधि के लागू होने वाले विधि नियम के अनुसार करेगा।

(ii) देश में दिए गए कानून अथवा विधि व्यवस्था को पक्षकारों द्वारा दिए गए किसी भी पदनाम का अर्थान्वयन जब तक अन्यथा व्यक्त न किया गया हो, सीधे उस देश की अधिष्ठायी विधि के रूप में उल्लेख करके किया जाएगा, न कि विधि नियमों के विरोधाभासी के रूप में उल्लेख करके;

(iii) पक्षकारों द्वारा खण्ड (i) के अन्तर्गत कानून को कोई पदनाम न दिए जाने की स्थिति में,

माध्यस्थम अधिकरण वह विधि नियम लागू करेगा जो वह विवाद की दी हुई बातों और की सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उचित समझता है।''

धारा 29 का संशोधन

22. मूल अधिनियम की धारा 29 में—

(क) उपधारा (1) के अन्त में निम्नलिखित परन्तुक जोड़ा जाएगा, अर्थात्:—

''परन्तु जहां बहुमत नहीं है, वहां पंचाट माध्यस्थम अधिकरण के पीठासीन मध्यस्थ द्वारा दिया जाएगा।''

(ख) उपधारा (2) में, निम्नलिखित उपधारा अन्त:स्थापित की जाएगी, अर्थात्:—

''अल्पसंख्यक विनिश्चय, यदि अन्य सदस्यों के विनिश्चय की प्राप्ति के 30 दिन के भीतर उपलब्ध करा दिया जाता है तो पंचाट के साथ संलग्न किया जाएगा।''

नई धारा 29क का अन्त:स्थापन

21. मूल अधिनियम की धारा 29 के पश्चात् निम्नलिखित धारा अन्त:स्थापित की जाएगी, अर्थात्:—

कार्यवाहियों को तेज करना तथा पंचाट करने के लिए समय-सीमा

''29क (1) माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम की कार्यवाही आरम्भ के बाद एक वर्ष के भीतर या बढ़ाई गई ऐसी अवधि के भीतर जो उपधारा (2) से (4) में विनिर्दिष्ट की गई है, अपना पंचाट दे देगा:

(2) पक्षकार सहमति से, उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि को और एक वर्ष से अनधिक अवधि तक बढ़ा सकेंगे।

(3) यह पंचाट उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि और उपधारा (2) में पक्षकारों की सहमति से बढ़ाई गई अवधि के भीतर नहीं दिया जाता, तो मध्यस्थ की कार्यवाही उपधारा (4) से (6) के उपबंधों के अध्यधीन तब तक निलम्बित रहेगी जब तक कि माध्यस्थम के किसी पक्षकार द्वारा न्यायालय को समय बढ़ाने के लिए आवेदन नहीं किया जाता या जहां पक्षकारों में से कोई भी पूर्वोक्त आवेदन नहीं करता जब तक कि माध्यस्थम अधिकरण द्वारा इस तरह का आवेदन नहीं किया जाता।

(4) उपधारा (3) के अन्तर्गत समय बढ़ाने के लिए आवेदन दाखिल किए जाने पर, माध्यस्थम की कार्यवाही का निलम्बन समाप्त हो जाएगा और उपधारा (3) के अधीन न्यायालय के समक्ष समय बढ़ाने के लिए किए गए आवेदन पर विचार किए जाने तक, माध्यस्थम की कार्यवाही माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष जारी रहेगी तथा न्यायालय माध्यस्थम कार्यवाही के बारे में कोई स्थगन प्रदान नहीं करेगा।

(5) न्यायालय, उपधारा (3) के अन्तर्गत समय बढ़ाने के लिए किए गए ऐसे आवेदन पर, चाहे उपर्युक्त पंचाट देने का समय समाप्त हो गया हो या नहीं और चाहे पंचाट दिया गया हो या नहीं, उपधारा (1) में निर्दिष्ट अवधि और उपधारा (2) के अन्तर्गत पक्षकारों की सहमति से नियत की गई अवधि से आगे पंचाट देने के लिए समयावधि बढ़ाएगा।

(6) उपधारा (5) के अन्तर्गत समय बढ़ाते समय न्यायालय, माध्यस्थम अधिकरण द्वारा अपनाई जाने वाली आगे प्रक्रिया या लागत के बारे में आदेश निम्नलिखित बातों को ध्यान में रख कर पारित करेगा:—

(क) पहले ही किए गए कार्य का परिमाण;

(ख) विलम्ब के लिए कारण;

(ग) पक्षकारों या पक्षकारों का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी व्यक्ति का आचरण;

(घ) रीति, जिससे माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा कार्यवाही संचालित की गई;

(ङ) अन्तर्ग्रस्त कार्य;

(च) पक्षकारों द्वारा माध्यस्थम् की फीस तथा खर्चों पर पहले ही व्यय की जा चुकी राशि;

(छ) कोई अन्य संगत परिस्थितियां;

और न्यायालय जब तक पंचाट पारित न कर दिया जाए, तब तक माध्यस्थम् की प्रक्रिया को तेज करने के लिए समय-समय पर ऐसे आदेश पारित करेगा।

परन्तु न्यायालय द्वारा भावी कार्यवाहियों के बारे में पारित कोई भी आदेश ऐसे नियमों के अध्यधीन होगा जो उच्च न्यायालय द्वारा माध्यस्थम् की कार्यवाही को तेज करने के लिए इस संबंध में बनाए जाएं।

(7) पक्षकार, सहमति होने पर भी, इस अवधि को उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि और उपधारा (2) में निर्दिष्ट अधिकतम अवधि से आगे और उक्त उपधाराओं में उपबंधित से अन्यथा के सिवाय नहीं बढ़ा सकते और किसी माध्यस्थम् करार में या कोई भी उपबंध जिसके द्वारा माध्यस्थम् अधिकरण पंचाट करने के लिए समय और आगे बढ़ा सकता है, शून्य होगा और निष्प्रभावी हो जाएगी।

(8) उपधारा (5) के अन्तर्गत समय बढ़ाए जाने के आदेशों में से पहला तथा उपधारा (6) के अन्तर्गत यदि कोई निदेश किए जाते हैं तो वे भी न्यायालय द्वारा प्रतिपक्ष पर तामील किए जाने की तारीख से एक महीने की अवधि के भीतर न्यायालय द्वारा पारित किए जाएंगे।"

नई धारा 31क का अन्तःस्थापन

22. मूल अधिनियम की धारा 31 के पश्चात् निम्नलिखित धारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:—

पंचाट और माध्यस्थम् के मूल रिकार्डों की प्रति को रिकार्ड तथा पंचाटों का रजिस्टर रखने के प्रयोजन के लिए न्यायालय में दाखिल करना:

31क (1) माध्यस्थम् पंचाट की, माध्यस्थम् अधिकरण के सदस्यों द्वारा प्रत्येक पृष्ठ पर विधिवत हस्ताक्षरित फोटो प्रति तथा माध्यस्थम के मूल रिकार्डों को माध्यस्थम् अधिकरण द्वारा, पंचाट किए जाने के तीस दिन के भीतर, माध्यस्थ रिकार्ड के दस्तावेजों की सूची के साथ न्यायालय में दाखिल किया जाएगा।

परन्तु जहां धारा 2 की उपधारा (1) के खण्ड (3) के अर्थ के अन्तर्गत उच्च न्यायालय ही समुचित न्यायालय है, वहां पंचाट जिले में मूल अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय में या किसी नगर में मूल अधिकारिता वाले सिविल न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश के उस न्यायालय में, जिसके प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत माध्यस्थम् की विषय-वस्तु स्थित है (इसे इसमें इसके पश्चात इस धारा में उच्च न्यायालय के रूप में निर्दिष्ट किया जाएगा) दाखिल किया जाएगा।

स्पष्टीकरण-I शंकाओं के निवारण के लिए एतद्द्वारा यह घोषणा की जाती है कि इस धारा में माध्यस्थम् पंचाट से वह माध्यस्थम् पंचाट अभिप्रेत है चाहे वह धारा 8 के अन्तर्गत किसी न्यायिक प्राधिकारी द्वारा या धारा 8क में निर्दिष्ट न्यायालयों में से किसी न्यायालय के द्वारा या पक्षकारों द्वारा अथवा धारा 11 के अन्तर्गत उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के द्वारा या धारा 43क के अन्तर्गत त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम् को पक्षकारों द्वारा किए गए निर्देश के अनुसरण में पारित किया गया है।

स्पष्टीकरण-II उस धारा के प्रयोजनों के लिए "माध्यस्थम के रिकार्डों" में पक्षकारों द्वारा दाखिल दावे की दलीलों, दस्तावेजों और मौखिक साक्ष्य, यदि दर्ज किया गया हो, वादकालीन आवेदनों

में दिए गए अभिकथन, उन पर किए गए आदेश, माध्यस्थम अधिकरण का कार्यवाही वृत्तांत तथा माध्यस्थ की कार्यवाही से संबंधित सभी अन्य दस्तावेज शामिल हैं।

(2) जहां माध्यस्थम अधिकरण, माध्यस्थम पंचाट और उपधारा (1) के अन्तर्गत माध्यस्थम रिकार्डों की फोटो प्रति दाखिल करने में असफल रहता है, वहां पक्षकारों में से कोई, माध्यस्थम अधिकरण को नोटिस भेजकर नोटिस की प्राप्ति के तीस दिन की अवधि के भीतर ऐसा करने के लिए कह सकता है, ऐसा न करने पर पक्षकार न्यायालय से माध्यस्थम अधिकरण को यह निदेश देने का अनुरोध कर सकता है कि वह माध्यस्थम पंचाट तथा माध्यस्थम रिकार्डों की फोटो प्रति उक्त न्यायालय में दाखिल करे।

(3) उपधारा (2) के अन्तर्गत माध्यस्थम पंचाट तथा माध्यस्थम रिकार्डों की फोटो प्रति दाखिल कर दिए जाने पर, उक्त न्यायालय का पीठासीन अधिकारी या उक्त पीठासीन अधिकारी द्वारा नामनिर्दिष्ट उक्त न्यायालय का कोई प्रशासनिक अधिकारी पूर्वोक्त माध्यस्थम पंचाट की फोटो प्रति के प्रत्येक पृष्ठ पर तिथि तथा उक्त न्यायालय की मुहर सहित अपने हस्ताक्षर करेगा तथा सत्यापन के बाद, उपधारा (1) में निर्दिष्ट सूची के अनुसार माध्यस्थम पंचाट तथा माध्यस्थम रिकार्डों की फोटो प्रति की प्राप्ति को स्वीकृति देगा।

(4) उक्त न्यायालय एक रजिस्टर रखेगा जिसमें निम्नलिखित बातें होंगी:—

(क) पंचाटों के पक्षकारों के नाम तथा पते;

(ख) पंचाट की तारीख;

(ग) मध्यस्थों के नाम तथा पते;

(घ) प्रदत्त राहत राशि;

(ङ) उक्त न्यायालय में पंचाट दाखिल किए जाने की तारीख; तथा

(च) यथा विहित ऐसा अन्य विवरण

(5) यदि कोई पक्षकार आवेदन करता है कि न्यायालय, यथा स्थिति, न्यायालयों के नियमों के अनुसार माध्यस्थम पंचाट या माध्यस्थम रिकार्ड या माध्यस्थम कार्यवाही वृत्तांत की फोटो प्रति को एक प्रमाणित प्रति दे सकता है।

(6) न्यायालय कार्यवाही में उपयोग के लिए माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने या उसके प्रवर्तन के लिए माध्यस्थम रिकार्डों को प्रेषित कर सकता है।

(7) मूल दस्तावेजों को लौटाने के लिए या ऐसे दाखिल किए गए माध्यस्थम रिकार्डों के संरक्षण के लिए निर्धारित प्रक्रिया ऐसे नियमों के अध्यधीन होगी जो समय-समय पर ऐसे न्यायालय पर लागू होती हो।

(8) इस धारा के अन्तर्गत पंचाट की फोटो प्रति दाखिल करना केवल रिकार्ड के प्रयोजनों के लिए हो।

धारा 34 का संशोधन

23. मूल अधिनियम की धारा 34 में—

(क) उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधाराएं अन्तःस्थापित की जाएंगी, अर्थात:-

"(1) माध्यस्थम पंचाट के विरुद्ध न्यायालय का आश्रय केवल ऐसे पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन द्वारा किया जा सकता है जो:-

(क) उपधारा (2) और उपधारा (3) के अनुसार हो; और

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं) से भिन्न माध्यस्थम् में दिए गए पंचाट के मामले में उपधारा (2) और (3) तथा धारा 34क में उल्लिखित अतिरिक्त आधारों के अनुसार हो।

(1क) उपधारा (1) के अन्तर्गत किसी पंचाट को अपास्त करने के लिए किए जाने वाले आवेदन के साथ मूल पंचाट संलग्न किया जाएगा।

परन्तु जहां पक्षकारों को मूल पंचाट नहीं दिया गया है, वहां वे न्यायालय में मध्यस्थों द्वारा हस्ताक्षरित पंचाट की फोटो प्रति दाखिल कर सकते है।"

(ख) उपधारा (2) में स्पष्टीकरण को स्पष्टीकरण-I के रूप में पुनर्संस्थापित किया जाएगा और इस प्रकार पुनःसंस्थापित किए गए स्पष्टीकरण के पश्चात् निम्नलिखित स्पष्टीकरण अन्तःस्थापित किया जाएगा, अर्थात्:-

स्पष्टीकरण-II : शंकाओं के निवारण के लिए एतद्द्वारा यह घोषणा की जाती है कि उपधारा (1) के अन्तर्गत किसी माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त करने की अनुमति प्राप्त करते समय, आवेदन में माध्यस्थम् अधिकरण के विनिश्चय को चुनौती देने वाले तर्क शामिल किए जाएं जिनके द्वारा:

(i) धारा 13 की उपधारा (2) के अन्तर्गत दी गई चुनौती को,

(ii) धारा 16 की उपधारा (2) या उपधारा (3) के अन्तर्गत दिए गए तर्क को, अस्वीकृत किया जा सके।"

(ग) उपधारा (4) के पश्चात निम्नलिखित उपधाराएं अन्तःस्थापित की जाएंगी, अर्थात्:—

"(5) जहां न्यायालय ने, माध्यस्थम् अधिकरण की कार्यवाही फिर से प्रारम्भ करने या ऐसी अन्य कार्यवाही करने और इस धारा में या धारा 34क में पंचाट को अपास्त करने के लिए निर्दिष्ट कारणों का निराकरण करने के लिए अवसर प्रदान करते हुए उपधारा (4) के अन्तर्गत कार्यवाही स्थगित कर दी है, वहां माध्यस्थम् अधिकरण उपधारा (4) के अन्तर्गत न्यायालय द्वारा किए गए अनुरोध की प्राप्ति के 60 दिन के भीतर समुचित आदेश पारित करेगा और उन्हें विचार हेतु न्यायालय को भेजेगा।

(6) उपधारा (5) के अन्तर्गत माध्यस्थम् अधिकरण के आदेशों से व्यथित कोई पक्ष माध्यस्थम् अधिकरण से उक्त आदेश की प्राप्ति के 30 दिन के भीतर उसके बारे में अपनी आपत्तियां दाखिल कराने का हकदार होगा और उक्त पंचाट को अपास्त करने के लिए उपधारा (1) के अन्तर्गत किए गए आवेदन का न्यायालय द्वारा उपधारा (5) के अन्तर्गत किए माध्यस्थम् अधिकरण के आदेशों और इस उपधारा के अन्तर्गत दाखिल की गई आपत्तियों को ध्यान में रखकर, निपटारा किया जाएगा।"

नई धारा 34क का अन्तःस्थापन

24. मूल अधिनियम की धारा 34 के पश्चात् निम्नलिखित धारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:—

कतिपय पंचाटों के मामलों में चुनौती के अतिरिक्त आधार

"34(क) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम् (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं) से भिन्न किसी माध्यस्थम् में दिए गए माध्यस्थम् पंचाट के मामले में, धारा 34 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी पंचाट को अपास्त करने के लिए किए गए आवेदन में निम्नलिखित अतिरिक्त आधारों का अवलम्ब लिया जा सकता है, अर्थात्—

(क) जहां ऐसी गलती है जो माध्यस्थम् पंचाट में प्रत्यक्ष रूप से हुई है जिससे विधि का सारभूत प्रश्न पैदा होता है,

(ख) माध्यस्थम् पंचाट ऐसा पंचाट है जिसके संबंध में धारा 31 की उपधारा (3) के अन्तर्गत कारण बताने होते है लेकिन माध्यस्थम् पंचाट के कारण नहीं बताए गए हैं।

(2) जहां धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत दाखिल किए गए आवेदन में, उपधारा (1) के खण्ड (क) में निर्दिष्ट आधार का अवलम्ब लिया जाता है वहां आवेदक उक्त आधार को उठाने हेतु न्यायालय की अनुमति प्राप्त करने के लिए अलग से आवेदन दाखिल करेगा:

परन्तु यह कि न्यायालय तब तक अनुमति प्रदान नहीं करेगा जब तक कि प्रथम दृष्टया उसका यह मत न हो कि निम्नलिखित सभी शर्तें पूरी कर ली गई हैं, अर्थात्—

(क) प्रश्न का विचारण एक अथवा अधिक पक्षकारों के अधिकारों को काफी हद तक प्रभावित करेगा;

(ख) विधि का सारभूत प्रश्न ऐसा था जिसके बारे में माध्यस्थम अधिकरण विनिश्चय करने के लिए कहा गया था; और

(ग) अनुमति देने के लिए किए आवेदन में विधि के उस सारभूत प्रश्न का स्पष्ट उल्लेख हो जिसके बारे में निर्णय किया जाना है और अनुमति दिए जाने के संगत आधारों का भी वर्णन हो।

(3) जहां विधि के किसी विशिष्ट प्रश्न को माध्यस्थम अधिकरणों को भेजा गया हो वहां उपधारा (1) के खण्ड (क) में उल्लिखित आधार पर किसी पंचाट को अपास्त नहीं किया जाएगा।"

धारा 36 के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन

25. मूल अधिनियम की धारा 36 के स्थान पर निम्नलिखित धारा प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्:—

पंचाट का कार्यान्वयन या उसके प्रवर्तन का स्थगन

"36. (1) जहां धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन करने का समय समाप्त हो गया है तो उपधारा (2) से (4) तक के उपबंधों के अध्यधीन पंचाट सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अन्तर्गत ऐसे ढंग से प्रवर्तित किया जाएगा जैसे कि वह न्यायालय की डिक्री हो।

(2) जहां माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने के लिए धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत न्यायालय में आवेदन दाखिल किया गया हो, ऐसे आवेदन को दाखिल करने से स्वतः पंचाट का तब तक स्थगन नहीं हो जाएगा जब तक न्यायालय, उस प्रयोजन के लिए और आवेदन किए जाने पर, उपधारा (3) के उपबंधों के अनुसार पंचाट के कार्यान्वयन का स्थगन नहीं दे देता।

(3) पंचाट के कार्यान्वयन के स्थगन के लिए उपधारा (2) में निर्दिष्ट आवेदन दाखिल किए जाने पर न्यायालय, ऐसी किसी कार्यवाही पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जो वह धारा 37क की उपधारा (1) के अन्तर्गत और ऐसी शर्तों के अध्यधीन जो वह लगाना उचित समझे, लिखित में संक्षेप में दर्ज किए गए कारणों के लिए माध्यस्थम पंचाट के कार्यान्वयन के बारे में स्थगन प्रदान कर सकता है।

परन्तु न्यायालय, स्थगन प्रदान करने पर विचार करते समय, पंचाट को अपास्त करने के आधारों को ध्यान में रखेगा।

(4) उपधारा (3) में निर्दिष्ट शर्तों को लागू करने की शक्ति में, पंचाट के न केवल पक्षकारों के विरुद्ध या उस सम्पत्ति के संबंध में जो पंचाट की विषय-वस्तु के अध्यधीन है, अन्तरिम उपाय की अनुमति देने लेकिन तीसरे पक्षकार के खिलाफ या उस सम्पत्ति के संबंध में जो पंचाट की विषय-वस्तु नहीं है, अन्तरिम उपाय जारी करना सम्मिलित है जहां तक उस पक्षकार के हितों की रक्षा करना जरूरी है जिसके पक्ष में पंचाट पारित किया गया है।

(5) उपधारा (4) के अन्तर्गत प्रदान किए गए उपायों को न्यायालय द्वारा, यथा स्थिति, ऐसी शर्तों, यदि कोई हो, के अध्यधीन जो वह उचित समझे, प्रभावित व्यक्तियों की सुनवाई के पश्चात् पुष्ट, उपान्तरित या निष्प्रभावी किया जा सकता है।

नई धारा 37क का अन्तःस्थापन

26. मूल अधिनियम की धारा 37 के पश्चात् धारा 37क अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात्—

धारा 34 और 37 और समय सीमाओं के अन्तर्गत मध्यक्षेप के लिए सारभूत प्रतिकूल प्रभाव दिखाना होगा।

"37क. (1) धारा 34 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट न्यायालय उक्त के अन्तर्गत आवेदन पर विचार करते समय या धारा 37 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अन्तर्गत निर्दिष्ट न्यायालय, इन उपधाराओं में से किसी उपधारा के अन्तर्गत अपील कर विचार करते समय, यदि ऐसा करना उचित समझे तो, आवेदक या अपीलकर्ता या उसके काउंसेल की सुनवाई के लिए एक दिन निश्चित करने के पश्चात और यदि उस दिन उपस्थित होता है तो तदनुसार उसकी सुनवाई करके प्रतिवादी को कोई नोटिस दिए बिना, यदि, यथास्थित, आवेदन या अपील में कोई खूबियां नहीं है तो लिखित में संक्षेप में कारण दर्ज करते हुए, आवेदन या अपील को खारिज कर सकेगा।

(2) माध्यस्थम अधिकरण द्वारा पारित कोई भी पंचाट धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत किए गए किसी आवेदन पर अपास्त नहीं किया जाएगा और माध्यस्थम अधिकरण या न्यायालय द्वारा पारित कोई भी आदेश, यथास्थिति, धारा 37 की उपधारा (1) या उपधारा (2) के अन्तर्गत की गई किसी अपील पर तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि सारभूत प्रतिकूल प्रभाव प्रदर्शित नहीं किया गया हो।

(3) उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रत्येक आवेदन या अपील का निपटारा विरोधी पक्षकार को नोटिस तामील किए जाने की तारीख से 6 महीने के भीतर किया जाएगा।

परन्तु धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत किसी आवेदन पर विचार करते समय यदि न्यायालय धारा 34 की उपधारा (5) के अन्तर्गत कार्यवाही स्थगित कर देता है तो 6 महीने की अवधि की गणना, उस उपधारा के अन्तर्गत माध्यस्थम अधिकरण से आदेश की प्राप्ति की तारीख से की जाएगी।"

धारा 42 के स्थान पर नई धारा का प्रतिस्थापन

27. मूल अधिनियम की धारा 42 के स्थान पर निम्नलिखित नई धाराएं प्रतिस्थापित की जाएगी, अर्थात्:—

उत्तरवर्ती आवेदनों को दाखिल करने के लिए समुचित न्यायालय

"42. (1) इस भाग में अथवा तत्समय प्रवृत्त अन्य किसी विधि में अन्यत्र अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी भी माध्यस्थम करार के संबंध में इस भाग के अधीन कोई आवेदन उपधारा (2) से (5) के अनुसार न्यायालय को किया गया है तो सभी पश्चातवर्ती आवेदन (धारा 31क की उपधारा (2) में निर्दिष्ट आवेदनों से भिन्न) जो उस करार और माध्यस्थम की कार्यवाही (जिसे इस धारा में इसके पश्चात पश्चातवर्ती आवेदन कहा जाएगा), किसी अन्य न्यायालय में नहीं बल्कि उपधारा (2) से (5) के अनुसार किए जाएंगे।

(2) जहां न्यायालय में कोई आवेदन धारा 2 की उपधारा (1) के खण्ड (1) के अर्थ के भीतर किया है वहां पश्चातवर्ती आवेदन किसी अन्य न्यायालय में न करके उसी न्यायालय में किए जाएंगे।

(3) यदि किसी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष धारा 8 के अन्तर्गत लम्बित किसी कार्यवाही में कोई ऐसा आवेदन किया जाता है जिसके अन्तर्गत किसी करार के संबंध में माध्यस्थम को निर्दिष्ट किए जाने की अनुमति मांगी गई हो, वहां पश्चातवर्ती आवेदन निम्नलिखित ढंग से किए जाएंगे, अर्थात:

(i) जहां न्यायिक प्राधिकारी धारा 2 की उपधारा (1) के खण्ड (ङ) के अर्थ के भीतर कोई न्यायालय है वहां पश्चातवर्ती आवेदन उक्त न्यायालय में किया जाएगा जिसमें आवेदन किया गया है तथा और किसी न्यायालय में नहीं किया जाएगा।

(ii) जहां न्यायिक प्राधिकारी ऐसा न्यायालय जो, यथास्थित, जिले में मूल अधिकारिता वाले प्रधान सिविल न्यायालय से या नगर में मूल अधिकारिता वाले प्रधान न्यायाधीश के न्यायालय (जिसे इसमें इसके पश्चात प्रधान न्यायालय कहा जाएगा) से ग्रेड में निम्नतर न्यायालय है, वहां पश्चातवर्ती आवेदन उक्त प्रधान न्यायालय में किया जाएगा जिसका वह न्यायालय अधीनस्थ है, जहां आवेदन किया गया है और उक्त आवेदन और किसी न्यायालय में नहीं किया जाएगा।

(iii) जहां न्यायिक प्राधिकारी अर्ध-न्यायिक सांविधिक प्राधिकारी है, वहां पश्चातवर्ती आवेदन खण्ड (ii) में उल्लिखित उक्त प्रधान न्यायालय में किया जाएगा जिसकी क्षेत्रीय सीमाओं में वह उक्त

प्राधिकारी स्थित है तथा यह आवेदन और किसी न्यायालय में नहीं किया जाएगा।

(4) यदि धारा 8क के अन्तर्गत कोई कानूनी कार्यवाही उक्त धारा में निर्दिष्ट न्यायालय के समक्ष चल रही है और किसी करार के संबंध में निर्देश प्राप्त करने के लिए आवेदन किया जाता है तो पश्चातवर्ती आवेदन निम्नलिखित ढंग से किए जाएंगे, अर्थात:-

(i) जहां आवेदन उच्चतम न्यायालय, यथास्थिति, उपधारा (3) के खण्ड (ii) में उल्लिखित प्रधान सिविल न्यायालय में किया गया है वहां पश्चातवर्ती आवेदन अन्य किसी न्यायालय में नहीं किया बल्कि उसी न्यायालय में किया जाएगा जिसने निर्देश किया है।

(ii) जहां आवेदन समन्वित अधिकारिता या यथास्थिति, उपधारा (3) के खण्ड (2) में उल्लिखित प्रधान सिविल न्यायालयों से निम्नतर ग्रेड वाले न्यायालय में किया गया है वहां पश्चातवर्ती आवेदन उक्त प्रधान न्यायालय में किया जाएगा जहां से कानूनी कार्यवाही यथास्थिति, समन्वित अधिकारिता वाले ऐसे न्यायालय को अन्तरित की गई थी या उस न्यायालय को जिसका उक्त न्यायालय अधीनस्थ है और उक्त आवेदन किसी अन्य न्यायालय में नहीं किया जाएगा।

स्पष्टीकरण-I इस उपधारा में "कानूनी कार्यवाही" का वही अर्थ होगा जो धारा 8क के स्पष्टीकरण में दिया गया है।

स्पष्टीकरण-II शंकाओं के निवारण के लिए, एतद्द्वारा यह घोषित किया जाता है कि उन माध्यस्थम कार्यवाहियों के मामले में जो धारा 8क के अधीन उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा किए गए निर्देश और उनके अनुसरण में पारित पंचाटों के अनुसरण में प्रारंभ हुई हैं, "न्यायालय को निर्देश" शब्द जहां कहीं भी इस भाग में यह प्रयोग किया गया है, का अर्थ धारा 27 और धारा 31क के सिवाय, यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय को निर्देश लगाया जाएगा।

(5) यदि किसी करार के संबंध में माध्यस्थम को निर्दिष्ट कराने के लिए कोई आवेदन, यथास्थिति, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय में धारा 11 के अधीन किया गया है तो पश्चातवर्ती आवेदन धारा 2 की उपधारा (1) के खण्ड (ङ) के अर्थ के अन्तर्गत आने वाले न्यायालय में किए जाएंगे तथा किसी अन्य न्यायालय में नहीं।

माध्यस्थों के पैनल के लिए योजना:

42क. भारत का मुख्य न्यायमूर्ति मध्यस्थों का एक पैनल गठित करने के लिए एक योजना तैयार कर सकेगा ताकि, यथास्थिति, धारा 11 के अधीन पक्षकार या उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय, अथवा धारा 8 के अधीन न्यायिक प्राधिकारी या धारा 8क में निर्दिष्ट न्यायालय या धारा 43क के अन्तर्गत पक्षकार, ऐसी शर्तों के अध्यधीन, जैसी कि उस योजना में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा विनिर्दिष्ट की जाएं, ऐसे पैनल में से मध्यस्थ नियुक्त कर सकें।"

महाराष्ट्र संशोधन अधिनियम, 1984 द्वारा यथासंशोधित भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 के अधीन अरजिस्ट्रीकृत भागीदारियों से संबंधित विशेष उपबंध

"42ख. भारतीय भागीदारी अधिनियम, 1932 की धारा 69 में संशोधन करने वाले, भारतीय भागीदारी (महाराष्ट्र संशोधन) अधिनियम, 1984 के उपबंधों का, महाराष्ट्र में लागू करते समय, निम्नलिखित के संबंध में किसी अधिकार के प्रवर्तन के प्रयोजन के लिए माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 के अधीन किसी कार्यवाही के प्रारंभ पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा:—

(क) फर्म का विघटन;

(ख) विघटित फर्म के लेखाओं का निपटान; या

(ग) विघटित फर्म की सम्पत्ति की वसूली।"

धारा 43का संशोधन

28. मूल अधिनियम की धारा 43 में—

(क) उपधारा (3) के अन्त में निम्नलिखित स्पष्टीकरण जोड़ा जाएगा, अर्थात्:—

"स्पष्टीकरण – शंकाओं के निवारण के लिए एतद्द्वारा यह घोषित किया जाता है कि माध्यस्थम करार में किया गया ऐसा कोई उपबंध जिसमें यह व्यवस्था की गई हो कि ऐसा कोई भी दावा सब तक वर्जित हो जाएगा जब तक कि माध्यस्थम की कार्यवाही आरंभ करने के लिए कुछ कदम,करार द्वारा निश्चित समय के भीतर नहीं उठाए जाते तो उस उपबंध को भारतीय संविदा (संशोधन) अधिनियम, 1996 की तारीख से शून्य माना जाएगा।"

(ख) उपधारा (4) के पश्चात निम्नलिखित उपधारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात्:—

"(5) किसी विवाद के संबंध में कार्यवाही आरम्भ करने के लिए परिसीमन अधिनियम, 1963 (1963 का 36) द्वारा विहित समय की संगणना करते समय, माध्यस्थम प्रारंभ होने और नीचे उल्लिखित आदेशों की तारीख के बीच की अवधि का अपवर्जित किया जाएगा, अर्थात्—

(क) माध्यस्थम अधिकरण का ऐसा कोई आदेश जिसमें धारा 16 की उपधारा (2) या उपधारा (3) में निर्दिष्ट किसी दलील को स्वीकार किया गया हो;

(ख) न्यायालय द्वारा धारा 37 की उपधारा (2) के खण्ड (क) के अन्तर्गत किया गया कोई आदेश जिसके द्वारा खण्ड (क) के अन्तर्गत किए गए आदेश या आगे अपील, यदि कोई हो, पर उच्चतम न्यायालय का ऐसा कोई आदेश जिसमें पहले उल्लिखित आदेश की पुष्टि की गई हो;

(ग) ऐसा कोई आदेश जिसके द्वारा माध्यस्थम करार को अकृत और शून्य या अप्रभावी या अनिष्पादनीय या अस्तित्व में न होना घोषित किया गया है और जो निम्नलिखित में किसी के द्वारा पारित किया गया हो—

(i) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं) से भिन्न माध्यस्थम के मामले में धारा 11 की उपधारा (13) के अन्तर्गत उच्च न्यायालय द्वारा या आगे अपील पर उच्चतम न्यायालय द्वारा;

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम (चाहे वह वाणिज्यिक हो या नहीं) के मामले में धारा 11 की उपधारा (13)के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय द्वारा।

धारा–एक में नए अध्याय—ग्यारह का अन्तःस्थापन

29. मूल अधिनियम की धारा 43 के पश्चात निम्नलिखित अध्याय का अन्तःस्थापन किया जाएगा, अर्थात्:—

"अध्याय – ग्यारह

एक सदस्यीय त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण तथा त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम

त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के द्वारा विवादों का निपटारा

43क. (1) धारा 8 में निर्दिष्ट किसी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष चली रही किसी कार्यवाही का धारा 8क में निर्दिष्ट न्यायालयों में से किसी न्यायालय के समक्ष चल रही कानूनी कार्यवाही या किसी माध्यस्थम करार या धारा 11 के अन्तर्गत उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के समक्ष दाखिल किसी आवेदन के पक्षकार यथास्थिति, माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति से पूर्व या नियुक्ति के बाद किसी चरण पर, धारा 43ख से 43घ तथा चौथी अनुसूची (जिसे इसमें इसके पश्चात त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम कहा जाएगा) में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के उपबंधों के अनुसार माध्यस्थम के जरिए अपने विवादों का समाधान कराने के लिए लिखित रूप में सहमत हो सकेंगे।

(2) यदि उपधारा (1) में निर्दिष्ट पक्षकार उपर्युक्त उपधारा के अन्तर्गत त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के द्वारा अपने विवादों का समाधान कराने के लिए सहमत हो जाते हैं तो उक्त दोनों पक्षकारों के बीच सहमति से नियुक्त माध्यस्थम अधिकरण को त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण कहा जाएगा।

(3) माध्यस्थम करार में अन्तर्विष्ट किसी बात से होते हुए भी—

(i) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण में एकमात्र मध्यस्थ होगा;

(ii) वह एकल मध्यस्थ पक्षकारों द्वारा सर्वसम्मति से चुना जाएगा;

(iii) माध्यस्थम को देय फीस और ऐसी फीस के संदाय का तरीका ऐसा होगा जैसा कि एकल मध्यस्थ तथा पक्षकारों के बीच सहमति से तय हुआ हो;

(iv) चौथी अनुसूची में निर्धारित प्रक्रिया (जिसे इसमें इसके पश्चात त्वरित प्रक्रिया कहा जाएगा) लागू होगी।

अधिनियम के अन्य उपबंध उपांतरणों के अध्यधीन लागू होंगे

43ख जहां तक ऐसे मामलों को संबंध है जिनका उपबंध चौथी अनुसूची में नहीं किया गया है, उनके संबंध में इस भाग के अन्य उपबंध त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम पर उसी तरह लागू होंगे जैसे वे निम्नलिखित उपांतरणों के अध्यधीन अन्य माध्यस्थमों पर लागू होते हैं, अर्थात:-

(क) संदर्भों की-

(i) माध्यस्थम अधिकरण को निर्देशों में जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण को निर्देश सम्मिलित किया माना जाएगा; तथा

(ii) न्यायालयों को निर्देश से, धारा 27 तथा धारा 31क के सिवाय "उच्च न्यायालय" को निर्देश माना जाएगा;

(ख) धारा 33 की उपधारा (1) से (4) में, "तीस दिन" शब्द जहां कहीं भी वे आए हैं, के स्थान पर "पंद्रह दिन" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे।

(ग) धारा 34 में-

(i) उपधारा (3), "तीन महीने" शब्दों के स्थान पर "तीस दिन" और "तीस दिन" शब्दों के स्थान पर क्रमश: "पंद्रह दिन" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे;

(ii) उपधारा (5) में "साठ दिन" शब्दों के स्थान पर "तीस दिन" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे;

(iii) उपधारा (6) में "तीस दिन" और "तीस दिन" शब्दों के स्थान पर क्रमश: "पंद्रह दिन" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे;

(घ) धारा 37क में, "छः महीने" शब्दों के स्थान पर "तीन महीने" शब्द प्रतिस्थापित किए जाएंगे।

(ङ) धारा 37 की उपधारा (1) में अपील का उपबंध, धारा 37 की उपधारा (1) के खण्ड (क) और (ख) में निर्दिष्ट आदेशों पर लागू नहीं होगा।

पश्चातवर्ती आवेदनों को दाखिल करने के लिए समुचित न्यायालय

43ग. इस भाग में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में लेकिन धारा 43ख के खण्ड (क) के उपखण्ड (ii) के अधीन अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी जहां किसी माध्यस्थम करार के संबंध में, इस भाग में उल्लिखित ढंग से किसी न्यायालय के समक्ष कोई आवेदन किया जाता है या किए जाने के लिए अपेक्षित है, वहां ऐसा कोई आवेदन उच्च न्यायालय में किया जाएगा और उस करार से उत्पन्न होने वाले सभी पश्चातवर्ती आवेदन तथा माध्यस्थम की कार्यवाही किसी अन्य उच्च न्यायालय में नहीं बल्कि उसी उच्च न्यायालय में की जाएगी।

इस अध्याय के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय

43घ. धारा 43ख और धारा 43ग में "उच्च न्यायालय" को निर्देश का अर्थ उस उच्च न्यायालय को निर्देश किया जाना लगाया जाएगा जिसकी प्रादेशिक सीमाओं में प्रधान सिविल न्यायालय या यथास्थिति, धारा 2 की उपधारा (1) के खण्ड (ङ) में निर्दिष्ट नगर सिविल न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश का न्यायालय स्थित है।"

धारा 82 का संशोधन

30. मूल अधिनियम की धारा 82 को उसकी उपधारा (1) के रूप में पुनःसंख्यांकित किया जाएगा और इस प्रकार पुनःसंख्यांकित उपधारा (1) के पश्चात निम्नलिखित उपधारा अन्तःस्थापित की जाएगी अर्थात:–

"(2) उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना निम्नलिखित के संबंध में नियम बनाये जाएंगे, अर्थात्:–

(क) वह रीति जिससे माध्यस्थम कार्यवाही का संचालन किया जाएगा;

(ख) दिनों की संख्या जिनके लिए अधिकरण की बैठक के प्रत्येक अवसर पर माध्यस्थम की कार्यवाही का निरन्तर संचालन किया जाएगा;

(ग) समय-सूची और घंटों की संख्या, जितने समय प्रतिदिन कार्यवाही का संचालन करना होगा;

(घ) धारा 23 की उपधारा (1क) के प्रयोजनों के लिए अभिवचनों को दाखिल किए जाने की समय-सूची;

(ङ) धारा 24 की उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए साक्ष्य रिकार्ड करने और तर्क प्रस्तुत करने की समय-सूची;

(च) धारा 29क की उपधारा (6) में निर्दिष्ट, मर्दों और माध्यस्थम अधिकरण द्वारा अपनाई जाने वाली भावी प्रक्रिया के संबंध में समय-सूची;

(3) भारत के मुख्य न्यायमूर्ति उपधारा (2) में निर्दिष्ट मर्दों और माध्यस्थम अधिकरण द्वारा अपनाई जाने वाली अन्य प्रक्रियाओं के संबंध में उच्च न्यायालयों को मार्गदर्शी सिद्धांत जारी कर सकेंगे ताकि सभी उच्च न्यायालयों द्वारा एक जैसे नियम बनाए जा सकें।"

धारा 84 का संशोधन

31. मूल अधिनियम की धारा 84 में, उपधारा (1) के पश्चात निम्नलिखित उपधारा अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात:–

(1क) उपधारा (1) के उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, निम्नलिखित के संबंध में नियम बनाए जा सकेंगे:–

(क) वह रीति जिससे माध्यस्थम अधिकरणों की फीस तथा उससे संबंधित प्रक्रिया निश्चित की जा सकेगी;

(ख) धारा 31क की उपधारा (4) के खण्ड (च) के अन्तर्गत रजिस्टर में दर्ज करने के लिए अपेक्षित अन्य विवरण।"

अस्थायी उपबंध

32. (1) उपधारा (2) से (17) तक के उपबंधों के अध्यधीन, इस अधिनियम द्वारा संशोधित मूल अधिनियम के उपबंध प्रवर्तन में भविष्यलक्षी होंगे तथा विशेषरूप से निम्नलिखित पर लागू नहीं होंगे:–

(i) मूल अधिनियम की धारा 8 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष हुए माध्यस्थम करार के किसी पक्षकार द्वारा किया गया आवेदन या इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व उक्त धारा के अधीन किसी न्यायिक प्राधिकारी द्वारा की गई कोई नियुक्ति;

(ii) इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व मूल अधिनियम की धारा 11 के अधीन किसी पक्षकार या भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से किया गया कोई अनुरोध;

(iii) माध्यस्थम करार के पक्षकारों द्वारा, मूल अधिनियम की धारा 11 के अधीन इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व की गई माध्यस्थम अधिकरण की कोई भी नियुक्ति या इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व उक्त धारा के अधीन किसी ऐसे पक्षकार द्वारा की गई कोई नियुक्ति जो माध्यस्थम करार के

अधीन, माध्यस्थम करार के किसी अन्य पक्षकारों या पक्षकारों की सहमति के बिना ऐसी नियुक्ति करने के लिए अधिकृत था या इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व भारत के मुख्य न्यायमूर्ति या उसके अधिहित अथवा किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति या उसके अधिहित व्यक्ति द्वारा की गई कोई नियुक्ति;

(iv) इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व, मूल अधिनियम के अधीन पारित कोई पंचाट।

(2) उपधारा (3) के उपबंधों के अध्यधीन, इस अधिनियम के उपबंध इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व किए गए ऐसे माध्यस्थम करारों के लागू होंगे जहां इस अधिनियम के आरंभ से पूर्व, मूल अधिनियम के अधीन–

(i) माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के लिए कोई अनुरोध; या

(ii) माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के लिए कोई आवेदन; या

(iii) माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति,

नहीं की गई है।

(3) इस अधिनियम की धारा 2 के खंड (ii) द्वारा, मूल अधिनियम में यथा अंत:स्थापित धारा 2 की उपधारा (2) के खंड (ख) के उपबंध निम्नलिखित पर लागू होंगे:–

(i) मूल अधिनियम की धारा 8 के अधीन कानूनी कार्यवाही में किसी न्यायिक प्राधिकारी के समक्ष या मूल अधिनियम की धारा 9 के अधीन किसी न्यायालय के समक्ष किए गए वे आवेदन जो मूल अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट स्वरूप के माध्यस्थमों के संबंध में, इस अधिनियम के प्रारंभ के समय लम्बित है;

(ii) मूल अधिनियम की धारा 35 के अधीन उनकी अन्तिमता तथा मूल अधिनियम की धारा 36 के अधीन उनके प्रवर्तन के प्रयोजनों के लिए, इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व पारित, मूल अधिनियम की धारा 2 की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट स्वरूप के माध्यस्थमों से उत्पन्न पंचाट।

(4) इस अधिनियम की धारा 2 के खंड (iii) द्वारा मूल अधिनियम में यथा अंत:स्थापित, धारा 2 की उपधारा (10) के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारंभ के समय, उक्त उपधारा में निर्दिष्ट प्रधान न्यायालयों के समक्ष मूल अधिनियम के अधीन लंबित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे।

(5) इस अधिनियम की धारा 4 द्वारा यथा संशोधित, मूल अधिनियम की धारा 6 के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारंभ के समय किसी माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष मूल अधिनियम के अधीन लंबित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे।

(6) इस अधिनियम की धारा 8 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अंत: स्थापित धारा 9 की उपधारा (4), (5) और (6) के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारंभ के समय न्यायालय में धारा 9 के अधीन लंबित सभी आवेदनों पर लागू होंगे।

(7) इस अधिनियम की धारा 9 द्वारा, मूल अधिनियम में यथा अंत:स्थापित धारा 10क के उपबंध, उन माध्यस्थम करारों पर लागू होंगे जिनके संबंध में माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के अनुरोध, यदि माध्यस्थम अधिकरण ऐसे प्रारंभ होने की तारीख को नियुक्त नहीं किया गया था तो, इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख को विनिश्चय के लिए लंबित थे।

(8) इस अधिनियम की धारा 14 द्वारा यथा प्रतिस्थापित, मूल अधिनियम की धारा 17 के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारंभ के समय किसी माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष मूल अधिनियम के अधीन लंबित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे।

(9) इस अधिनियम की धारा 15 द्वारा यथा प्रतिस्थापित, मूल अधिनियम की धारा 20 की उपधारा (1) के उपबंध, उन माध्यस्थम करारों पर लागू होंगे जिनके संबंध में माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के लिए किए गए अनुरोध तथा माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के लिए किए गए आवेदन, इस अधिनियम के प्रारंभ के

समय, यदि माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति ऐसे प्रारंभ की तारीख तक नहीं की गयी थी तो, विनिश्चय के लिए लंबित थे।

(10) इस अधिनियम की धारा 16 द्वारा यथा संशोधित, मूल अधिनियम की धारा 23 की उपधारा (1) के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारंभ के समय, जहां ऐसे प्रारंभ की तारीख को दावा, प्रतिदावा, प्रत्युत्तर के विवरण, माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष दाखिल नहीं किए गए हैं, किसी माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष मूल अधिनियम के अधीन लंबित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे।

(11) इस अधिनियम की धारा 17 द्वारा यथा संशोधित, मूल अधिनियम की धारा 24 की उपधारा (1) के उपबंध तथा उक्त धारा के द्वारा यथा अंत:स्थापित, मूल अधिनियम की धारा 24 की उपधारा (1क) के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारंभ के समय, जहां ऐसे प्रारंभ के समय, यथास्थिति, मौखिक साक्ष्य या मौखिक बहस पूरी नहीं की गई है, मूल अधिनियम के अंतर्गत किसी माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष लंबित माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे।

(12) इस अधिनियम की धारा 18 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अंत:स्थापित धारा 24क के उपबंध, माध्यस्थम अधिकरण के आदेशों पर लागू होंगे यदि इस अधिनियम के प्रारंभ के समय मूल अधिनियम की धारा 17, 23 और 24 के अधीन पारित किए गए हैं, और जहां ऐसे आदेशों का ऐसे प्रारंभ होने की तारीख को उस पक्षकार द्वारा पालन नहीं किया गया है जिसे वे निर्देशित किए गए थे।

(13) इस अधिनियम की धारा 19 द्वारा मूल अधिनियम की यथा संशोधित धारा 28 के उपबंध उन माध्यस्थम करारों पर लागू होंगे जिनके संबंध में, इस अधिनियम के प्रारंभ के समय, यदि उस तारीख तक माध्यस्थम अधिकरण नियुक्त नहीं किया गया है तथा माध्यस्थम अधिकरण की नियुक्ति के अनुरोध और नियुक्ति के लिए आवेदन विनिश्चय के लिए लंबित हैं।

(14)(i) इस अधिनियम की धारा 20 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अंत:स्थापित धारा 29 की उपधारा (3)

(ii) इस अधिनियम की धारा 22 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अंत:स्थापित धारा 31क;

(iii) इस अधिनियम की धारा 23 द्वारा यथा संशोधित धारा 34;

(iv) इस अधिनियम की धारा 24 मूल अधिनियम में यथा अंत:स्थापित धारा 34क;

के उपबंध, मूल अधिनियम के अधीन उन माध्यस्थ कार्यवाहियों पर लागू होंगे जो इस अधिनियम के प्रारंभ के समय माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष लंबित थीं यदि ऐसे प्रारंभ की तारीख को पंचाट पारित नहीं किए गए हैं।

(15) इस अधिनियम की धारा 25 द्वारा मूल अधिनियम की यथा संशोधित धारा 36 के उपबंध, मूल अधिनियम के अधीन दिए गए उन सभी पंचाटों पर लागू होंगे जो इस अधिनियम के प्रारंभ के समय लंबित थे।

(16) इस अधिनियम की धारा 26 द्वारा, मूल अधिनियम में यथा अन्त: स्थापित धारा 37क की उपधारा (1) और (2) के उपबंध, मूल अधिनियम की धारा 34 की उपधारा (1) के अधीन किए गए उन आवेदनों तथा मूल अधिनियम की धारा 37 के अन्तर्गत की गई उन सभी अपीलों पर लागू होंगे जो इस अधिनियम के प्रारम्भ के समय लम्बित थे, यदि ऐसे प्रारम्भ की तारीख से पहले मूल अधिनियम की धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत या मूल अधिनियम की धारा 37 के अधीन न्यायालय द्वारा कोई नोटिस जारी नहीं किया गया है।

परन्तु जहां इस तरह के आवेदन या अपील पर न्यायालय द्वारा नोटिस जारी कर दिया गया है वहां मूल अधिनियम की धारा 37क की उपधारा (1) के उपबंध लागू नहीं होंगे।

(17) इस अधिनियम की धारा 28 के खण्ड (ख) द्वारा, मूल अधिनियम में यथा अन्त: स्थापित धारा 43 की उपधारा (5) के उपबंध, उक्त उपधारा में निर्दिष्ट आदेशों पर लागू होंगे यदि उसे आदेश या इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात, किसी माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष, ऐसे प्रारम्भ के समय, मूल अधिनियम की लम्बित माध्यस्थम कार्यवाहियों मे पारित किए गए थे।

कार्यवाहियों का शीघ्रता से पूरा किया जाना और पंचाट पारित करने के लिए समय-सीमा

33. (1) इस अधिनियम के आरम्भ के समय सभी माध्यस्थम कार्यवाहियां, जो किसी कार्यवाही के प्रारम्भ होने की तारीख से 3 वर्ष से अधिक समय से मूल अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्त माध्यस्थम अधिकरण के समक्ष लम्बित हैं, को इस अधिनियम के आरम्भ होने की तिथि से अगले और एक वर्ष की अवधि के भीतर अथवा उपधारा (2) और (3) में यथा विनिर्दिष्ट ऐसी गई अवधि में पूरा किया जाएगा।

परन्तु जहां इस अधिनियम के आरम्भ होने की तारीख को ऐसी कार्यवाहियों के प्रारम्भ होने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि समाप्त नहीं हुई है वहां ऐसी कार्यवाहियों को, माध्यस्थम कार्यवाहियों के तीन वर्ष पूरे होने की तिथि से लेकर और बढ़ाई गई 6 महीने की अवधि के भीतर अथवा उपधारा (2) और उपधारा (3) में यथा विनिर्दिष्ट ऐसी बढ़ाई गई अवधि में पूरा किया जाएगा।

(2) यदि उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट एक वर्ष अथवा 6 महीने की अवधि में, यथास्थिति हो, पंचाट नहीं दिया जाता है, तो उपधारा (3) के उपबंधों के अध्यधीन माध्यस्थम कार्यवाही को स्थगित माना जाएगा जब तक कि मध्यस्थता के लिए किसी पक्षकर ने अवधि बढ़ाने हेतु न्यायालय में आवेदन न किया हो अथवा किसी भी पक्षकर ने उपर्युक्त आवेदन न किया हो, जब तक कि माध्यस्थम अधिकरण द्वारा ऐसा आवेदन नहीं किया जाता है।

(3) इस अधिनियम की धारा 21 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अन्तःस्थापित धारा 29क की उपधारा (4) और (8) के उपबंध, जहां तक संभव हो, पंचाट के पारित होने तक माध्यस्थम कार्यवाहियों के शीघ्र निपटान को ध्यान में रखते हुए उपधारा (2) में उल्लिखित आवेदन के निपटान हेतु लागू होंगे।

(4) जहां इस अधिनियम की धारा 23 द्वारा मूल अधिनियम को यथा संशोधित धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत आवेदन और मूल अधिनियम की धारा 37 की उपधारा (1) के अन्तर्गत अपीलें, यथास्थिति इस अधिनियम के आरम्भ होने की तिथि पर, उन उपधाराओं में उल्लिखित किसी भी न्यायालय के समक्ष लम्बित हों, उन्हें ऐसे अधिनियम के आरम्भ की तिथि से 6 महीने के भीतर निपटाया जाएगा।

परन्तु मूल अधिनियम की धारा 34 की उपधारा (1) के अन्तर्गत आवेदन पर विचार करते समय, यदि न्यायालय उस धारा की उपधारा (5) के अन्तर्गत कार्यवाही को स्थगित कर देता है तो 6 महीने की यह अवधि उस उपधारा के अन्तर्गत माध्यस्थम अधिकरण से आदेश प्राप्त की तिथि से मानी जाएगी।

(5) जहां इस अधिनियम के आरम्भ होने की तारीख पर मूल अधिनियम की धारा 37 की उपधारा (2) के अन्तर्गत अपीलें किसी न्यायालय के समक्ष लम्बित हों तो ऐसे अधिनियम के आरम्भ होने की तारीख से तीन महीने के भीतर उन अपीलों का निपटान किया जाएगा।

माध्यस्थम अधिनियम, 1940 (1940 का 10) के अन्तर्गत माध्यस्थमों, आवेदनों और अपीलों को शीघ्र निपटाने और निपटान के लिए समय-सीमा

34. (1) इस अधिनियम की धारा 4, 16 और 17 द्वारा क्रमशः यथा संशोधित मूल अधिनियम की धारा 6, 23 और 24क उपबंध, जहां तक हो सके, माध्यस्थम अधिनियम, 1940 (1940 का 10) (जिसे इसमें "निरसित अधिनियम" कहा जाएगा) के अन्तर्गत ऐसी माध्यस्थम कार्यवाहियों पर लागू होंगे जो इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के समय लंबित थी और निरसित अधिनियम के ऐसे किन्हीं उपबंधों पर अभिभावी होंगे जो उक्त धाराओं से असंगत हों।

(2) निरसित अधिनियम के उपबंधों अथवा उपधारा (1) के अन्तर्गत पारित आदेशों के अन्तर्गत एकमात्र मध्यस्थ अथवा मध्यस्थों द्वारा पारित किसी आदेश के अनुपालन की दशा में, निरसित अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्ति, यथास्थिति, एकमात्र मध्यस्थ या अधिक मध्यस्थ इस अधिनियम की धारा 18 द्वारा यथा अन्तःस्थापित, मूल अधिनियम की धारा 24क के अन्तर्गत आदेश पारित कर सकते हैं।

(3) उपधारा (2) के अन्तर्गत एकमात्र मध्यस्थ या मध्यस्थों द्वारा पारित किसी अनिवार्य आदेश के अनुपालन की दशा में न्यायालय, निरसित अधिनियम की धारा 21 अथवा धारा 2 के खण्ड (ग) के अर्थ में, यथास्थिति, इस अधिनियम की धारा 18 द्वारा यथा अन्तःस्थापित मूल अधिनियम की धारा 24ख के अन्तर्गत आदेश पारित कर सकता है।

(4) जहां इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के समय निरसित अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्त एकमात्र मध्यस्थ अथवा मध्यस्थों के समक्ष माध्यस्थम कार्यवाहियां लंबित हैं, ऐसी कार्यवाहियां इस अधिनियम के प्रारम्भ होने की तारीख से आगे एक वर्ष की अवधि के भीतर अथवा ऐसी बढ़ाई गई अवधि के भीतर पूरी कर ली जाएगी जो उपधारा (5) और (6) में विनिर्दिष्ट की गई हों।

परन्तु जहां माध्यस्थम कार्यवाहियों पर न्यायालय के आदेशानुसार रोक लगाई गई हो, उस अवधि को, जिसके दौरान कार्यवाहियों पर इस प्रकार रोक लगाई गई हो, एक वर्ष की उक्त अवधि की गणना करते समय अपवर्जित किया जाएगा।

(5) यदि पंचाट उपधारा (4) में विनिर्दिष्ट एक वर्ष की आगे की अवधि के भीतर नहीं दिया जाता हो, उपधारा (6) के उपबंधों के अध्यधीन माध्यस्थम कार्यवाहियां तब तक निलंबित रहेंगी जब तक उपधारा (3) में उल्लिखित न्यायालय को अवधि के विस्तार के लिए आवेदन माध्यस्थम के किसी पक्षकार द्वारा नहीं कर दिया जाता अथवा जहां किसी पक्षकार ने यथापूर्वोक्त आवेदन न किया हो, ऐसा आवेदन,यथास्थिति, एकमात्र मध्यस्थ या मध्यस्थों द्वारा नहीं दिया जाता।

(6) इस अधिनियम की धारा 21 द्वारा मूल अधिनियम में यथा अन्तःस्थापित धारा 29क की उपधाराओं (4) से (8) के उपबंध जहां तक हो सके, पंचाट किए जाने तक माध्यस्थम कार्यवाहियों को शीघ्र पूरा करने की दृष्टि से, उपधारा (5) में उल्लिखित आवेदन के निपटान के लिए उपधारा (3) में उल्लिखित न्यायालय पर लागू होंगे।

(7) जहां पंचाट को न्यायालय का नियम बनाने के लिए किए गए आवेदन अथवा निरसित अधिनियम के अन्तर्गत पंचाट को अपास्त करने के लिए दाखिल की गई आपत्तियां अथवा निरसित अधिनियम की धारा 39 के अन्तर्गत दाखिल की गई कोई अपील अथवा अन्य कोई आवेदन इस अधिनियम के प्रारम्भ होने की तारीख को उपधारा (3) में उल्लिखित किसी न्यायालय के समक्ष लंबित हों, इसका निपटान निरसित अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार प्रारम्भ होने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर किया जाएगा।

(8) जहां उपधारा (3) में उल्लिखित न्यायालयों द्वारा पारित अन्तर्वर्ती आदेशों से उत्पन्न कोई अपीलें अथवा पुनरीक्षण आवेदन इस अधिनियम के प्रारम्भ होने के समय निरसित अधिनियम के अन्तर्गत उत्पन्न माध्यस्थम कार्यवाहियों के संबंध में निरसित अधिनियम के अन्तर्गत अथवा सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 का 5) के अन्तर्गत लंबित है अथवा जहां माध्यस्थम कार्यवाहियों पर रोकादेश लगाए गए हैं, उनका निपटान सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) अथवा निरसित अधिनियम के उपबंधों के अनुसार, यथास्थिति इसके प्रारम्भ होने की तारीख होने की तारीख से 6 माह की अवधि के भीतर किया जाएगा।

(9) मूल अधिनियम की धारा 85 की उपधारा (2) में अन्तर्विष्ट किसी भी असंगत बात के होते हुए भी इस धारा के उपबंधों का प्रभाव होगा।

नई अनुसूची का अन्तःस्थापन

35. मूल अधिनियम की तीसरी अनुसूची के पश्चात निम्नलिखित अनुसूची अन्तःस्थापित की जाएगी, अर्थात:-

चौथी अनुसूची

त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम

(भाग-एक, अध्याय-ग्यारह देखिए,)

त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण का गठन

1. (1) धारा 43क की उपधारा (1) के अन्तर्गत त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थमों के प्रयोजन के लिए त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण उस तारीख से गठित हुआ माना जाएगा, जिस तारीख को पक्षकारों ने एकमात्र मध्यस्थ की सहमति प्राप्त करने के पश्चात लिखित में यह स्वीकार किया हो कि धारा 43क की उपधारा (1) के अन्तर्गत एकमात्र मध्यस्थ ही त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण होगा।

(2) पक्षकार उक्त करार के विषय में एकमात्र मध्यस्थ को उसी दिन सूचित करेंगे।

त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण के गठन की तारीख से प्रक्रिया.

2. इस अनुसूची में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया, त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण के गठन की तारीख से, धारा 43क की उपधारा (1) के अन्तर्गत सभी त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थमों पर लागू होगी।

प्रक्रिया

3. (1) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण के गठन के पंद्रह दिन के भीतर वह व्यक्ति जिसने वाद उठाया है (जिसे इसमें इसके पश्चात दावेदार कहा जाएगा), अधिकरण और विरोधी पक्षकारों को (जिन्हें इसमें इसके पश्चात प्रतिवादी कहा जाएगा) निम्नलिखित चीजें एक साथ भेजेगा:–

(क) दावे का एक विवरण जिसमें तथ्य, विवाद के मुद्दे तथा दावा की गई राहत का उल्लेख किया जाएगा;

(ख) अपने मामले के समर्थन में दस्तावेजी साक्ष्य, यदि कोई हो;

(ग) जहां निर्भरता किसी साक्षी के परिसाक्ष्य पर रखी गई है (पक्षकार के परिसाक्ष्य सहित), साक्षी के लिखित हलफनामें की प्रति;

(घ) जहां निर्भरता किसी विशेषज्ञ की राय पर रखी गई है, वहां उस विशेषज्ञ से संबंधित विवरण, उसकी योग्यताएं तथा अनुभव और उसकी राय की एक प्रति;

(ङ) परिप्रश्न यदि कोई हो, की सूची;

(च) दस्तावेज, यदि कोई हो, तो उनके प्रकटीकरण या प्रस्तुतीकरण के लिए आवेदन और उनकी सुसंगति का उल्लेख;

(छ) संवाद और पत्र व्यवहार को तेज करने के प्रयोजन के लिए सभी दावेदारों और पक्षकारों के पूरे पते, ई–मेल और फैक्स के पतों और टेलीफोन नम्बर, यदि कोई हो, सहित;

(ज) कोई अन्य सामग्री जो आवेदक द्वारा संगत समझी गई हो;

(2) प्रतिवादी साठ के विवरण तथा उपधारा (1) में उल्लिखित दस्तावेजों की प्राप्ति के बाद पंद्रह दिन के भीतर, त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण तथा दावेदार को एक साथ, अपना प्रतिवाद विवरण, दस्तावेजी साक्ष्य, शपथ–पत्र सहित साक्षी का परिसाक्ष्य (पक्षकार के परिसाक्ष्य सहित) और उसके समर्थन में विशेषज्ञ की राय, यदि कोई हो, तथा प्रतिदावे, यदि कोई हों, तथा उनकी पुष्टि करने वाले दस्तावेज।

(3) इस अनुसूची में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया ऐसे सभी प्रतिदावों पर लागू होगी जैसी कि वह दावों पर लागू होती है।

(4) प्रतिवाद विवरण या प्रतिदावे की प्राप्ति के पंद्रह दिन के भीतर, दावेदार, त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण और प्रतिवादियों को अपना प्रत्युत्तर तथा प्रतिदावे का प्रतिवाद विवरण भेजेगा।

(5) प्रतिदावे के प्रतिवाद विवरण की प्राप्ति के पंद्रह दिन के भीतर, प्रतिवादी, उक्त विवरण के बारे में अपना प्रत्युत्तर त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण तथा दावेदार को साथ–साथ भेजेगा।

(6) दस्तावेजों के प्रकटीकरण या प्रस्तुतीकरण की अनुमति दे दिए जाने पर पक्षकारों को अपने अनुपूरक विवरण, यदि कोई हों, विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण और उसके साथ ही उसकी प्रतियां एक दूसरे को देने की अनुमति दी जाएगी।

(7) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण तर्कों और दस्तावेजों, साक्ष्य के शपथ–पत्रों, विशेषज्ञ की राय, यदि कोई हो, तथा पक्षकारों द्वारा दाखिल किए गए लिखित निवेदनों के आधार पर विवादों की विनिश्चय करेगा।

(8) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण किसी साक्षी से मौखिक पश्न पूछे जाने की अनुमति दे सकेगा और जिस ढंग से साक्ष्य रिकार्ड किया जाएगा या मौखिक साक्ष्य के स्थान पर शपथ पत्र प्राप्त किए जाएंगे उसका तरीका निर्धारित कर सकेगा।

(9) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण यदि यह समझता है कि किसी पक्षकार द्वारा मौखिक साक्ष्य के लिए किया गया अनुरोध औचित्यपूर्ण है या जहां त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थ अधिकरण स्वयं यह समझता है कि इस तरह का मौखिक साक्ष्य आवश्यक है तो वह अन्यथा मौखिक साक्ष्य पेश करने की अनुमति दे सकता है।

(10) इसके अतिरिक्त, त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण उसके सामने दिए गए तर्कों, दस्तावेजों और रखे गए साक्ष्य के अतिरिक्त पक्षकारों से और आगे जानकारी या स्पष्टीकरण मांग सकता है।

काउंसेल द्वारा प्रतिनिधित्व

4. त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण पक्षकारों को स्वयं उपस्थित होने या अपने वाद का संचालन स्वयं या अपने काउंसेल के माध्यम से या पक्षकारों द्वारा उनका प्रतिनिधित्व करने के लिए विधिवत प्राधिकृत किसी व्यक्ति द्वारा किए जाने की अनुमति देगा।

तर्कों की लिखित टिप्पणियां या मौखिक बहस

5. साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण, सभी पक्षकारों को अपने तर्क की लिखित टिप्पणियां दाखिल करने का निदेश दे सकेगा और उसके अतिरिक्त मौखिक तर्क की अनुमति दे सकेगा तथा उसके लिए एक समय सूची निश्चित करेगा तथा मौखिक बहस की अवधि भी समिति कर सकेगा।

कार्यवाही का संचालन

6. (1) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण अपनी कार्यवाही का ऐसे ढंग से संचालन करेगा कि माध्यस्थम कार्यवाही यथासंभव दिन प्रतिदिन और प्रत्येक अवसर पर कम से कम तीन दिन लगातार चले।

(2) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण सामान्यतः समय-सूची इस ढंग से निश्चित करेगा ताकि कार्यवाही प्रतिदिन 10.30 बजे प्रातः से 1 बजे अपराह्न तथा 2.00 बजे अपराह्न से 4.30 बजे अपराह्न तक लगातार चले।

पक्षकार प्रक्रिया तथा समय-सूची से आबद्ध होंगे

7. पैरा (3) और (5) के अन्तर्गत निश्चित समय-सूची तथा त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण द्वारा पैरा (6) के अन्तर्गत विनिर्दिष्ट प्रक्रिया पक्षकारों के लिए आबद्धकर होगी।

विशेषज्ञों का परामर्श

8. (1) माध्यस्थम के चलने की अवधि के दौरान किसी भी समय और पंचाट पारित किए जाने से पूर्व, त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण, अपने स्वविवेक से, यदि आवश्यकता पड़े तो, विवाद की विषय-वस्तु के संबंध में सहायता के लिए, पक्षकारों के खर्चे पर विशेषज्ञ या तकनीकी अर्हता प्राप्त या योग्य एकाउंटेन्ट से परामर्श कर सकेगा और उपर्युक्त व्यक्ति की रिपोर्ट पक्षकारों को भेजेगा ताकि वे अपना उत्तर दाखिल कर सकें।

(2) यदि त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण बाद में स्वयं या पक्षकारों के अनुरोध पर यह समझता है कि उपपैरा (1) में निर्दिष्ट उपर्युक्त व्यक्तियों में से किसी से स्पष्टीकरण मांगना या उसकी जांच करना या किसी अन्य व्यक्ति की जांच करना जरूरी है तो वह उक्त व्यक्ति को लिखित में स्पष्टीकरण देने के लिए कह सकेगा या उसे अथवा किसी ऐसे अन्य व्यक्तियों को आवश्यक जांच के लिए साक्षी के रूप में बुला सकेगा।

पक्षकारों द्वारा चूक के मामलों में प्रक्रिया

9. (1) यदि किसी पक्षकार की ओर से इस अनुसूची में विनिर्दिष्ट समय-सीमाओं या त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण द्वारा निश्चित समय-सीमाओं का पालन करने में चूक होती है या धारा 17 अथवा इस अनुसूची के अन्तर्गत त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण द्वारा जारी किन्हीं अन्तरिम आदेशों या निदेशों का उल्लंघन होता है तो त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण उसका अनुपालन करने के लिए और समय देते हुए चूककर्ता पक्षकार के विरूद्ध अनिवार्य आदेश पारित कर सकता है जिसमें अन्तरिम आदेश या निदेश के संबंध में समुचित प्रतिभूति उपलब्ध कराने के अनिवार्य आदेश सम्मिलित है।

(2) यदि त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण का यह समाधान हो जाता है कि माध्यस्थम का कोई पक्षकार अनुचित रूप से या जानबूझ कर माध्यस्थम की कार्यवाही में या अनिवार्य आदेशों के कार्यान्वयन में

विलम्ब कर रहा है तो त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण चूककर्ता पक्षकार पर ऐसी लागत, जो वह उचित समझे, अधिरोपित कर सकेगा या संबंधित पक्षकार के तर्कों को रद्द करते हुए या उक्त पक्षकार के विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष पर पहुंचते हुए या महत्वपूर्ण निष्कर्ष अपवर्जित करते हुए आदेश पारित कर सकेगा और यदि उपपैरा (1) में अपेक्षित रूप में माध्यस्थम की लागत के लिए प्रतिभूति नहीं दी जाती तो दावे को खारिज किया जा सकेगा।

(3) उपपैरा (2) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण, यदि दावेदार मध्यस्थम की कार्यवाही का अभियोजन प्रभावी ढंग से नहीं करता या दिए गए समय के भीतर दस्तावेज दाखिल नहीं करता या अधिकरण के अनिवार्य आदेशों का पालन करने से या त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण के आदेशानुसार देय या निक्षेपों का संदाय करने से इंकार करता है, तो दावे को खारिज कर सकता है।

परन्तु दावा विवरण या प्रतिदावे के प्रतिवाद का विवरण दाखिल न कर पाना अपने आप में, दावे के विवरण या प्रतिदावे में, यथास्थिति, किए गए अभिकथनों की स्वीकृति नहीं माना जाएगा।

(4) यदि विरोधी पक्षकार अपना प्रतिवाद दाखिल नहीं करता या अपने प्रतिवाद का अभियोजन प्रभावी ढंग से नहीं करता है या दिए गए समय के भीतर अपने दस्तावेज दाखिल नहीं करता या अधिकरण के अनिवार्य आदेशों का पालन करने से इंकार करता है तो त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण एकपक्षीय पंचाट दे सकता है।

त्वरित प्रक्रिया पंचाट छः महीने में पारित किया जाएगा

10. (1) त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण अपने गठन की तारीख से 6 महीने के भीतर या बढ़ाई गई ऐसी अवधि के भीतर जो उपपैरा (2) से (4) में विनिर्दिष्ट की गई है, पंचाट पारित कर देगा।

(2) पक्षकार, आपसी सहमति से, उपपैरा (1) में दी गई अवधि के तीन महीने से अनधिक अवधि तक आगे बढ़ा सकते हैं।

(3) यदि त्वरित प्रक्रिया मध्यस्थम पंचाट उपपैरा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि और उपपैरा (2) के अन्तर्गत पक्षकारों की सहमति से तय अवधि में नहीं दिया जाता तो माध्यस्थम कार्यवाही, उपपैरा (4) के उपबंधों के अध्यधीन उस समय तक विलम्बित रहेगी जब तक कि त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम के किसी पक्षकार द्वारा समय बढ़ाए जाने के लिए उच्च न्यायालय में आवेदन नहीं किया जाता या जहां कोई पक्षकार पूर्वोक्त प्रकार से आवेदन नहीं करता तो जब तक माध्यस्थम अधिकरण द्वारा ऐसा कोई आवेदन नहीं किया जाता।

(4) धारा 29क की उपधारा (4) से (8) के उपबंध, जहां तक हो सकेगा, उपपैरा (3) में निर्दिष्ट आवेदन के निपटारे के लिए उच्च न्यायालय पर तब तक लागू होंगे जब तक पंचाट पारित नहीं किया जाता।

त्वरित प्रक्रिया पंचाट में कारणों का उल्लेख किया जाएगा

11. त्वरित प्रक्रिया माध्यस्थम अधिकरण जब तक पक्षकारों के बीच में यह सहमति न हो गई हो कि कोई कारण दिए जाने की आवश्यकता नहीं है या पंचाट विवादों के निपटारे पर आधारित है तब तक पैरा 10 में निर्दिष्ट समय-सीमा को ध्यान में रखते हुए पंचाट पारित करेगा और उस पंचाट के कारणों का उल्लेख करेगा।

उपाबंध-III

माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 के कार्यकरण की पुनरीक्षा पर परामर्श-पत्र

माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996

अध्याय-I

1.1 1996 के अधिनियम की प्रमुख संरचना तथा उसके कार्यकरण में अनुभव की गई कतिपय खामियां-

माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996, जो 22.8.96 को प्रभावी हुआ, देशी माध्यस्थम, अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम में विधि का समेकन करने तथा संशोधन करने और विदेशी माध्यस्थम पंचाटों के प्रवर्तन और उससे जुड़े या उसके आनुषंगिक मामलों के लिए (तथा सुलह से संबंधित विधि को परिभाषित करने के लिए) एक अधिनियम है।

यह अधिनियम मॉडल विधि (जिसमें 36 अनुच्छेद है) पर आधारित है जिसका प्रारूपण संयुक्त राष्ट्र के एक कार्यकारी दल द्वारा किया गया था और जिसे संयुक्त राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विधि आयोग द्वारा 21 जून, 1985 को अन्ततः स्वीकार कर लिया गया। संयुक्त राष्ट्र आम सभा के संकल्प में यह सिफारिश की गई कि सभी देश माध्यस्थम प्रक्रियाओं में एकरूपता की वांछनीयता और अन्तराष्ट्रीय वाणिज्यिक व्यवहार की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए मॉडल विधि पर सम्यक रूप से विचार करेंगे।

जबकि मॉडल विधि सभी अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों को शासित करने हेतु प्रारूपित की गई। 1996 के अधिनियम की प्रस्तावना में कहा गया कि-

"उक्त मॉडल विधि तथा नियमों को ध्यान में रखते हुए माध्यस्थम और सुलह के बारे में विधि बनाना आवश्यक है और नए अधिनियम की धारा 85 द्वारा, माध्यस्थम अधिनियम, 1940 (देशी माध्यस्थम के बारे में) तथा माध्यस्थम (प्रोटोकोल और अभिसमय) अधिनियम, 1937 और विदेशी पंचाट (मान्यता और प्रवर्तन) अधिनियम, 1961 (अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के बारे में) निरसित कर दिए गए और इस प्रकार 1996 का अधिनियम देशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम दोनों के लिए ही समर्थ हुआ।

माध्यस्थम शीर्षक के अन्तर्गत अधिनियम का पहला भाग सामान्य है (और इसमें अध्याय-I से अध्याय-10 तक अन्तर्विष्ट है) जबकि भाग-II कतिपय विदेशी पंचाटों के प्रवर्तन के बारे में है (और इसका अध्याय-I न्यूयार्क कन्वेंशन पंचाटों तथा अध्याय-II जनेवा कन्वेंशन पंचाटों के बारे में है)

1996 के अधिनियम का भाग-तीन सुलह से संबंधित है जिससे हमारा इस पत्र में कोई संबंध नहीं है। भाग-चार पूरक उपबंधों के बारे में है।

1996 के अधिनियम में तीन अनुसूचियां हैं। पहली अनुसूची में विदेशी माध्यस्थम पंचाटों की मान्यता और प्रवर्तन का निर्देश है (देखें धारा 44), दूसरी अनुसूची माध्यस्थम खण्डों पर प्रोटोकॉल का निर्देश करती है और तीसरी अनुसूची विदेशी माध्यस्थम पंचाटों के विषादन पर अभिसमय का।

यद्यपि मॉडल विधि ने किसी संधि का रूप नहीं लिया है फिर भी जिन विधान मंडलों ने वर्ष 1985 से अपनी माध्यस्थम विधियों की पुनरीक्षा करने का निर्णय किया उन्होंने अनसिट्राल मॉडल विधि पर सम्यक रूप से विचार किया है।

कुछ देशों ने मॉडल विधि के कुछ उपबंधों को अपना तो लिया परन्तु उन्होंने यह निर्णय भी किया कि वे मॉडल विधि का विस्तार करेंगे और इसे सरल या उदार बनाएंगे। 1986 में नीदरलैण्ड और 1987 में स्विटजरलैण्ड से इसका उदाहरण दिया जा सकता है। उनकी विधि व्यवस्था बहुत ही स्पष्ट होने के कारण इटली और इंग्लैण्ड ने मॉडल विधि का अनुसरण न करने का निर्णय किया। 31 मार्च, 1999 तक 29

आयरलैण्ड, कीनिया, लिथुनिया, माल्टा, मैक्सिको, न्यूजीलैण्ड, नाईजीरिया, ओमान, पेरु, रूस संघ, स्काटलैण्ड, स्वीडन, श्रीलंका, ट्यूनीशिया, यूक्रेन, जिम्बाब्वे, होगकांग तथा आठ अमेरिकी राज्य, तथा कनाडा के सभी 12 प्रान्त और राज्य क्षेत्र सहित) किसी सीमा तक अनसिट्राल मॉडल पर आधारित विधि को अपनाया (नवीनतम स्थिति के लिए देखें वैबसाइट: एमटीपी/डब्ल्यू. डब्ल्यू. डब्ल्यू. या एट/अनसिट्राल) (फारहाई, गैलार्ड गोल्डमैन द्वारा रचित इन्टरनेशनल कॉमर्शियल आर्बिट्रेशन, 1999, पृष्ठ 109 पैरा 2.5)

समन्वय की इस क्रमिक प्रक्रिया का महत्व यह है कि मॉडल विधि अपनाने और इसे लागू करने वाले सभी देशों के निर्णय वर्ष 1992 से प्रकाशित किए गए हैं। इस प्रकार मॉडल विधि की निर्णय जनित विधि से संबंधित व्याख्या के लिए एक निकाय विकसित होता रहा है (देखें क्लाउट, वैबसाइट पर उपलब्ध) एएमटीपी/डब्ल्यू. डब्ल्यू. यू आर. या एट/अनसिट्राल और क्लाउट वाई.बी.कॉम आर्ब 297-3(1997)(वही पृष्ठ 109 पैरा 2.5)

1.2 अधिनियम में संशोधन के लिए अभ्यावेदन

22.8.96 को 1996 के अधिनियम के प्रभावी होने के समय से ही 1996 के अधिनियम के माध्यस्थम से संबंधित उपबंधों में संशोधन की मांग की जाती रही है। विधि आयोग ने 1998 में यह विचार किया था कि 1996 के अधिनियम में जल्दबाजी में संशोधन करना उचित नहीं होगा और प्रतीक्षा करना और यह देखना वांछनीय होगा कि न्यायालय उत्पन्न होने वाली स्थिति से किस प्रकार निपटते हैं।

अभी हाल ही में आयोग को ऐसे अभ्यावेदन प्राप्त हुए हैं जिनमें कहा गया है कि कतिपय क्षेत्रों में न्यायालय के सामने अधिनियम के कतिपय उपबंधों की व्याख्या करने तथा उन्हें क्रियान्वित करने के मामले में बहुत कठिनाई आई है। यह कहा गया है कि बहुत से मामलों में पक्षकार अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम करारों में कार्यवाहियों के लम्बित रहने, जहां माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर था, तुरन्त अंतरिम राहत प्राप्त करने से वंचित रह गए हैं। यह कहा गया है कि इसके परिणामस्वरूप भारतीय पक्षकार अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम आरम्भ होने से पूर्व या कार्यवाहियों के दौरान अथवा समाप्ति पर, भारतीय न्यायालयों से कोई अंतरिम आदेश प्राप्त नहीं कर सके। बहुत से मामलों में दिवस के अन्त में पंचाट अन्ततः कागजों में ही रह गए। इसके कारण उच्च न्यायालयों द्वारा परस्पर विरोधी निर्णय भी दिए गए। इसी प्रकार अधिकारिता संबंधी प्रश्नों का निर्णय किस स्तर पर किया जाए, इस विषय में भी बहुत अधिक मतभेद रहे हैं और यह भी कि, यथास्थिति, भारत के मुख्य न्यायाधीश या उसके द्वारा नामनिर्दिशिती या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या उसके द्वारा नामनिर्दिशिती द्वारा मध्यस्थों की नियुक्ति के आदेशों को प्रशासनिक आदेश माना जाए या न्यायिक। यह भी बताया गया है कि जहां मध्यस्थ अंतरिम निर्णय द्वारा अधिकारिता संबंधी आपत्तियों को या पक्षपात के तर्क को अस्वीकार कर देता है वहां तत्काल अपील करने के लिए कोई प्रावधान नहीं है और पक्षकारों को माध्यस्थम प्रक्रिया के साथ साथ चलना होता है जब तक कि पंचाट घोषित नहीं किया जाता। इसके पश्चात भी, धारा 34 और धारा 37(2) में विनिर्दिष्ट आधारों की सूची में पक्षपात या एक तरफा झुकाव को सम्मिलित नहीं किया गया है। यह भी कहा गया है कि जबकि ऐसे मामले में अपील की अनुमति दे दी जाती है जहां पंचाट अवधारित विवाद से परे है या मामला दायर करने की शर्तों के अधीन नहीं आता है या माध्यस्थम के क्षेत्र के परे का मामला है वहां पक्षकारों के तर्कों से निश्चित रूप से उत्पन्न होने वाले मामलों पर निर्णय देने के लिए धारा 33(4) के अधीन आवेदन किए जाने पर भी मध्यस्थ के इंकार कर देने पर किसी अपील के लिए प्रावधान नहीं है। विभिन्न अभ्यावेदनों में और भी बहुत सी खामियां बताई गई हैं। आयोग ने महसूस किया है कि बार, वाद पक्षों तथा अन्य माध्यस्थम संस्थाओं ने और भी बहुत सी कठिनाईयां अनुभव की होंगी और वे उपयुक्त संशोधन के सुअवसर की प्रतीक्षा में होंगे।

उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, आयोग ने महसूस किया है कि अब, विधान के अधिनियम के पांच वर्ष पश्चात, सभी संबंधित पक्षों के विचार प्राप्त करके अधिनियम के कार्यकरण की समीक्षा करना और आवश्यक संशोधनों के प्रस्ताव करना उपयुक्त होगा।

1.3 1996 के अधिनियम के उद्देश्य:-शीघ्र माध्यस्थम तथा न्यायालय का न्यूनतम मध्यक्षेप

1996 का अधिनियम सुधार के लिए, विशेषकर माध्यस्थम प्रक्रिया में तीव्रता लाने और न्यायालयों के मध्यक्षेप को कम करने के लिए की गई सिफारिशों के परिणामस्वरूप अस्तित्व में आया था। गुरु नानक फाउंडेशन बनाम रतन सिंह (ए.आई.आर 1981 सु.को. 2075) (2076-2077 पर) मामले में 1940 के

अधिनियम का निदेश करते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि ''अधिनियम के अधीन प्रत्येक स्तर पर अनन्त विस्तार और असावधान व्यक्तियों को विधिक जाल में फंसाने के विचार से, जिस प्रकार से कार्यवाहियां चलाई जाती हैं और बिना किसी अपवाद के न्यायालय में उन्हें चुनौती दी जाती है वह अधिवक्ताओं के लिए उपहासपद और विधिनेताओं के लिए चिन्ता का विषय है।'' लोकसभा की लोक लेखा समिति ने भी भारत में माध्यस्थम के बारे में प्रतिकूल टिप्पणी की है। (नवीं रिपोर्ट 1977-78, पृष्ठ 201-202)। यह मामला 76वीं रिपोर्ट में विधि आयोग के सामने भी आया। आयोग ने कतिपय संशोधनों की सिफारिश की अर्थात 1940 के अधिनियम की धारा 28 में एक परन्तुक जोड़ा जाना चाहिए जिसमें अभिलिखित किए जाने वाले विशेष तथ्य पर्याप्त कारणों को छोड़कर, पंचाट देने के लिए एक वर्ष से अधिक समय न बढ़ाने का प्रावधान हो।

फूड कारपोरेशन ऑफ इण्डिया बनाम जोगिन्दर पाल (ए.आई.आर. 1981 सु.को. 2075) (2076-2077 पर) मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि ''माध्यस्थम विधि, सरल, कम तकनीकी, स्थिति की सही वास्तविकता के प्रति अधिक उत्तरदायी,'' न्याय तथा न्यायपूर्ण व्यवहार के प्रति उत्तरदायी हो''।

1996 के अधिनियम के अध्ययन से पता चलता है कि तीव्र गति से माध्यस्थम और न्यायालय का न्यूनतम मध्यक्षेप इसके प्रमुख उद्देश्य हैं। वास्तव में अधिनियम की धारा 5 में कहा गया है:

> ''धारा 5- इस भाग द्वारा शासित मामलों में, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के अन्तर्विष्ट होते हुए भी, कोई भी न्यायिक प्राधिकरण मध्यक्षेप नहीं करेगा सिवाय उसके जहां इस भाग में ऐसा प्रावधान किया गया हो।''

यह मूल प्रावधान उन सभी देशों की विधियों में पाया जाता है जिन्होंने अनसिट्राल मॉडल को स्वीकार कर लिया है। धारा 4, 12, 13(4), 16(5), 19(1) और 25 में अन्तर्विष्ट आपत्तियों को छोड़ देने संबंधी उपबंध पर्याप्त रूप से यह दर्शाते हैं कि उद्देश्य यह देखना है कि विवादों का समाधान अनावश्यक रूप से दीर्घकालिक न हो जाए। वास्तव में अनसिट्राल मॉडल में, जहां पंचाट पारित होने से पूर्व अपील के रूप में न्यायालय के मध्यक्षेप की अनुमति दी गई है, मामले में कार्यवाही को आगे चलाना या न चलाना मध्यस्थ पर छोड़ दिया गया है। ऐसा इस उद्देश्य से किया गया कि अपीलों की कार्यवाहियों में अनुचित रूप से विलम्ब न हो सके।

1.4 तीव्र गति से निपटान और न्यायालय के न्यूनतम मध्यक्षेप जैसे उद्देश्यों की प्राप्ति पर दृढ़ रहने की आवश्यकता।

अतः यह बात मस्तिष्क में रखना आवश्यक है कि प्रस्तावित संशोधनों के परिणामस्वरूप पक्षकारों को माध्यस्थम कार्यवाहियों को अनावश्यक रूप से लम्बा खींचने की अनुमति प्राप्त न हो जाए। संशोधनों की आवश्यकता पर विचार करते समय आयोग इस उद्देश्य से परे नहीं गया है। सिवाय इस सीमा के जहां तक कि स्वयं अनसिट्राल मॉडल में मध्यक्षेप की अनुमति दी गई है, जैसे कि जहां माध्यस्थम कार्यवाही को जड़ों तक जाने वाले मामलों का निर्णय किया जाता है। ऐसे अपवाद स्वरूप मामलों के बारे में आयोग ने उस पद्धति को ध्यान में रखा है जो ऐसे दूसरे देशों की जिन्होंने अनसिट्राल मॉडल पूर्णरूप से या आंशिक रूप से अपनाया है, नई विधियों में अपनाई गई है और जिस पद्धति से न्यायालय के न्यूनतम मध्यक्षेप और प्रारंभिक प्रश्न के जो माध्यस्थम प्रक्रिया की जड़ों तक जाते हैं, न्यायालयों में अपीलों के द्वारा, अन्तिम निर्णय के बीच संतुलन बनाए रखा है।

अध्याय-दो

2. प्रस्ताव-जिनके विषय में विचार आमंत्रित किए गए हैं

2.1 क्या 1996 के अधिनियम की धारा 5 में किसी संशोधन की आवश्यकता है?

यह कहा गया है कि अधिनियम की धारा 5, जो माध्यस्थम के लम्बित रहने के दौरान न्यायालय के मध्यक्षेप को रोकती है, के शुरुआत का आरम्भिक भाग ''तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के अन्तर्विष्ट होते हुए भी'' मॉडल विधि में अन्तर्विष्ट नहीं है। इस अध्याय-एक के पैरा 1.3 में धारा 5 को पहले ही उद्धृत कर चुके हैं।

मॉडल विधि के अनुच्छेद-5 का पाठ इस प्रकार है:

> ''अनुच्छेद-5 इस विधि द्वारा शासित मामलों में कोई न्यायालय मध्यक्षेप नहीं करेगा सिवाय उसके जहां विधि में इस आशय का प्रावधान किया गया है।''

हमने पाया है कि बहुत से देशों की माध्यस्थम विधियां मॉडल विधि के अनुच्छेद 5 के समान ही हैं और उनमें ''तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के अन्तर्विष्ट होते हुए भी'' शब्द नहीं दिए गए हैं। उदाहरण के लिए देखें-कनाडा के अधिनियम, 1986 का अनुच्छेद 5, जर्मन अधिनियम, 1998 की धारा 5, कोरियाई अधिनियम, 1999 का अनुच्छेद 6, आइरिश अधिनियम, 1998 का अनुच्छेद 5 और जिम्बाब्वे अधिनियम, 1996 का अनुच्छेद 5 आदि।

जहां यह सच है कि 1996 के अधिनियम की धारा 5 में अध्यारोही संभवतया ''सिवाय उसके जहां विधि में इस आशय का प्रावधान किया गया है'' शब्दों से वही परिणाम प्राप्त हो जाता है।

भारतीय अधिनियम की धारा 5 में अध्यारोही खण्ड का उद्देश्य पर्याप्त सावधानी रखना प्रतीत होता है और धारा 5 में इन शब्दों को जोड़ने से कोई और अन्तर पड़ता प्रतीत नहीं होता है।

2.2 क्या ''न्यायिक प्राधिकरण'' शब्दों का लोप करके धारा 8 न्यायालयों तक ही सीमित रहनी चाहिए, और वादों तथा अन्य कार्यवाहियों में, जहां प्रतिवादी/प्रत्यर्थी माध्यस्थम करार पर निर्भर करते हैं, धारा 8 के अधीन उठने वाले अधिकारिता संबंधी प्रश्न

2.2.1 1996 के अधिनियम की धारा 8 का पाठ निम्नलिखित है:–

''धारा 8 (1) कोई न्यायिक प्राधिकारी जिसके समक्ष कोई कार्यवाही ऐसे मामले की संस्थित की जाती है जो माध्यस्थम करार का एक विषय है, यदि कोई पक्षकार उसके बाद वैसा आवेदन नहीं करता है जब वह विवाद के सार पर अपना प्रथम कथन को प्रस्तुत करता है, तो वह पक्षकारों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित कर सकता है;

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट आवेदन को तब तक ग्रहण नहीं किया जाएगा जब तक कि उसके साथ मूल माध्यस्थम करार या उसकी सम्यक रूप से प्रमाणित न हो।

(3) इस बात के होते हुए भी उपधारा (1) के अधीन कोई आवेदन प्रस्तुत किया गया है और यह कि विवाद न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष लम्बित है, माध्यस्थम प्रारम्भ किया जा सकता है और माध्यस्थम पंचाट दिया जा सकता है।''

अधिनियम की धारा 8(1) में ''न्यायिक प्राधिकरण'' शब्द का प्रयोग किया गया है। स्काइपैक कोरियर्स लिमिटेड बनाम एन.के. मोदी [2000] (5) एस.सी.सी. 294:2000(3) आर्बि.लॉ. रिपोर्टर 160 मामले में उच्च न्यायालय ने प्रश्न का अन्तिम रूप से निर्णय किए बिना ही यह उपधारणा की कि उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अधीन गठित किया गया उपभोक्ता फोरम विवादों को माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट करने में सक्षम है। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि इस पर भी, उपभोक्ता फोरम तीसरे पक्ष के या विशेषज्ञों के विवाद निर्णय के लिए माध्यस्थम को निर्दिष्ट नहीं कर सकेगा, निर्णय दे सकेगा और ऐसे निर्णय, डिक्री आदि के आदेश और न ही फोरम आपत्ति दायर करने के अधिकार की अवहेलना कर सकता है।

पहले मैसर्स फेयर इंजीनियर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम एन.के. मोदी, ए.आई.आर. 1997 सु.को. 533 मामले में उच्चतम न्यायालय ने 1940 के अधिनियम की धारा 34 के बारे में और इस प्रश्न कि क्या उक्त धाराएं '' न्यायिक प्राधिकरण'' शब्द इस तर्क को स्वीकार करते हैं कि विवाद का विषय माध्यस्थम करार के अन्तर्गत आता है।

यदि धारा 8 में ''न्यायिक'' प्राधिकरण शब्दों के अन्तर्गत उपभोक्ता फोरम या ऋण वसूली अधिकरण, जो बैंकों द्वारा दिए गए बकाया ऋणों के बारे में कार्यवाही करते हैं, या अन्य अर्ध-न्यायिक अधिकरण भी आते हैं और यदि वे यह निर्णय करते हैं कि विवादों को माध्यस्थम के लिए निर्दिष्ट किया जाएगा (जैसाकि निम्नलिखित प्रस्तावित किया गया है कि वे इस आशय के विवादों पर निर्णय कर सकते हैं कि क्या माध्यस्थम करार अकृत और शून्य, अप्रवर्तनीय या प्रवर्तन के योग्य नहीं है) तब वास्तव में यह निर्णय करना आवश्यक हो जाएगा कि कौन सा प्राधिकरण यह निर्णय करेगा कि दिया गया निर्णय सही है अथवा नहीं अथवा क्या पक्षकारों को भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 का सहारा लेना चाहिए या इस अधिनियम में अपील का प्रावधान किया जाना चाहिए। ऐसी संभावना है कि यदि ''न्यायिक प्राधिकरण'' शब्द में अर्ध-न्यायिक अधिकरण भी सम्मिलित होंगे तो बहुत सी अन्य समस्याएं पैदा हो जाएंगी। अतः यह विचार किया गया है कि ''न्यायिक प्राधिकरण'' शब्द

के स्थान पर ''न्यायालय'' शब्द प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए जैसाकि मॉडल विधि में है और धारा 8 के नीचे एक स्पष्टीकरण दिया जाना चाहिए कि इस धारा में ''न्यायालय'' शब्द से वह न्यायालय अभिप्रेत होगा जहां वाद संस्थित किया गया है।

यह भी देखना होगा कि क्योंकि भारतीय अधिनियम की धारा (3) में ''सकता है'' शब्द का प्रयोग किया गया जो माध्यस्थम कार्यवाहियों को चलाने का अधिकार देता है, मध्यस्थ कार्यवाही जारी रखने या सिविल न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा करने के लिए स्वतंत्र होंगे। यदि भारतीय अधिनियम की धारा 8 (1) में ''जब तक कि यह नहीं पाया जाता है कि करार अकृत और शून्य, अप्रवर्तनीय और निष्पादन योग्य नहीं है'' शब्द अन्तःस्थापित कर दिए जाते हैं तब मध्यस्थ माध्यस्थम कार्यवाही जारी रख सकते हैं या इस प्रश्न पर निर्णय आने तक कि क्या माध्यस्थम करार ''अकृत और शून्य'' है या अप्रवर्तनीय या प्रवर्तन के योग्य नहीं है'', माध्यस्थम कार्यवाही स्थगित रख सकते हैं।

जहां वाद मूलतः उच्च न्यायालय में संस्थित किए जाते हैं, सामान्यतया उच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश ही इस प्रश्न का निर्णय कर सकेगा कि क्या माध्यस्थम करार अकृत और शून्य आदि है। परन्तु इसके परिणामस्वरूप खंड पीठ में अपील की जा सकती है इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष अनुमति याचिका दायर की जा सकती है। अतः यह बेहतर होगा कि यदि जब धारा 8 के अधीन मूलतः उच्च न्यायालय में ऐसे मामले संस्थित किए जाएं वे देशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम क्षेत्रों ही मामलों में उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा निर्णित किए जाएं।

जहां वाद उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय में संस्थित किए जाते हैं वहां ऐसे मामले, कि क्या माध्यस्थम करार ''अकृत और शून्य आदि है'', पहले उसी न्यायालय द्वारा निर्णित हों और उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा निर्णय किए जाने के लिए उच्च न्यायालय में एक अपील दायर की जाए।

2.2.2 अगला प्रश्न यह है कि क्या 1966 के अधिनियम की धारा 8(1) में ''जब तक कि यह न पाया जाए कि करार ''अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय तथा निष्पादन के योग्य नहीं है'' शब्द अन्तर्विष्ट होने चाहिए।

मॉडल विधि के अनुच्छेद 8(1) का पाठ निम्नलिखित है:-

''अनुच्छेद 8(1) कोई न्यायालय जिसके समक्ष कार्यवाही के लिए कोई ऐसा मामला लाया जाता है जो माध्यस्थम करार का विषय है, यदि पक्षकार अनुरोध करता है, तो विवाद के सार पर अपने प्रथम कथन प्रस्तुत करने के पश्चात नहीं हो सकेगा, तो वह न्यायालय पक्षकारों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित कर सकेगा जब तक कि वह यह नहीं पाता कि करार अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय है या निष्पादन के योग्य नहीं है।

(2) जहां इस अनुच्छेद के पैरा (1) में निर्दिष्ट कोई कार्यवाही लाई जाती है तो, न्यायालय के समक्ष मामला लम्बित रहते हुए भी, माध्यस्थम कार्यवाही आरम्भ की जा सकेगी, जारी रह सकेगी और पंचाट दिया जा सकेगा

ये शब्द ''जब तक कि वह यह नहीं पाता कि करार अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय है या निष्पादन के योग्य नहीं है'' केवल मॉडल विधि के अनुच्छेद 8(1) में पाए जाते हैं अपितु उन विभिन्न देशों की माध्यस्थम विधियों के अनुच्छेदों में भी पाए जाते हैं जिन्होंने मॉडल विधि स्वीकार कर ली है। इस संबंध में देखें जर्मन अधिनियम, 1998 की धारा 1032, कोरियाई अधिनियम, 1999 का अनुच्छेद 9, कनाडा अधिनियम, 1996 अनुच्छेद 8, ब्रिटिश कोलम्बिया अधिनियम, 1996 की धारा 15, जिस पर कि भारतीय अधिनियम, 1996 आधारित बताया जाता है। (देखें, अधिनियम पर डा॰ एम॰सी॰ राव की टिप्पणी पृष्ठ 9)

इसके अतिरिक्त, लगभग सभी विधियों में इस प्रश्न पर कि क्या माध्यस्थम करार अकृत और शून्य है या अप्रवर्तनीय या निष्पादन योग्य नहीं है , न्यायालय के निर्णय के लम्बित रहते हुए सिविल न्यायालय में कार्यवाही के व्यादेश के लिए कोई उपबंध नहीं है। तथापि, इंग्लिश माध्यस्थम अधिनियम, 1996 में पुराने भारतीय अधिनियम, 1940 की धारा 34 के समान उपबंध किया गया है। इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 9 का पाठ निम्नलिखित है:-

''धारा 9: (1) माध्यस्थम करार का कोई पक्षकार जिसके विरुद्ध ऐसे मामले में विधिक कार्यवाही की जाती है (दावे या प्रतिदावे के रूप में) जो करार के अधीन माध्यस्थम के लिए निर्देशित किया जाएगा (कार्यवाही के दूसरे पक्ष को नोटिस देकर) उस न्यायालय में मामले से संबंधित कार्यवाहियों के व्यादेश के लिए आवेदन कर सकेगा जिसमें कि कार्यवाही संस्थित की गई थी।

(2) इस बात के होते हुए भी कि मामला अन्य विवाद समाधान कार्यवाहियां पूरी हो जाने के पश्चात ही माध्यस्थम के लिए निर्देशित किया जाएगा, आवेदन किया जा सकेगा।

(3) अपने विरुद्ध विधिक कार्यवाही की स्वीकृति के लिए उपर्युक्त प्रक्रिया व्यादेश (यदि कोई हो) लेने से पूर्व या सारभूत दावे का उत्तर देने के लिए उन कार्यवाहियों में उसके कोई कदम उठाने के पश्चात किसी व्यक्ति द्वारा कोई आवेदन नहीं किया जाएगा।

(4) इस धारा के अधीन आवेदन किए जाने पर न्यायालय, जब तक इस बात से संतुष्ट नहीं हो जाता कि माध्यस्थम करार अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय है या निष्पादन के योग्य नहीं है, व्यादेश स्वीकृत कर सकेगा।

(5) यदि न्यायालय विधिक कार्यवाहियों के लिए व्यादेश स्वीकार करने से इंकार कर देता है तो इस आशय का कोई उपबंध कि वह किसी मामले में विधिक कार्यवाही लाने के लिए पुरोभाव्य शर्त है उन कार्यवाहियों के बारे में किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं रखेगा।''

इंग्लिश अधिनियम की उपर्युक्त धारा 9 अन्तर्राष्ट्रीय तथा देशी दोनों प्रकार के माध्यस्थमों के लिए लागू होती है। तथापि, हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि ब्रिटेन के अधिनियम का भाग-दो जो देशी माध्यस्थम पर लागू होने वाले भाग-एक के उपबंधों में कतिपय संशोधनों का प्रावधान करता है अभी तक प्रभावी नहीं बनाया गया है। इस पर भी, हम भाग-दो में धारा 86 का निर्देश कर सकते हैं जिसका पाठ निम्नलिखित है:-

''धारा 86 (1) धारा 9 में (विधिक कार्यवाहियों के लिए आदेश) उपधारा (4) (व्यादेश जब तक कि माध्यस्थम करार अकृत और शून्य, अप्रवर्तनीय या निष्पादन के योग्य नहीं है) देशी माध्यस्थम करार के लिए लागू नहीं होगी।

(2) देशी माध्यस्थम करार के संबंध में धारा के अधीन दिए गए किसी आवेदन पर न्यायालय व्यादेश स्वीकार कर सकेगा जब तक कि निम्नलिखित के बारे में संतुष्ट न हो-

(क) कि माध्यस्थम करार अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय है या निष्पादन के योग्य नहीं है; या

(ख) कि ऐसे पर्याप्त आधार हैं जिनके अधीन पक्षकारों को माध्यस्थम करार का पालन करना आवश्यक नहीं है।

(3) न्यायालय उपधारा 2(ख) के अधीन इस तथ्य को पर्याप्त आधार मान सकेगा कि आवेदक किसी उपयुक्त समय पर माध्यस्थम कार्यवाही चलाने, माध्यस्थम के जाने से पूर्व या अन्य विवाद समाधान प्रक्रियाओं के पूरा करने के लिए न तो तत्पर था इच्छुक है।

(4) इस धारा के प्रयोजनों से यह प्रश्न कि क्या कोई माध्यस्थम करार देशी माध्यस्थम करार है अथवा नहीं विधिक कार्यवाहियों के आरंभ होने के समय तथ्यों का निर्देश करते हुए निश्चित किया जाएगा।'

भारतीय अधिनियम की धारा 8 तथा मॉडल विधि के अनुच्छेद 8 तथा ब्रिटेन अधिनियम, 1996 की धारा 9 और 86 के उपर्युक्त प्रावधानों की दृष्टि से निम्नलिखित प्रश्न विचारार्थ पैदा होते हैं:--

(क) उच्चतम न्यायालय ने पी. आनन्दगजपति राजू बनाम पी.वी.जी. राजू 2000(4) एस.सी.सी 539--ए.आई.आर. 2000 सु.को. 1886 मामले में यह निर्णय दिया है कि 1996 के अधिनियम की धारा 8(1) के अधीन यदि किसी वाद में प्रतिवाद माध्यस्थम करार होने का तर्क देता है तो सिविल न्यायालय के लिए पक्षकारों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित करना आज्ञापक होगा क्योंकि पुराने 1940 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन न्यायालय में वैवेकिक शक्तियां निहित है जो 1996 के अधीन विद्यमान नहीं हैं यह ठीक है कि इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया कि धारा 8 में अन्तर्विष्ट ''माध्यस्थम करार' शब्दों से वैध तथा प्रवर्तनीय करार अभिप्रेत है अथवा नहीं।

जहां तक 1996 के इंग्लिश अधिनियम का संबंध है, धारा 8 में देशी माध्यस्थम के लिए वैवेकिक शक्तियां रखी गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 9 में न्यायालय में अन्यथा ऐसा कोई वैवेकिक शक्ति निहित नहीं है।

पहला प्रश्न इसलिए, यह उठता है कि क्या न्यायालय की वैवेकिक शक्तियां, जो पुराने 1940 के अधिनियम की धारा 34 के अधीन उपलब्ध थी केवल देशी माध्यस्थमों के लिए है, जैसाकि इंग्लैण्ड में है, प्रत्यावर्तित की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, देशी माध्यस्थम में न्यायालय प्रतिवादी द्वारा रखे गए माध्यस्थम खंड पर आधारित तक को स्वीकार नहीं करेगा यदि वह पहले माध्यस्थम के लिए या धोखाधड़ी का मामला उठने पर या तथ्यों से गंभीर प्रश्नों के पैदा होने आदि पर, तैयार नहीं था। तथापि, जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम का संबंध है, उन सभी देशों में, जिन्होंने मॉडल विधि को स्वीकार किया है, न्यायालय के लिए विवादों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित करना आज्ञापक बनाया गया है, यदि प्रतिवादी माध्यस्थम करार के आधार पर, जो अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय है या निष्पादन के योग्य नहीं है। हम भी अन्तर्राष्ट्रीय करारों के लिए इस आज्ञापक उपबंध को रख सकते हैं।

(ख) दूसरा प्रश्न यह है कि क्या इस प्रश्न की जांच करने के लिए कि माध्यस्थम अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय है या निष्पादन के योग्य नहीं है, भारतीय अधिनियम की धारा 8(1) के अधीन शक्ति नहीं दी गई है। जब मॉडल विधि के अधीन न्यायालय को ऐसी शक्ति दी जाती है और जब मॉडल विधि अपनाने वाले सभी देशों की माध्यस्थम विधियों में भी ऐसी शक्ति उपलब्ध होती है तब भारत में न्यायिक प्राधिकरणों को ऐसी शक्ति से वंचित रखने का कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता है।

(ग) यह भी देखा जाएगा कि क्योंकि भारतीय अधिनियम की धारा 8(3) में "सकता है" शब्द का प्रयोग किया गया है जो माध्यस्थम कार्यवाही को जारी रखने में समर्थ बनाता है, मध्यस्थों के लिए यह स्वतंत्रता रहेगी कि वे कार्यवाही जारी भी रख सकते हैं या सिविल न्यायालय के निर्णय की प्रतीक्षा भी कर सकते हैं। यदि धारा 8(1) में "जब तक यह नहीं पाया जाता कि करार अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय है या निष्पादन के योग्य नहीं है" शब्दों को अन्तःस्थापित कर दिया जाता है तो मध्यस्थ माध्यस्थम कार्यवाही आगे बढ़ाने या इस प्रश्न पर कि क्या करार अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय है या निष्पादन के योग्य नहीं है, सिविल न्यायालय का निर्णय आने तक माध्यस्थम कार्यवाही न चलाने के लिए स्वतंत्र होंगे।

(घ) ऐसे मामलों में जहां वाद मूलतः उच्च न्यायालय में दायर किए जाते हैं, सामान्यतया उच्च न्यायालय का एक ही न्यायाधीश इस प्रश्न का निर्णय कर सकता है कि क्या करार अकृत और शून्य है, आदि। परन्तु इसका परिणाम यह होगा कि खंड पीठ में अपील की जा सकेगी और इसके अतिरिक्त भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन एक विशेष अनुमति याचिका भी प्रस्तुत की जा सकेगी। अतः यह उपयुक्त होगा कि यदि धारा 8 के अधीन मूलतः उच्च न्यायालय में ऐसे मामले उठते हैं तो वे देशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के माध्यस्थमों में उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा निर्णित होंगे।

(ङ) जहां वाद उच्च न्यायालय के अधीनस्थ न्यायालय में दायर किए जाते हैं तो ऐसे प्रश्न कि क्या माध्यस्थम करार अकृत और शून्य है आदि जैसे प्रश्नों को पहले उसी न्यायालय द्वारा निर्णित किए जाने की अनुमति दी जा सकती है और तत्पश्चात् अपील उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा निर्णय के लिए भेजी जा सकेगी।"

2.3 1996 के अधिनियम की धारा 11 के अधीन दायर किए गए आवेदनों में उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय के समक्ष उठने वाले अधिकारिता संबंधी प्रश्न–क्या भारत का मुख्य न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश या उनके नामनिर्देशिती प्रशासनिक क्षमता में या न्यायिक क्षमता में कार्य करते हैं और क्या अधिकारिता संबंधी प्रश्न को उसी स्तर पर निर्णय किए जाने की अनुमति होनी चाहिए या इस प्रश्न का निर्णय मध्यस्थों के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए?

1996 के अधिनियम की धारा 11, 1940 के अधिनियम की धारा 8 के समरूप है। उस धारा के अधीन, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि माध्यस्थम खण्ड विद्यमान नहीं है तो न्यायालय को मध्यस्थ की नियुक्ति को अस्वीकृत करना होता है (एस. दयानन्द रेड्डी बनाम आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय 1993(3) एस.सी.सी. 137) या यदि यह स्वीकार किया गया मामला हो जहां प्रश्न पर किसी अधिकारी या वास्तुविद का मत अन्तिम हो (भारत भूशाल बंसल बनाम यू.पी.–एस.आई.सी. लिमिटेड, 1999(2) एस.सी.सी.)

या कोई विवाद ही विद्यमान न हो (मेजर (सेवानिवृत्त) इन्दिरा सिंह रेखी बनाम डी.डी.ए., ए.आई.आर. 1088 सु. को. 1007) 1940 के अधिनियम की धारा 20 के अन्तर्गत भी यही स्थिति है। प्रश्न यह है कि क्या धारा 11 के अधीन न्यायालय या न्यायाधीश प्रश्न पर केवल इसलिए निर्णय नहीं कर सकते क्योंकि धारा 16 के अधीन मध्यस्थों को भी इन विवादों पर निर्णय करने की शक्ति दी गई है। प्रश्न यह है कि क्या धारा 16 का आशय ऐसी स्थिति पर लागू होने से है जहां एक पक्षकार ने या दोनों पक्षकारों ने स्वयं ही मामले को माध्यस्थम के लिए निर्देशित किया हो।

1996 के अधिनियम की धारा 11 में भारत के मुख्य न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या उनके नामनिर्देशितियों से यह अपेक्षा की गई है कि वे ऐसी परिस्थितियों में जहां पक्षकार ऐसी नियुक्ति से सहमत नहीं हो पाते हों वे मध्यस्थों की नियुक्ति के लिए धारा 11 के अधीन दिए गए आवेदनों पर कार्यवाही करें। तथापि, मॉडल विधि के अनुच्छेद 11(4) में मध्यस्थों की नियुक्ति की अवधारणा, "न्यायालय या अनुच्छेद 6 में विनिर्दिष्ट प्राधिकरण" द्वारा की गई है। मॉडल विधि के अनुच्छेद 6 का पाठ निम्नलिखित है:-

> "अनुच्छेद 6-अनुच्छेद 11(3), 11(4), 13(3), 14, 16(3) और 34(2) में निर्देशित कृत्य (इस मॉडल विधि को अधिनियमित करने वाले प्रत्येक राज्य द्वारा विनिर्दिष्ट न्यायालय, न्यायालयों या जहां के लिए निर्देशित किए गए हों, इन कृत्यों को निष्पादित करने के लिए सक्षम प्राधिकरण द्वारा निष्पादित किए जाएंगे")

भारत के उच्च न्यायालय की तीन सदस्यीय खंड पीठ ने कोंकण रेलवे मामला-I (2000(7) एस.सी. सी. 201) मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि 11 के अधीन आदेश प्रशासनिक आदेश है और यह कि भारत का मुख्य न्यायाधीश या उच्च न्यायालय का मुख्य-न्यायाधीश या उनके नामनिर्देशिती अधिकारिता संबंधी प्रश्न का निर्णय उस स्तर पर नहीं कर सकें क्योंकि (1) धारा 16 में अधिकारिता संबंधी प्रश्नों का निर्णय करने की शक्ति मध्यस्थ को दी गई है, और (2) मॉडल विधि में माध्यस्थम कार्यवाहियों को शीघ्र पूरा करने की अपेक्षा की गई है अत: इन अधिकारिता संबंधी प्रश्नों पर निर्णय केवल मध्यस्थों द्वारा ही किया जाना चाहिए।

लगभग उन सभी देशों ने, जिन्होंने मॉडल विधि को स्वीकार किया है, भारतीय अधिनियम, 1996 की धारा 11 के समरूपी उपबंध में उल्लेख किया है कि मध्यस्थों की नियुक्ति की शक्ति का प्रयोग "न्यायालयों" द्वारा किया जाएगा इस संबंध में देखें कनाडा अधिनियम, 1985 का अनुच्छेद 11, कोरियायी अधिनियम, 1999 का अनुच्छेद 11, स्वीडिश अधिनियम, 1999 की धारा 14 (जिसमें जिला न्यायालय निर्देशित किया गया है), न्यूजीलैण्ड अधिनियम, 1966 की अनुसूची-एक में अनुच्छेद-I आदि।

नए अधिनियम पर डा. पी.सी. राव की टिप्पणी के अनुसार (देखें पृष्ठ 9) भारतीय अधिनियम, ब्रिटिश कोलम्बिया अधिनियम, 1996 पर आधारित है उक्त अधिनियम में भी, जहां तक मध्यस्थों की नियुक्ति की शक्ति का संबंध है, "न्यायालय" शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

यह उल्लेख भी किया जा सकता है कि उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्त, आयरलैण्ड के माध्यस्थम अधिनियम में, जिसे माध्यस्थम (अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक) अधिनियम, 1998 कहा गया है और स्वयं भी मॉडल विधि पर आधारित है, भारतीय अधिनियम, 1996 की धारा 11 के समरूपी उपबंध अन्तर्विष्ट है जो यह दर्शाता है कि मध्यस्थों की नियुक्ति की शक्ति न्यायिक शक्ति है। आयरिश अधिनियम की धारा 6 का पाठ इस प्रकार है:

> "धारा 6 (1) अनुच्छेद 6 के प्रयोजन से उच्च न्यायालय विनिर्दिष्ट किया गया है और वह न्यायालय अनुच्छेद 9 के प्रयोजन से तथा अनुच्छेद 27, 35 और 36 के प्रयोजनों से सक्षम अधिकारिता वाला न्यायालय होगा।
>
> (2) उपर्युक्त उपधारा (1) में उल्लिखित अनुच्छेद के अधीन उच्च न्यायालय के कृत्य तथा धारा 7, 11(7) और (9) तथा 14(1) के अधीन उसके कृत्य-
>
> (क) उच्च न्यायालय के प्रेसीडेंट द्वारा, या
>
> (ख) इस संबंध में बनाए गए नियमों के अध्यधीन प्रेसीडेंट द्वारा नामनिर्देशित उच्च न्यायालय के न्यायाधीश, द्वारा निष्पादित किए जाएंगे।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या भारतीय अधिनियम, 1996 की धारा 11 में आयरिश माध्यस्थम अधिनियम

की पद्धति पर उपर्युक्त संशोधन किया जाना चाहिए ताकि, पक्षकारों के बीच मतभेद होने की स्थिति में, मध्यस्थ की नियुक्ति की शक्ति को न्यायिक शक्ति के रूप में स्पष्ट किया जा सके।

तब यह प्रश्न उठेगा कि जब धारा 11 के अधीन दिए गए आवेदन के उत्तर में अधिकारिता संबंधी विवाद उत्पन्न होंगे, तब क्या इन विवादों का निर्णय उच्च न्यायालय द्वारा किया जाएगा और मामला एकल न्यायाधीश के समक्ष दायर किया जाएगा चाहे वह भारत का मुख्य न्यायाधीश हो या उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश या उनके नामनिर्देशिती? यहां कठिनाई यह है कि अनुच्छेद 136 के अधीन अपील में भी ऐसा ही प्रश्न उठ सकता है जहां उच्च न्यायालय के न्यायाधीश या उसके नामनिर्देशिती द्वारा पारित आदेश पर कोई आपत्ति उठायी जाती है। ऐसा आवेदन उच्चतम न्यायालय के दो या दो से अधिक न्यायाधीशों की खंडपीठ के समक्ष आएगा। यह संभव है कि किसी अन्य मामले में उच्चतम न्यायालय में धारा 11 के स्तर पर उठाए गए किसी ऐसे ही प्रश्न पर भारत के मुख्य न्यायाधीश या उसके किसी नामनिर्देशिती द्वारा निर्णय दिया जा सकेगा। दूसरे शब्दों में, अन्तर्राष्ट्रीय तथा देशी माध्यस्थमों में अधिकारिता के ऐसे ही प्रश्न उठेंगे, यदि माध्यस्थम खंडों में शब्द एक जैसे ही होंगे और इसके परिणामस्वरूप परस्पर विरोधी निर्णय होंगे। दूसरा पहलू यह है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 141 के प्रयोजनों के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश या उसके नामनिर्देशिती के निर्णय का भी उतना ही महत्व होगा जितना कि उच्चतम न्यायालय के दो या दो से अधिक विधि विशेषज्ञ न्यायाधीशों की खंडपीठ के निर्णय का?

उपर्युक्त पहलुओं की दृष्टि से, इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि क्या अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों में उठने वाले अधिकारिता संबंधी मामलों को भारत के मुख्य न्यायाधीश या उसके किसी नामनिर्देशिती द्वारा जब कभी किसी प्रतिवादी द्वारा ऐसे प्रश्न उठाए जाएं, उनका निर्णय करने के लिए दो या दो से अधिक न्यायाधीशों की खंडपीठ को निर्देशित किए जाने चाहिएं और यदि अधिकारिता संबंधी समस्या नहीं उठती है या मामले के गठन द्वारा आवेदक के हित में हो जाता है तो क्या वे किसी मध्यस्थ को भी नियुक्त कर सकते हैं।

इसी प्रकार, उच्च न्यायालय में, विभिन्न मामलों में उच्च न्यायालय के भिन्न-भिन्न नामनिर्देशितियों के समक्ष अधिकारिता का ऐसा ही प्रश्न आ सकता है और यह भी संभव है कि इन विभिन्न मामलों में भिन्न-भिन्न विचार व्यक्त किए जाएं। अतः प्रश्न यह उठता है कि धारा 11 के अधीन आवेदन क्या उच्च न्यायालय में एक से अधिक न्यायाधीश की खंड पीठ के समक्ष सूचीबद्ध किया जाए और वे न केवल अधिकारिता संबंधी प्रश्न का अपितु मध्यस्थ किन्हें नियुक्त किया जाए इन प्रश्नों का भी निर्णय कर सकेंगे।

यह संभव है कि धारा 11 के अधीन आवेदनों में उच्चतम न्यायालय/उच्च न्यायालय में कुछ मामलों में कोई मौखिक साक्ष्य प्रस्तुत करना आवश्यक हो सकता है जहां पक्षकार यह तर्क देता है कि मामले में कोई माध्यस्थम करार नहीं है या अन्य तथ्यात्मक प्रश्न उठाए जाते हैं। ऐसी स्थिति में धारा 11 में इस आशय का एक उपबंध किया जा सकता है कि न्यायालय एक साक्ष्य आयुक्त नियुक्त करके उसके समक्ष साक्ष्य अभिलिखित करा सकेगा।

आयरिश मॉडल में, यदि स्वीकार किया जाए, धारा 11 के अधीन आवेदनों पर निर्णय, यथास्थिति, उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा एक से अधिक न्यायाधीश की खंडपीठ द्वारा किया जाएगा। इस स्थिति में तात्पर्य यह होगा कि न्यायालय द्वारा न्यायिक शक्ति का प्रयोग किया जा रहा है और यह कि वह अधिकारिता संबंधी मामलों का निर्णय भी उसी स्तर पर करेगा। अतः अधिकारिता संबंधी मामलों का निर्णय भी उसी स्तर पर करेगा। अतः धारा 11(6) में संशोधन करना होगा और धारा 11 की अन्य संबंधित उपधाराओं में भी संगत संशोधन करने होंगे।

जहां तक धारा 11 के आवेदनों के शीघ्र निपटान का संबंध है, एक विचार यह है कि यदि धारा 11 के अधीन आदेश प्रशासनिक माना जाता है तो (चाहे यह अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में भारत के मुख्य न्यायाधीश का आदेश हो अथवा उसके किसी नामनिर्देशिती का या देशी माध्यस्थम के मामले में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या उसके किसी नामनिर्देशिती का) तो उसकी उच्च न्यायालय एकल न्यायाधीश के समक्ष, अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत, न्यायिक पुनरीक्षा की जाएगी। वास्तव में, कोंकण रेलवे मामला-II (2000 (8) एस.सी.सी. 159, बाद में ऐसा तर्क प्रस्तुत किया गया था। तब उसकी अपील खंडपीठ में की जा सकेगी और तभी अनुच्छेद 136 के अधीन विशेष अनुमति याचिका प्रस्तुत की जा सकेगी। एक विचार यह है कि यदि उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा आदेश दिए जाने की अनुमति है (और यह व्यवस्था की जाए कि मामले का निर्णय एक से अधिक न्यायालयों की खंडपीठ द्वारा किया जाएगा) तो उपर्युक्त स्थिति से बचा जा सकता है। तब यह स्पष्ट

हो जाएगा कि आदेश न्यायिक आदेश है चाहे अधिकारिता संबंधी प्रश्न का निर्णय हुआ हो अथवा नहीं और अब कभी उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा कोई नियुक्ति की गई हो।

उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकारिता संबंधी प्रश्न पर दिया गया निर्णय अनुच्छेद 141 के अधीन, अधिकारिता संबंधी प्रश्न पर आगे और मुकदमेबाजी की गुंजाइश छोड़े बिना, बाध्यकारी और अन्तिम होगा। यदि, देशी माध्यस्थम के मामले में, अधिकारिता संबंधी प्रश्न का निर्णय उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा किया जाता है तो अनुच्छेद 136 के अधीन, एकमात्र अपील उच्चतम न्यायालय में की जा सकेगी। इससे भी अधिकारिता संबंधी प्रश्न पर आगे मुकदमेबाजी की गुंजाइश कम हो जाएगी और मध्यस्थों के समक्ष होने वाले व्यय और समय की बचत होगी। ऐसी व्यवस्था भी की जा सकती है कि धारा 11 के अधीन आवेदन, धारा 11 के अधीन मूल आवेदनों के रूप में, उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय की संबंधित पीठ के समक्ष ही प्रस्तुत किए जाएं और इन्हें माध्यस्थम के अन्य मामलों के साथ न मिलाया जाए ताकि इन्हें निपटाने में सर्वोच्च प्राथमिकता दी जा सके।

अतः इस बात पर विचार करना होगा कि क्या उपर्युक्त प्रक्रिया से इन प्रश्नों का समाधान हो पाएगा कि क्या धारा 11 के अधीन प्रदत्त शक्ति न्यायिक है, कि क्या उस स्तर पर अधिकारिता संबंधी प्रश्नों का निर्णय हो सकेगा और यह भी कि क्या यदि आदेश को प्रशासनिक माना जाए और उसे अनुच्छेद 226 के अधीन चुनौती देने की अनुमति दी जाए इसकी तुलना में इस प्रक्रिया से समय की अधिक बचत होगी।

यह सच है कि माध्यस्थम अधिनियम, 1996 की धारा 16 मध्यस्थों को अधिकारिता संबंधी प्रश्नों पर निर्णय करने की शक्ति प्रदान करती है।

एक विचार यह है कि धारा 11 के स्तर पर उठाए गए अधिकारिता संबंधी मामलों का निर्णय केवल मध्यस्थों द्वारा ही किया जाना चाहिए न्यायालय द्वारा नहीं। यह सच है कि मध्यस्थों को पहली बार इस नए अधिनियम के अधीन इस प्रकार की विशिष्ट शक्ति प्रदान की गई है। ऐसा प्रतीत होता है कि धारा 16(1) का आशय यह है कि अधिकारिता संबंधी प्रश्नों पर निर्णय करने की शक्ति का प्रयोग मध्यस्थों द्वारा किया जाना चाहिए जहां पक्षकारों द्वारा निर्देशित विवाद उनके समक्ष लाए जाते हैं। यदि मामला सीधे मध्यस्थ के सामने जाता है, अर्थात धारा 11 के अधीन निर्देश द्वारा नहीं, मध्यस्थ निश्चित ही अधिकारिता संबंधी प्रश्नों का निर्णय कर सकेंगे और ऐसे मामलों पर दिया गया निर्णय सदैव अधिनियम की धारा 34 (2)(क)(II) या (IV) के सुधार के अध्यधीन होगा। यदि धारा 11 के अधीन वर्तमान स्थिति जारी रहती है तब यह होगा कि अधिकारिता संबंधी प्रश्नों का निर्णय मध्यस्थ करेंगे और यदि वे अधिकारिता न होने के तर्क को स्वीकार कर लेते हैं तो उनके आदेश के विरुद्ध धारा 37(2)(क) के अध्यधीन अपील की जा सकेगी। तथापि, यदि वे उक्त तर्क को अस्वीकार कर देते हैं तो अपील करने के लिए कोई प्रावधान नहीं है और पक्षकार को पंचाट पारित होने तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

2.5 अधिनियम की धारा 16 के अधीन मध्यस्थों के समक्ष उठने वाले अधिकारिता संबंधी प्रश्न जहां विवाद एक पक्षकार या दोनों पक्षकारों द्वारा मध्यस्थों को निर्देशित किए जाते हैं (न्यायालय के निदेश किए बिना)

जैसाकि अध्याय–एक में बताया गया है, 1996 के अधिनियम का उद्देश्य मॉडल विधि की तरह न्यायालय के न्यूनतम मध्यक्षेप से माध्यस्थम को तेजी से पूरा करना है।

तथापि, यह नोट किया जाना चाहिए कि मॉडल विधि में इस प्रकार के उद्देश्य तथा तत्काल न्यायालय पर्यवेक्षण के बीच एक संतुलन बनाए रखना है। मॉडल विधि के अधिकारिता संबंधी मामलों पर प्राथमिक मामलों के रूप में अंतिम रूप से निर्णय करने और तभी अपील करने की आवश्यकता को मान्यता दी गई है। इसमें यह भी व्यवस्था है कि जब अधिकारिता संबंधी मामले न्यायालय के समक्ष उठाए जाते हैं तब कोई व्यादेश नहीं दिया जाना चाहिए परंतु यह मध्यस्थों पर छोड़ दिया जाना चाहिए कि वह कार्यवाही को रोके या जारी रखे। यह प्रक्रिया पक्षकारों को निष्प्रयोजनीय अपील दायर करने की अनुमति नहीं देती है और न ही अपीलार्थी को अपील के निपटान में अनावश्यक विलम्ब करने देती है। मध्यस्थों का इस विषय में पूर्ण नियंत्रण होता है कि अपील प्रक्रिया विलम्बकारी उद्देश्यों के लिए प्रयोग न की जाए। इस प्रकार मॉडल विधि माध्यस्थम के तीव्र गति से निपटान तथा न्यायालय के सुरक्षित पर्यवेक्षण और नियंत्रण के बीच संतुलन बनाए रखती है।

1996 के भारतीय अधिनियम में कठिनाइयां इसलिए पैदा हुई हैं कि मॉडल विधि के आशय की तुलना में मामलों के तीव्र निपटान पर बल दिया गया है और प्रारम्भिक मामलों के निर्णय के लिए जो मामले के जड़ों

तक जाते हैं जिनके परिणामस्वरूप उन मामलों पर मध्यस्थ तथा अपीलीय न्यायालय के समक्ष तीव्र गति से तथा तुरंत निर्णय होते हैं, कोई उपबंध नहीं किया गया है।

विचारार्थ प्रश्न यह है कि 1996 के माध्यस्थम अधिनियम में धारा 16 के संबंध में (तथा धारा 13 के संबंध में भी) उपर्युक्त संशोधन किया जाना चाहिए ताकि इसे सभी दिशाओं में मॉडल विधि के अनुरूप बनाया जा सके। वास्तव में, लगभग सभी देशों ने, जिन्होंने मॉडल विधि को स्वीकार किया है, धारा 13 और 16 के समरूपी प्रावधान किए हैं जिनसे अधिकारिता संबंधी प्रश्न प्रारम्भिक प्रश्नों के रूप में निर्णीत होते हैं और तत्काल अपील करने का अधिकार भी दिया गया है। जहां तक व्यादेश का संबंध है यह मामला मध्यस्थ के लिए छोड़ दिया गया है कि वह जिस रूप में पीड़ित पक्षकार अपील के बारे में कार्यवाही करता है उसे ध्यान में रखते हुए, माध्यस्थम कार्यवाही जारी रखे अथवा नहीं।

धारा 16 के अधीन मध्यस्थों को अपनी अधिकारिता निश्चित करने की शक्ति प्रदान की गई है जिसमें माध्यस्थम करार विद्यमान होने तथा उसकी वैधता के बारे में किसी आपत्ति पर व्यवस्था देने की शक्ति भी सम्मिलित है। 1940 के अधिनियम में इस प्रकार की शक्ति विशिष्ट रूप से प्रदान नहीं की गई थी। 1996 के अधिनियम की धारा 16 मॉडल विधि के अनुच्छेद 16 के अनुरूप है। प्रत्येक देश ने, जिसने भी मॉडल विधि स्वीकार की है, मध्यस्थों को ऐसी शक्तियां प्रदान की हैं। सिद्धान्त को सक्षमता सिद्धान्त, अर्थात् किसी को अपनी सक्षमता के बारे में निर्णय करने का, कहा गया है।

1996 के अधिनियम की धारा 16 का पाठ इस प्रकार है:-

"धारा 16 (1) माध्यस्थम अधिकरण, माध्यस्थम करार होने या माध्यस्थम करार की वैधता के बारे में किसी भी पर विनिर्णय व्यवस्था सहित अपनी की अधिकारिता के बारे में अपनी व्यवस्था दे सकेगा और उस प्रयोजन के लिए,

(क) एक माध्यस्थम खण्ड, जो संविदा का एक भाग रूप है, संविदा की अन्य शर्तों से स्वतंत्र, किसी करार के रूप में माना जाएगा; और

(ख) माध्यस्थम अधिकरण का ऐसा कोई विनिश्चय कि संविदा अकृत और शून्य है, माध्यस्थम खण्ड को विधितः अविधिमान्य नहीं करेगा।

(2)~

(3)~

(4)~

(5) माध्यस्थम अधिकरण, उपधारा (2) या उपधारा (3) में निर्दिष्ट किसी अभिवचन पर विनिश्चय करेगा और जहां माध्यस्थम अधिकरण अभिवचन को अस्वीकार करने का विनिश्चय करता है वहां वह माध्यस्थम कार्यवाहियों को जारी रखेगा और माध्यस्थम् पंचाट दे सकेगा।

(6) ऐसे किसी माध्यस्थम् पंचाट से पीड़ित कोई पक्षकार ऐसे किसी माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने के लिए धारा 34 के अनुसार ही आवेदन कर सकेगा।

जब हम मॉडल विधि को देखते हैं तो उसके अनुच्छेद 16 में तीन खण्ड पाते हैं। खण्ड-1 और खण्ड-2 भारतीय अधिनियम, 1996 की धारा 16 के खण्ड 1 से 4 के अनुसार ही हैं परंतु मॉडल विधि के अनुच्छेद 16 में एक तीसरा खण्ड भी है जिसका पाठ निम्नलिखित है और जो भारतीय अधिनियम, 1996 की धारा 16 में विद्यमान नहीं है। मॉडल विधि के अनुच्छेद 16 के खण्ड (3) का पाठ निम्नलिखित है:-

"16(3) माध्यस्थम अधिकरण इस अनुच्छेद के पैरा (2) में निर्देशित किसी अभिवचन पर, प्रारम्भिक प्रश्न के रूप में, या गुण-व गुण पर पंचाट में, अपनी व्यवस्था दे सकेगा। यदि माध्यस्थम अधिकरण प्रारम्भिक प्रश्न के रूप में अपनी व्यवस्था देता है कि वह उसकी अधिकारिता के अन्तर्गत आता है, तो कोई भी पक्षकार, उस व्यवस्था का नोटिस प्राप्त होने के तीस दिन के भीतर, अनुच्छेद 6 में विनिर्दिष्ट न्यायालय से मामले का निर्णय करने का अनुरोध कर सकेगा और इस निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं की जा सकेगी और जब ऐसा अनुरोध लम्बित हो तब माध्यस्थम अधिकरण माध्यस्थम कार्यवाहियों को जारी रख सकेगा और पंचाट दे सकेगा।"

जैसाकि पहले बताया जा चुका है। 1996 के अधिनियम में धारा 16 में मॉडल विधि की भांति ऐसा उपबंध अन्तर्विष्ट नहीं है जो मध्यस्थों को प्रारम्भिक मामलों के रूप उपर्युक्त मामलों का अधिनिर्णय करने के लिए समर्थकारी बनाता हो। इसके अतिरिक्त भारतीय अधिनियम धारा 16 की उपधारा (6) पीड़ित पक्षकार को अन्तिम पंचाट को अपास्त करने हेतु जो अधिकारिता संबंधी प्रश्नों को अस्वीकार करते हुए पारित किया जाता है, आवेदन करने का अधिकार देती है। अधिनियम की धारा 34 या धारा 37 में अधिकारिता संबंधी आक्षेप अस्वीकार कर दिए जाने पर, तत्काल अपील करने का भी कोई उपबंध नहीं है। अधिनियम की धारा 37(2)(क) के अधीन, धारा 16(2) या (3) में निर्दिष्ट तर्कों को स्वीकार करते हुए मध्यस्थ के आदेश के विरूद्ध न्यायालय में अपील करने का प्रावधान किया गया है परन्तु उन मामलों में नहीं जहां ये तर्क अस्वीकार कर दिए जाएं।

भारतीय अधिनियम, 1996 की धारा 16(5) में, ऐसा प्रतीत होता है कि "दे सकेगा" शब्द "अधिनिर्णय" तथा "जारी" शब्द को शासित करता है जिसका तात्पर्य यह है कि यदि धारा 16(6) के अधीन अपील दायर भी की जाती है, मध्यस्थों के लिए माध्यस्थम् के मामले में आगे कार्यवाही न करने का कोई स्वविवेकाधिकार नहीं है। यह मॉडल विधि के अनुच्छेद 16(3) के समरूपी प्रावधान के विपरीत है। अतः धारा 16(5) में "तर्क अस्वीकार करने" शब्दों के पश्चात और "जारी रखेगा" शब्दों से पूर्व "सकेगा" शब्द का प्रयोग करके संशोधन किया जाना चाहिए।

वास्तव में, जर्मन अधिनियम, 1998 की धारा 1040 में उपखंड (3) में मध्यस्थों द्वारा एक प्रारम्भिक व्यवस्था दिए जाने और न्यायालय में अपील करने का प्रावधान किया गया है। इसी प्रकार जिम्बावे अधिनियम, 1996 के अनुच्छेद 16(3) में, कोरियाई अधिनियम, 199 के अनुच्छेद 16(5) में, आयरिश अधिनियम, 1998 के अनुच्छेद 16(3) में, कनाडा अधिनियम, 1985 के अनुच्छेद 16(3) में और न्यूजीलैण्ड अधिनियम, 1996 की पहली अनुसूची के अनुच्छेद 16 में मध्यस्थों को अधिकारिता संबंधी प्रश्नों को प्रारम्भिक प्रश्न के रूप में निर्णीत करने की अनुमति दी गई है तथा न्यायालय में अपील करने की व्यवस्था का प्रावधान भी किया गया है। मॉडल विधि तथा इन अन्य सभी अधिनियमों में आगे यह प्रावधान किया गया है कि न्यायालय का निर्णय आने तक मध्यस्थम माध्यस्थम् कार्यवाही को आगे बढ़ाने या न बढ़ाने के लिए स्वतंत्र होंगे। सभी विधियों में इस संबंध में "सकेगा" शब्द का प्रयोग किया गया है। यह शब्द यह सुनिश्चित करता है कि निरर्थक अपील दायर न की जाएगी और अपीलों को अनावश्यक रूप से लम्बा नहीं खींचा जाएगा। इस प्रकार के प्रावधान से यह सावधानी रहेगी कि माध्यस्थम प्रक्रिया में अनावश्यक विलम्ब नहीं और मध्यस्थों का अपील दायर करने वाले पक्षकारों पर नियंत्रण रहे ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि अपीलार्थी अपीलों को अनावश्यक रूप से लम्बा न खींच पाएं। इस संदर्भ में अनसिट्राल मॉडल पर मि० एरन ब्रोज ब्लूवर की निम्नलिखित टिप्पणी उपयोगी है:–

> "कार्यकारी दल के चौथे सैशन में एक संकल्प पारित किया गया जिसमें, एक ओर, आसन्न जोखिम के साथ कि यह विलम्बकारी उपाय के रूप में प्रयोग किया जाएगा, तुरन्त न्यायालय में जाने की अनुमति दी गई, दूसरी ओर, माध्यस्थम अधिकरण को मध्यस्थम कार्यवाही जारी रखने की अनुमति दी गयी (परन्तु बाध्य नहीं किया गया)। इससे अधिकरण कार्यवाहियों को जारी रखके विलम्बकारी प्रयोजनों के लिए किसी अनुचित चुनौती के प्रतिकूल प्रभाव को या तो सीमित कर सकेगा या कार्यवाहियों को निलम्बित कर सकेगा जहां वह यह समझता है कि पक्षकारों का सर्वाधिक हित चुनौती के प्रश्न को असंगत बनाने में है न कि किसी पंचाट पर उन्हें समय और पैसा बर्बाद करने का जोखिम उठाने देने में जो अन्ततः अनुच्छेद 34 के अधीन अपास्त किया जा सकता है।"

तथापि, ब्रिटेन के 1996 के अधिनियम में इस समस्या से दूसरे ढंग से निपटने का विचार किया गया है। जब मध्यस्थों के समक्ष अधिकारिता संबंधी प्रश्न उठते हैं तो पक्षकारों के सामने मामलों पर मध्यस्थों द्वारा निर्णय कराने और उनसे पंचाट प्राप्त करने का विकल्प रहता है और तत्पश्चात वे अपील दायर कर सकते हैं या दोनों पक्ष सहमति से अधिकारिता के प्रश्न पर निर्णय देने के लिए न्यायालय में जा सकते हैं। पक्षकारों को अधिकरण की अनुमति से न्यायालय में जाने की अनुमति है अर्थात ऐसी स्थिति में जब सभी पक्ष ऐसे निर्देश से सहमत न हों। इंग्लिश अधिनियम, 1996 की धारा 32 "अधिकारिता के प्राथमिक प्रश्न के विनिश्चय" के बारे में है और उपधारा (2) में निम्नलिखित कहा गया है:–

> "धारा 32(2) इस धारा के अधीन कोई आवेदन तब तक स्वीकार नहीं किया जाएगा जब तक कि–
>
> (क) उसके साथ कार्यवाहियों के अन्य सभी पक्षकारों के लिखित करार संलग्न न हो, या

(ख) वह अधिकरण की अनुमति से न प्रस्तुत की गई हो और न्यायालय निम्नलिखित के बारे में संतुष्ट न हो–

(i) कि प्रश्न के विनिश्चय से लागत में पर्याप्त बचत होने की संभावना है;

(ii) कि आवेदन बिना विलम्ब किए गए प्रस्तुत किया गया; और

(iii) इसके लिए पर्याप्त कारण है कि मामला न्यायालय द्वारा क्यों निर्णीत किया जाए।"

अत: यह निर्णय करना होगा कि क्या भारतीय अधिनियम, 1996 में इस आशय का संशोधन किया जाए जिससे कि मध्यस्थ मॉडल विधि की भांति अधिकारिता संबंधी प्रश्नों को प्रारम्भिक प्रश्नों के रूप में निर्णीत कर सकें और आदेश के विरुद्ध तत्काल अपील का अधिकार दिया जा सके तथा मध्यस्थों में ऐसा स्वविवेकाधिकार भी निहित हो कि वे माध्यस्थम कार्यवाही जारी रख सकें अथवा नहीं।

विकल्प के रूप में, इस बात पर विचार करना होगा कि क्या ब्रिटेन के 1996 के अधिनियम की धारा 32(2) के उपबंधों का अनुसरण किया जाए?

2.6. धारा 12 और 13 तथा मध्यस्थों की निष्पक्षता और योग्यताएं– क्या निष्पक्षता और योग्यता न होने के तर्क को अस्वीकार करने संबंधी मध्यस्थ के निर्णय पर प्रारम्भिक मामलें के रूप में अपील करने के अधिकार के साथ निर्णय किया जाना चाहिए और क्या इन्हें केवल पंचाट पारित होने के पश्चात ही चुनौती दी जा सकती है?

जैसाकि पैरा 1.3 में कहा जा चुका है कि माध्यस्थम के तीव्र गति से निपटान और मामले की जड़ों तक जाने वाले मामलों के अन्तिम निपटान के बीच संतुलन बनाए रखना आवश्यक है। इस सिद्धान्त के लिए मध्यस्थों की निष्पक्षता और योग्यता के मामले, तत्काल अपील करने के अधिकार के साथ, प्रारम्भिक मामलों के रूप में निर्णीत होते हैं और यह बात माध्यस्थों के विवेक पर छोड़ दी जाती है कि वे व्यादेश स्वीकृत करें अथवा नहीं। धारा 13 के उपबंधों को मॉडल विधि के अनुरूप बनाया जाना चाहिए जिसमें माध्यस्थम कार्यवाहियों के तीव्र गति से निपटान तथा निष्पक्षता और योग्यता के प्रश्नों पर सुस्त निर्णय के बीच एक संतुलन बनाए रखा गया है ताकि समय और पैसे की बचत हो सके। मध्यस्थों को अपील के लम्बित रहते माध्यस्थम कार्यवाही चलाते रहने का विवेकाधिकार होना चाहिए ताकि वे इस रीति पर नियंत्रण रख सकें जिसमें कि अपीलार्थी, जिसने पक्षपात तथा अनहर्ता के तर्क को अस्वीकृत करने वाले आदेश के विरुद्ध अपील की है, अपनी अपीलीय कार्यवाही चला रहा है।

वास्तव में, मध्यस्थ के पक्षपातपूर्ण होने के तर्क को अस्वीकार करने के आदेश के विरुद्ध तत्काल अपील करने का उपबंध न होने से, पक्षकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 का आश्रय लेते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि बम्बई उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने अनूप टैक इक्विपमेंट्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम गणपति सहकारी समिति लिमिटेड (ए.आई.आर. 1999 बम्बई 219) मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि मध्यस्थ के निर्णय या आदेश को अपास्त करने के लिए रिट याचिका दायर की जा सकती है क्योंकि इसे पंचाट के समान नहीं माना जा सकता। यदि अधिनियम की धारा 34 या धारा 37 के अधीन न्यायालय में अपील करने का प्रावधान किया जाता है तो उच्च न्यायालय में रिट दायर करने का प्रश्न ही नहीं रहेगा।

1996 के अधिनियम की धारा 12 और 13 का पाठ निम्नलिखित है:–

धारा 12 : चुनौती के लिए आधार:

(1) जहां किसी व्यक्ति से किसी मध्यस्थ के रूप में उसकी संभावित नियुक्ति के संबंध में प्रस्ताव किया जाता है वहां वह किसी ऐसी परिस्थिति को लिखित रूप में प्रकट करेगा जिससे उसकी स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में उचित शंकाएं उठाने की संभावना हो।

(2) कोई मध्यस्थ, अपनी नियुक्ति के समय से और सम्पूर्ण माध्यस्थम कार्यवाही के दौरान बिना विलम्ब पक्षकारों उपधारा (1) में निर्दिष्ट किन्हीं परिस्थितियों को लिखित प्रकट करेगा जबकि उन्हें उसके द्वारा उनकी पहले से ही सूचना नहीं दे दी गयी है।

(3) किसी मध्यस्थ पर केवल तभी आक्षेप किया जा सकेगा यदि:–

(क) ऐसी परिस्थितियां विद्यमान है जो उसकी स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में उचित शंकाओं को उत्पन्न करती है; या

(ख) उसके पास पक्षकारों द्वारा, तय पाई गई योग्यताएं न हो।

(4) कोई पक्षकार, उसके द्वारा नियुक्त किए गए किसी मध्यस्थ या जिसकी नियुक्ति में उसने भाग लिया था, केवल उन्हीं कारणों पर आक्षेप कर सकेगा जिनकी उसी नियुक्त किए जाने के पश्चात उससे अवगत होता है।

धारा 13 : आक्षेप प्रक्रिया

(1) उपधारा (4) के अध्यधीन, पक्षकार किसी मध्यस्थ पर आक्षेप करने के लिए किसी प्रक्रिया पर करार करने के लिए स्वतंत्र हैं।

(2) उपधारा (1) में निर्देशित किए गए किसी भी करार के असफल हो जाने पर, कोई पक्षकार जो किसी मध्यस्थ पर आक्षेप करने का आशय रखता है, माध्यस्थम अधिकरण के गठन से अवगत होने के पश्चात या धारा 12क, उपधारा (2) में निर्दिष्ट किन्हीं परिस्थितियों से अवगत हो जाने के पश्चात्, माध्यस्थम अधिकारण पर आरोप करने के कारणों का लिखित कथन भेजेगा।

(3) जब तक मध्यस्थ पर जिस उपधारा (2) के अधीन आक्षेप किया गया है, अपने पद से हट नहीं जाता है या अन्य पक्षकार आक्षेप से सहमत नहीं हो जाता है, तक माध्यस्थम आक्षेप पर विनिश्चय करेगा।

(4) यदि पक्षकारों द्वारा करार पाई गई किसी प्रक्रिया के अधीन या उपधारा (2) के अधीन प्रक्रिया के अधीन कोई आक्षेप सफल नहीं होता है, तो माध्यस्थम अधिकरण, माध्यस्थम कार्यवाही को चालू रखेगा और माध्यस्थ पंचाट देगा।

(5) जहां उपधारा (4) के अधीन किसी माध्यस्थम पंचाट दिया जाता है, वहां मध्यस्थ पर आक्षेप करने वाला पक्षकार, धारा 34 के अनुसार ऐसे माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन कर सकेगा।"

जैसाकि पहले बताया जा चुका है, भारतीय अधिनियम की धारा 13 में यह प्रावधान किया गया है कि मध्यस्थ द्वारा पक्षपात या उसकी योग्यता से संबंधित मामले मध्यस्थ द्वारा प्रारम्भिक मामलों के रूप में निर्णित किए जाने चाहिए। परन्तु न्यायालय में तत्काल अपील दायर करने के लिए और साथ ही धारा 16(5) के प्रावधान के अनुसार मध्यस्थ को माध्यस्थम कार्यवाही चालू रखने के लिए कोई उपबंध नहीं है। दूसरी ओर पीड़ित पक्ष को पंचाट के पारित होने तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है और पंचाट के पश्चात ही निर्णय को चुनौती दे सकता है। यह एक समस्या है। दूसरी समस्या यह है कि यद्यपि धारा 13(5) में निर्णय को न्यायालय में चुनौती देने की अनुमति दी गई है, अधिनियम की धारा 34 व 37 में इस आशय का कोई विशिष्ट उपबंध नहीं किया गया है जहां पक्षकार या अयोग्यता के तर्क को अस्वीकार करने वाले मध्यस्थ के निर्णय पर आपत्ति या उसके विरुद्ध अपील की जा सके। यहां भी धारा 16(6) के समान ही दोष विद्यमान है।

मॉडल विधि के अनुच्छेद 13(4) में अपील करने के तत्काल अधिकार का प्रावधान किया गया है और इसमें यह भी कहा गया है कि अपील के लम्बित रहते हुए माध्यस्थम कार्यवाही चालू रखी जा सकेगी दूसरी ओर भारतीय अधिनियम की धारा 13(4) में प्रयोग किए गए शब्द की तरह "कर सकेगा" शब्द का प्रयोग भी किया गया है।

जर्मन माध्यस्थम अधिनियम, 1998 की धारा 1037(3) में भी न्यायालय में तत्काल अपील करने का अधिकार उपबंधित है और इसमें कहा गया है कि इस बीच मध्यस्थ कार्यवाही चालू रख सकेंगे और पंचाट दे सकेंगे। जिम्बाबे माध्यस्थम अधिनियम, 1996 के अनुच्छेद 13(3) में भी अपील करने का अधिकार उपबंधित है और इसमें यह भी कहा गया है कि इस बीच मध्यस्थ कार्यवाही जारी रख सकेंगे। इसी प्रकार आस्ट्रेलियाई अधिनियम की अनुसूची 2 के अनुच्छेद 13(2), कनाडा अधिनियम, 1985 के अनुच्छेद 13(3), आयरलैण्ड अधिनियम, 1998 की अनुसूची के अनुच्छेद 13(3), न्यूजीलैण्ड अधिनियम, 1999 की पहली अनुसूची और अनुच्छेद 13(3) में भी "कर सकेगा" शब्द का प्रयोग किया गया है और माध्यस्थम को, पक्षपात

या अयोग्यता के प्रश्न पर न्यायालय का निर्णय आने तक, माध्यस्थम कार्यवाही चालू रखने की विवेकाधिकार दिया गया है।

इसमें माध्यस्थम द्वारा धारा 13(4) के अधीन दिए गए निर्णय के विरुद्ध धारा 37 के अन्तर्गत अपील का प्रावधान करना आवश्यक हो जाता है। पक्षकारों से पंचाट के पारित होने तक प्रतीक्षा करने के लिए कहने के बजाए न्यायालय में तत्काल अपील करने का प्रावधान करना भी आवश्यक हो जाता है। इस प्रयोजन के लिए धारा 13(4) में आए शब्द "करेगा" के स्थान पर "कर सकेगा" शब्द प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए ताकि न्यायालय का निर्णय आने तक पक्षपात तथा अयोग्यता के प्रश्न पर मध्यस्थ के प्रारंभिक निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सके। माध्यस्थम कार्यवाही आगे बढ़ाने या न बढ़ाने का निर्णय मध्यस्थों के विवेकाधिकार पर निर्भर रहेगा।

2.7 अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में, जहां माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर है, धारा 9 के अधीन अंतरिम उपाय और धारा 2(2) का संशोधन करके इस प्रकार के माध्यस्थमों में कार्यवाही करने के लिए धारा 8 के अधीन सिविल न्यायालय को भी अनुमति दिया जाना।

1996 के अधिनियम की धारा 2(2) के अधीन यह कहा गया है कि भाग-एक उस मामले के लिए प्रवर्तनीय है जिसमें माध्यस्थम का स्थान भारत में है। इससे भाग-एक के अध्याय-दो में आने वाली अधिनियम की धारा 9 के निरर्थक हो जाती है और न्यायालय अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में जहां, माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर है, कोई अंतरिम आदेश देने से वंचित हो जाता है।

धारा 9, अन्यथा, माध्यस्थम कार्यवाहियों से पहले या कार्यवाही के दौरान या पंचाट दिए जाने के पश्चात (परन्तु धारा 30 के अधीन इसके प्रवर्तन से पूर्व) किसी भी समय पक्षकार को विभिन्न प्रकार के अंतरिम आदेशों के लिए न्यायालय में आवेदन करने की अनुमति देती है।

जहां माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर रहा है ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के बहुत से मामलों में धारा 2(2) के कारण काफी मुकदमेबाजी हुई है। उदाहरण के लिए, मध्यस्थों के नियुक्त किए जाने से पूर्व, भारत में अंतरिम आदेश प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है। परन्तु इस प्रकार का उपबंध न होने से पक्षकारों को उस देश के न्यायालयों में जाना पड़ता है जहां माध्यस्थम का स्थान स्थित है। इसमें पर्याप्त विलम्ब हो सकता है यदि करार का एक पक्षकार भारत में है। इसी प्रकार किसी भारत से बाहर दिए गए अन्तर्राष्ट्रीय पंचाट के निष्पादन के स्तर पर, भारतीय न्यायालय, भारत में किसी अंतरिम राहत के रूप में कोई राहत स्वीकार करने में सक्षम नहीं है। अतः ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम मामलों में जहां माध्यस्थम का स्थान भारत के बाहर है, भारतीय न्यायालयों को अंतरिम आदेश देने के अधिकार के लिए उपबंध किया जाना चाहिए।

दिल्ली उच्च न्यायालय ने परस्पर विरोधी निर्णय दिए हैं। एफ०ए०ओ० (ओ०एस० 3/2000) में एक खण्ड पीठ ने ओलेक्स फोकास प्राइवेट लि० बनाम स्कोटुब्स पेंट कम्पनी लिमिटेड (ए०आई०आर० दिल्ली 161) मामले में धारा 2(5) तथा अन्य उपबंधों के आधार पर यह अधिनिर्धारित किया है कि ऐसे मामलों में अंतरिम आदेश दिए जा सकेंगे। परन्तु वैरिएट इन्टरनेशनल इंक (2000(3) आर्बि. लॉ. रिपोर्टस 369) मामलों में एक खण्ड पीठ ने इसके विपरीत दृष्टिकोण अपनाया है कि भारत से बाहर अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के मामलों में अंतरिम आदेश दिए जा सकते। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने ईस्ट कोस्ट शिपिंग लिमिटेड बनाम एम०जे० स्क्रेप लिमिटेड 1997(1) सी.एच.एन. 444 मामले में यह अभिनिर्धारित किया था कि अंतरिम आदेश स्वीकार किया जा सकता है परन्तु कैवेन्डस एग्रो लिमिटेड बनाम सोग्राम कम्पनी लिमिटेड (ए.पी.ओ. 1949, 498/97 दिनांक 27.1.98) मामले में एक खण्ड पीठ ने विपरीत दृष्टिकोण अपनाया और विशेष अनुमति याचिका खारिज कर दी गई। अतः इस संबंध में विधि में उपचार करना आवश्यक हो गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय और देशी दोनों ही प्रकार के माध्यस्थमों से संबंधित विभिन्न देशों द्वारा पारित सभी माध्यस्थम विधियों में मॉडल विधि के अनुच्छेद 9 (अंतरिम उपायों से संबंधित) को न केवल संबंधित देश से बाहर हुए अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों में लागू करने के लिए सावधानी बरती गई है अपितु मॉडल विधि की धारा 8, 35 और 36 को देश के बाहर अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए लागू करने के विषय में भी सावधानी बरती गयी है। अधिनियम की धारा 2(2) में धारा 9 को भी स्वीकार नहीं किया गया है।

वास्तव में, मॉडल विधि की धारा 8, भारत में दायर किए जाने वाले ऐसे वादों से संबंधित है जिनमें

प्रतिवादी यह तर्क देता है कि एक माध्यस्थम करार विद्यमान है जिसमें यह व्यवस्था की गई है कि माध्यस्थम भारत से बाहर अन्यत्र होगा। ऐसी स्थिति में धारा 8 के अधीन उठने वाले प्रश्नों पर निर्णय देने के लिए भारतीय न्यायालय को अनुमति दिया जाना आवश्यक होगा।

यह इसलिए भी आवश्यक हो जाता है कि क्योंकि ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम के मामले भी होंगे जिनमें माध्यस्थम स्थान की अवधारणा भारत से बाहर के किसी स्थान के लिए की गई है परन्तु जो भारतीय अधिनियम, 1996 के भाग-दो की परिधि के भीतर नहीं आता है। भाग-दो न्यूयार्क कन्वेंशन और जनेवा कन्वेंशन पंचाटों तक सीमित है। उदाहरण के लिए यदि यह वाणिज्यिक माध्यस्थम का मामला नहीं है जहां करार लिखित में नहीं है या जहां एक पक्षकार उस देश का निवासी है जिसने उपर्युक्त कन्वेंशन पर हस्ताक्षर नहीं किए है, वहां धारा 2(2) में यह उल्लेख करना भी आवश्यक हो जाएगा कि न केवल धारा 9 अपितु भाग-एक की धारा 8 भी ऐसे मामले में लागू होगी जहां कोई वाद भारत के सिविल न्यायालय में दायर किया गया है और प्रतिवादी अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम का तर्क देता है जहां माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर है और मामला 1996 के अधिनियम के भाग-दो की परिधि से बाहर है वहां सिविल न्यायालय धारा 8 के अधीन मामले पर कार्यवाही कर सकेगा।

जिम्बाबे माध्यस्थम अधिनियम, 1996 की प्रस्तावना के पैरा 2 और उप पैरा 3(2) में कहा गया है कि मॉडल विधि की धारा 8, 9, 35 और 36 जिम्बाबे से बाहर अधिनिर्धारित होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों पर लागू होगी। कोरियाई अधिनियम, 1999 के अनुच्छेद 2 में यह व्यवस्था दी गई है कि अधिनियम की धारा 9 और 10 तथा अधिनियम के अनुच्छेद 37 और 39 भी (मॉडल विधि के समरूपी अनुच्छेद 8, 9, 35 और 36) कोरिया से बाहर अधिनिर्धारित होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए लागू होंगी। न्यूजीलैण्ड अधिनियम, 1996 की धारा 7 भी पहली अनुसूची की 8, 9, 35 (मॉडल विधि के समरूपी अनुच्छेद 8, 9, 35 और 36) को भी न्यूजीलैण्ड से बाहर अधिनिर्धारित होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए प्रवर्तनीय बनाती है कनाडा अधिनियम, 1985 के अनुच्छेद 1 के उप खण्ड (2) में यह उपबंधित है कि (मॉडल विधि के अनुच्छेद 8, 9, 35 और 36) संहिता के अनुच्छेद 8, 9, 35 और 36 कनाडा से बाहर अधिनिर्धारित किए जाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए प्रवर्तनीय होंगे। इसी प्रकार माध्यस्थम (अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक) अधिनियम, 1998 की धारा 7 में आयरलैण्ड में अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम करारों के संबंध में अंतरिम उपाय स्वीकृत करने की अनुमति दी है।

हम मॉडल विधि के अनुच्छेद 35 और 36 तथा भारतीय अधिनियम की धारा 2(2) के बारे में चर्चा परवर्ती पैरों में करेंगे।

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिनियम की धारा 2(2) में, जो भारतीय अधिनियम के भाग-एक को केवल भारत में होने वाले माध्यस्थमों के लिए लागू करती है, भाग-दो के अन्तर्गत आने वाले भारत से बाहर अधिनिर्धारित किए जाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए धारा 8, 9 (35 और 36) का समागम करने की अनुमति देते हुए संशोधन किया जाना चाहिए।

2.8 **क्या भारतीय अधिनियम की धारा 35 और 36, भारत से बाहर अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए (भाग-दो में न्यूयार्क कन्वेंशन, 1958 तथा जनेवा कनवेंशन, 1924 के अन्तर्गत आने वाले मामलों के अतिरिक्त) प्रवर्तनीय बनाई जानी चाहिए?**

अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम, 1996 के अधिनियम के भाग-दो के अन्तर्गत आते हैं। जहां तक "प्रवर्तन" का संबंध है भाग-दो के अध्याय एक न्यूयार्क कन्वेंशन पंचाट 1958 के बारे में है। भाग-दो में धारा 44 न्यूयार्क कन्वेंशन पंचाट का निर्देश करती है " विदेशी पंचाट" को एक ऐसे पंचाट के रूप में परिभाषित करती है जो विधिक संबंधों से उत्पन्न मतभेदों पर दिया गया हो चाहे संविदात्मक हों अथवा नहीं, भारत के प्रवृत्त विधि के अधीन जिसे वाणिज्यिक माना जाता है और जो माध्यस्थम के लिए लिखित करार के अनुसरण में 11.10.1960 को या इसके पश्चात दिया गया हो और जिस कन्वेंशन की पहली अनुसूची लागू होती है।

इसी प्रकार धारा 53, जो जनेवा कन्वेंशन पंचाट के लिए प्रवर्तनीय है विदेशी पंचाट को माध्यस्थम पंचाट के रूप में परिभाषित करती है जो भारत में 28.7.1924 के पश्चात् माध्यस्थम करार के अनुसरण में जिसके लिए दूसरी अनुसूची में दिया गया प्रोटेकॉल लागू होता है, बनाई गई प्रवृत्त विधि के अधीन वाणिज्यिक समझे जाने वाले मामलों से संबंधित मतभेदों के बारे में दिए जाते हैं।

पहली अनुसूची विदेशी माध्यस्थम पंचाटों की मान्यता और उनके प्रवर्तन के बारे में न्यूयार्क कन्वेंशन का निर्देश करती है। दूसरी अनुसूची जनेवा कन्वेंशन तथा प्रोटोकॉल का। तीसरी अनुसूची विदेशी माध्यस्थम पंचाटों के निष्पादन के विषय में कन्वेंशन का निर्देश करती है।

यदि न्यूयार्क कन्वेंशन पंचाट और जनेवा कन्वेंशन पंचाटों की मान्यता और उनका निष्पादन भारतीय अधिनियम, 1996 के भाग-दो के अन्तर्गत आता है और इसके अन्तर्गत वे अन्तर्राष्ट्रीय पंचाट भी आते हैं जो भारत के बाहर दिए गए हों तो, भारत से बाहर पारित उन अन्तर्राष्ट्रीय पंचाटों की मान्यता और प्रवर्तन की क्या स्थिति होगी जो न्यूयार्क और जनेवा कन्वेंशन के अन्तर्गत नहीं आते हैं।

जैसाकि पहले पैर 2-6 में, जो धारा 2(2) और धारा 8 के बारे में है, पहले बताया जा चुका है कि भारत से बाहर ऐसे माध्यस्थम भी हो सकते हैं जो 1996 के अधिनियम के भाग-दो की परिधि में नहीं आते हैं जैसे कि जहां अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम करार वाणिज्यिक करार नहीं है या जहां करार लिखित में नहीं है या जहां एक पक्षकार उस देश का है जिसने न्यूयार्क और जनेवा कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए हैं।

तब क्या भारतीय अधिनियम की धारा 35 और 36 लागू करना आवश्यक नहीं होगा जो क्रमशः ऐसे पंचाटों के बाध्यकारी स्वरूप और प्रवर्तन के बारे में है जो न्यूयार्क तथा जनेवा कन्वेंशन के अन्तर्गत नहीं आते हैं और भारत से बाहर दिए जाते हैं? क्या इस कारण से बहुत से देश मॉडल विधि की धारा 8 और 9 ही लागू नहीं करते हैं अपितु देश से होने वाले अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम करारों के लिए मॉडल विधि के अनुच्छेद 35 और 36 को भी लागू करते हैं। तब क्या भारतीय अधिनियम की धारा 2(2) में यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि भारत से बाहर अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए धारा 8 और 9 तथा 35 लागू होंगी।

अधिकांश देशों की, जिनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है, विधियों में उन देशों से बाहर के माध्यस्थमों के तथा जहां माध्यस्थम का स्थान निश्चित न हुआ हो, के लिए भी मॉडल विधि के अनुच्छेद 8, 9, 35 और 36 लागू होते हैं। अतः ऐसी स्थितियों को विधि के अन्तर्गत लाने के लिए धारा 2(2) में संशोधन करना आवश्यक है।

इंग्लिश अधिनियम, 1996 में अधिक व्यापक रूप में प्रावधान किया गया है जिसमें न केवल अनुच्छेद 8, 9, 35 और 36 के समरूपी उपबंध लागू होते हैं (अर्थात धारा 9 से 11 और 66) अपितु इंग्लिश अधिनियम की धारा 43 और 44 भी जो क्रमशः "साक्षियों की उपस्थिति सुनिश्चित करने के बारे में है (भारतीय अधिनियम की धारा 27 के समरूप) और माध्यस्थ कार्यवाहियों में न्यायालय की प्रयोगनीय शक्ति के बारे में है। इसमें अन्य महत्वपूर्ण उपबंध अन्तर्विष्ट हैं। सुविधा के लिए हम इंग्लिश अधिनियम की धारा 2 की उपधारा 1 से 4 उद्धृत कर रहे हैं।

> "धारा (1) इस भाग के उपबंध उन मामलों के लिए लागू होंगे जिनमें माध्यस्थम का स्थान इंग्लैण्ड तथा वेल्स या उत्तरी आयरलैण्ड में है।
>
> (2) यदि माध्यस्थम का स्थान इंग्लैण्ड, वेल्स या उत्तरी आयरलैण्ड से बाहर भी है या कोई स्थान निश्चित या निर्धारित नहीं किया गया है तो निम्नलिखित धाराएं लागू होंगी:-
>
> (क) धारा 9 से 11 (विधिक कार्यवाहियों का व्यादेश आदि); और
>
> (ख) धारा 66 (माध्यस्थम पंचाटों का प्रवर्तन)
>
> (3) निम्नलिखित धाराओं द्वारा प्रदत्त शक्तियां व्यवहार्य होंगी चाहे माध्यस्थम इंग्लैण्ड, वेल्स या उत्तरी आयरलैण्ड से बाहर हो या माध्यस्थम का स्थान नियत या निश्चित न किया गया हो:-
>
> (क) धारा 43 (साक्षियों की उपस्थिति सुनिश्चित करना); और
>
> (ख) धारा 44 (माध्यस्थम कार्यवाहियों के बारे में न्यायालय की प्रयोगनीय शक्तियां)
>
> परन्तु ऐसी किसी शक्ति का प्रयोग करने से इंकार कर सकता है यदि न्यायालय के विचार में इस तथ्य की दृष्टि से ऐसा करना उपयुक्त नहीं होगा यदि माध्यस्थम का स्थान इंग्लैण्ड, वेल्स या उत्तरी आयरलैण्ड से बाहर हो या निर्धारित अथवा नियत किए जाने पर स्थान के इंग्लैण्ड, वेल्स या उत्तरी आयरलैण्ड से बाहर होने की संभावना है।

(4) न्यायालय इस भाग के किसी उपबंध द्वारा, जिसका उल्लेख उपधारा (2) या (3) में न किया गया हो, माध्यस्थम प्रक्रिया के समर्थन के प्रयोजन से प्रदत्त शक्ति का प्रयोग कर सकेगा जहां –

(क) जहां माध्यस्थम का स्थान नियत या निश्चित न किया हो; और

(ख) इंग्लैण्ड, वेल्स या उत्तरी आयरलैण्ड के साथ किसी प्रकार का संबंध होने के कारण न्यायालय इस बात से संतुष्ट हो कि ऐसा करना उपयुक्त हो।

(5) धारा 7 (माध्यस्थम करार की पृथकता) और धारा 8 (पक्षकार की मृत्यु) प्रवर्तनीय होंगी जहां, यदि माध्यस्थम का स्थान इंग्लैंड, वेल्स या उत्तरी आयरलैण्ड से बाहर भी है या नियत अथवा निश्चित नहीं किया गया है, माध्यस्थम करार से संबंधित विधि इंग्लैण्ड, वेल्स या उत्तरी आयरलैण्ड की विधि है

प्रश्न यह है कि क्या धारा 2(2) में लाया जाना चाहिए।

धारा 2 (2) इंग्लिश अधिनियम में एक और उपबंध अन्तर्विष्ट है जिसमें माध्यस्थम स्थान को परिभाषित किया गया है। प्रश्न यह है कि क्या ऐसा उपबंध भारतीय अधिनियम में भी पुरस्थापित किया जाना चाहिए ताकि माध्यस्थम के स्थान के बारे में विवादों से बचा जा सके? इंग्लिश अधिनियम की धारा 3 का पाठ निम्नलिखित है:-

"धारा 3 : इस भाग में "माध्यस्थम के स्थान" से माध्यस्थम का विधिक स्थान अभिप्रेत है जो--

(क) माध्यस्थम करार के पक्षकारों द्वारा; या

(ख) किसी मध्यस्थ या किसी संस्थान या व्यक्ति द्वारा जिसे इस संबंध में पक्षकारों ने शक्तियां दी हैं; या

(ग) पक्षकारों द्वारा इसलिए प्राधिकृत माध्यस्थम अधिकरण द्वारा, अभिहित या निश्चित किया गया है।

2.9 क्या अधिनियम में एक ऐसा उपबंध अन्तर्विष्ट होना चाहिए जिससे न्यायालय को, जिसके समक्ष वाद या अन्य कार्यवाही लम्बित, पक्षकारों द्वारा किए गए परवर्ती करारों पर विवादों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित करने का अधिकार हो या क्या ऐसा माध्यस्थम करार सदैव न्यायालय के समक्ष कार्यवाही प्रारम्भ होने से पूर्व समनवय होना चाहिए?

1940 के अधिनियम की धारा 21 के अधीन एक विशिष्ट प्रावधान था जिससे न्यायालय, वादों या कार्यवाहियों के लम्बित रहते हुए विवादों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित कर सकता था। वास्तव में, बहुत से मामलों में विचारण न्यायालय या कई वर्षों की मुकदमेबाजी के पश्चात, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय को, पक्षकारों के करारों के कारण माध्यस्थम के लिए निर्देशित कर रहे हैं ताकि आगे मुकदमेबाजी की अवधि को कम किया जा सके। इस प्रकार का उपबंधन होने के कारण बहुत सी गम्भीर कठिनाईयां पैदा हुई है।

उच्चतम न्यायालय ने एक बार उच्च न्यायलय से अपील में दायर किए गए सिविल वाद पी॰ आनन्दगजपति राजू बनाम पी॰वी॰जी॰ राजू (2000(4) एस॰सी॰सी॰ 539–ए॰ आई॰आर 2000 सुप्को॰ 1086) मामले में कार्यवाही की थी। एक अन्य मामले में, बिजली से जल कर हुई मृत्यु के कारण तमिलनाडु बिजली बोर्ड से क्षतिपूर्ति का दावा किया गया था, उच्चतम न्यायालय ने एक रिट याचिका में एक मध्यस्थ नियुक्त किया था। 1996 के अधिनियम के पश्चात न्यायालय ने मामले को माध्यस्थम के लिए निर्देशित किया है और पंचाट पारित हुआ जो बाद में डिक्री हुआ। इसे अपील द्वारा उच्चतम न्यायालय में चुनौती दी गई। बोर्ड का तर्क था कि उच्च न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 21 और 226 पर निर्भर करते हुए मध्यस्थम नियुक्त नहीं कर सकती थी। यह तर्क पी॰ आनन्दगजपति राजू मामले में तमिलनाडु बिजली बोर्ड बनाम सुमथी (2000(4) एस॰सी॰सी॰ 543–ए॰आई॰आर 2000 सुप्को॰ 1603) दिए गए निर्णय के अनुसरण में अस्वीकार कर दिया गया। उच्चतम न्यायलय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिनियम की धारा 8 न केवल वाद कार्यवाही के प्रारम्भ होने से पूर्व हुए करारों के लिए अपितु वादों या कार्यवाहियों के लम्बित रहते किए गए करारों के लिए भी लागू होती है।

उस सीमा तक समस्या का समाधान हो गया था परन्तु उच्चतम न्यायालय ने अभी भी यही अभिनिर्धारित किया कि 1996 के अधिनियम की धारा 2(1) (ङ) के अधीन पंचाट डिक्री को केवल उसी न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है जिसमें राहत के लिए दावा किया गया था। परिणाम यह होगा कि न्यायालय से बाद

में कार्यवाही नए ढंग से चलेगी जैसाकि धारा 2 (1) (ड.) में परिभाषित किया गया है और इसके पश्चात मामला उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय में जाएगा।

उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत उपर्युक्त मामले में, ऊपर बताई गई प्रक्रिया न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा 2 (ड़) की दी गई परिभाषा के कारण आवश्यक हो गई। वास्तव में 1940 के अधिनियम के अधीन धारा 21 में विचाराधीन मामलों में भी माध्यस्थम के लिए निर्देशित करने का विशिष्ट प्रावधान था और उस अधिनियम की धारा 2 (ग) ने "न्यायालय" की परिभाषा से धारा 21 को स्वीकार कर लिया ताकि पंचाट को चुनौती केवल उसी न्यायालय में दी जा सके जिसने मामला माध्यस्थम के लिए निर्देशित किया था

अत: ऐसा प्रतीत होता है कि देशी माध्यस्थम के प्रयोजनों से 1940 के अधिनियम की धारा 21 से धारा 25 तक, उपयुक्त संशोधनों के साथ, अधिनियमित किया जाना आवश्यक है और उक्त उपबंध को 1996 के अधिनियम की धारा 2 (ड.) से, जिसमें "न्यायालय" की परिभाषा दी गई है, स्वीकार किया जाना आवश्यक है।

वास्तव में, ब्रिटिश कोलम्बिया अधिनियम, 1996 की धारा 36 (जिसका डा॰पी॰सी॰ राव की टिप्पणी पृष्ठ 9 के अनुसार, अधिनियम बनाते समय अनुसरण किया गया) में पश्चातवर्ती माध्यस्थम करार के आधार पर, न्यायालय द्वारा माध्यस्थम के लिए निर्देश करने का उपबंध है अधिनियम की धारा 36 का पाठ निम्नलिखित है:-

"धारा 36 न्यायालय के आदेश द्वारा निर्देश-

(1) न्यायालय किसी भी समय आदेश कर सकेगा कि समस्त मामले का या कार्यवाही से उत्पन्न तथ्य के प्रश्न का आपराधिक कार्यवाही के अतिरिक्त, विचारण पक्षकारों द्वारा सहमत मध्यस्थ के समक्ष किया जाएगा, यदि-

(क) सभी पक्षकार इच्छुक, असमर्थता के अधीन नहीं, और सहमत हों;

(ख) कार्यवाही के दस्तावेजों की लम्बे समय तक जांच या वैज्ञानिक अथवा स्थानीय जांच, जो न्यायालय के विचार में ज्यूरी के समक्ष या न्यायालय द्वारा अपने अन्य साधारण अधिकारियों द्वारा सुविधापूर्वक नहीं कराई जा सकती, या

(ग) विवादास्पद प्रश्न पूर्णतया या आंशिक रूप से लेखा संबंधित प्रश्न है।

उक्त अधिनियम की धारा 36 के संबंध में धारा 37 से 43 तक में अनुषंगी उपबंध किए गए हैं।

2.10 क्या अधिनियम की धारा 34 (या धारा 37) में अपील करने का अधिकार करके (न केवल धारा 13 और 16 के अधीन) अंतरिम आदेशों के बारे में अपितु अन्य मामलों के बारे में भी संशोधन करना होगा और यदि हां, तो क्या इस प्रकार की नई व्यवस्था के अधीन देशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के माध्यस्थम आ जाएंगे?

पूर्ववर्ती पैराओं में, धारा 13 और 16 के अधीन मध्यस्थ के निर्णयों का निर्देश करते हुए यह बताया गया है कि धारा 34(2) और 37 अपील करने के अधिकार का उपबंध करते हुए उपर्युक्त संशोधन किया जाना चाहिए। उक्त संशोधन अन्तर्राष्ट्रीय तथा देशी दोनों प्रकार के मध्यस्थमों के लिए लागू होगा।

यह भी बताया गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में न्यायालय का पर्यवेक्षण न्यूनतम रहना चाहिए जैसाकि मॉडल विधि में है परन्तु जहां तक देशी माध्यस्थम का संबंध है, भारत में मध्यस्थों की, जो सदैव ही न्यायाधीश, अधिवक्ता या अनुभवी व्यापारी नहीं होते हैं अल्प योग्यता तथा अनुभव की कमी को ध्यान में रखते हुए गहन पर्यवेक्षण आवश्यक है। इस संबंध में रैडफर्न एण्ड हन्टर (लॉ एण्ड प्रैक्टिस ऑफ इन्टरनेशनल आर्बिट्रेशन, दूसरा संस्करण, पृष्ठ 14 व 15) निम्नलिखित उद्धरण दिया जा सकता है:-

"जिन देशों ने माध्यस्थम विधि विकसित की है उन सभी की यह मान्यता है कि अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में देशी माध्यस्थम में सामान्यतया अनुभव से अधिक स्वतंत्रता होनी चाहिए। कारण स्पष्ट है। देशी माध्यस्थ देश के न्यायालय के समक्ष कार्यवाही के विकल्प के रूप में उसी देश के नागरिक या निवासियों के मध्य होता है.....यह स्वाभाविक है कि देश अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम की तुलना में जो भौगोलिक सुविधा की दृष्टि से देश की सीमा के भीतर हो सकते हैं देशी माध्यस्थमों में अपेक्षाकृत दृढ़ नियंत्रण रखना चाहेगा (और आवश्यक भी होगा) जिनमें उनके अपने निवासी या नागरिक अन्तर्ग्रस्त होते हैं।"

अतः न्यायालय को देशी माध्यस्थम में अपील करने के प्रावधान द्वारा अतिरिक्त पर्यवेक्षण उपलब्ध कराना आवश्यक है परन्तु साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम पंचाटों में पर्यवेक्षण को सीमित रखना होगा। देश माध्यस्थम पंचाटों में सुदृढ़ नियंत्रण अनुपयुक्त है, जैसाकि उपर्युक्त पैरा में कहा गया है।

अब तक अपील करने के कतिपय अन्य आधारों का निर्देश करेंगे जिनका प्रावधान धारा 34 या 37 में किया जाना चाहिए।

2.10.1 धारा 34 (2) (iv) में केवल ऐसे मामले में आपत्ति दायर करने का प्रावधान है जहां पंचाट ऐसे विवाद के बारे में है जो माध्यस्थम करार की शर्तों में अवधारित नहीं है न ही शर्तों की अधीन आता है या उसमें ऐसे विषय पर निर्णय दिया गया है जो माध्यस्थम के लिए निर्देश किए जाने के विस्तार के परे है। तथापि, यह देखना होगा कि यदि किसी विवाद का निर्देश किया जाता है या पक्षकारों के बीच उत्पन्न हुए किसी विवाद का मध्यस्थ द्वारा निर्णय नहीं किया जाता है तो उसके लिए धारा 34 में कोई प्रावधान नहीं है। निःसंदेह धारा 33(4) में यह प्रावधान है कि पंचाट की प्राप्ति के 30 दिन की अवधि के भीतर पीड़ित पक्षकार प्रस्तुत किए गए दावे के बारे में जिस पर निर्णय नहीं दिया गया है, मध्यस्थ से अतिरिक्त पंचाट देने के लिए कह सकता है। परन्तु यह पर्याप्त समाधान नहीं है। यदि मध्यस्थ धारा 33(4) के अधीन दिए गए अपने निर्णय में इस तर्क को स्वीकार करने से इंकार कर देता है तो धारा 34 के अधीन किसी अन्य उपचार की व्यवस्था नहीं है। अतः इस संबंध में आपत्ति दायर करने हेतु विशिष्ट उपबंध करने की आवश्यकता है।

यह सच है कि मॉडल विधि में तथा बहुत से अन्य देशों की विधियों में भी इस प्रश्न के बारे में कोई प्रावधान नहीं किया गया है। फिर भी, हम अपने अधिनियम में ऐसा उपबंध कर सकते हैं।

धारा 34 के उपर्युक्त उपबंध देशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के माध्यस्थमों के लिए लागू होना चाहिए।

2.10.2 यद्यपि धारा 34 (2) (iv) में किसी ऐसे मामले के पंचाट के बारे में, जो आपत्ति प्रस्तुत करने की शर्तों के अन्तर्गत अवधारित नहीं है या शर्तों के अधीन नहीं आता है, आपत्ति प्रस्तुत करने का आधार प्रदान किया गया है फिर भी इसके अन्तर्गत वे सभी पहलु नहीं होते हैं जिनका अधिनियम की धारा 16 में विशिष्ट रूप से उल्लेख किया गया है जो मध्यस्थ को अपनी अधिकारिता, करार की विद्यमानता अथवा वैधता सहित, के बारे में निर्णय करने का अधिकार देते हैं।

अतः, जैसाकि पिछले अध्यायों में कहा जा चुका है, मध्यस्थ के निर्णय के बारे में अधिनियम की धारा 16 के अधीन विशिष्ट अपील का प्रावधान करना आवश्यक है।

यह संशोधन अन्तर्राष्ट्रीय पंचाटों के लिए भी लागू होना चाहिए।

2.10.3 यद्यपि अधिनियम की धारा 31 (3) में कारण बताने की अपेक्षा की गई है (जब तक कि अन्यथा सहमति या कोई समझौता न हो), धारा 34 के अधीन विशिष्ट रूप से ऐसा कोई मामला नहीं आता है जिसमें प्रत्येक विवाद के बारे में कोई कारण न बताया गया हो। केवल धारा 34(2)(क) उपखण्ड (ii) पक्षकार द्वारा पंचाट को चुनौती दिए जाने के बारे में है परन्तु यह पहलु भी इसके अन्तर्गत नहीं आता है। अतः धारा के अधीन पंचाट को अपास्त करने के लिए ऐसे आधार के लिए प्रावधान करना आवश्यक है।

यह आपत्ति अन्तर्राष्ट्रीय पंचाटों के लिए भी लागू होनी चाहिए।

2.10.4 मध्यस्थों के अवचार को, चाहे तथ्यात्मक हो या विधिक, एक विशिष्ट आधार नहीं बनाया गया है। धारा 34 (2) (क) (iii) में प्राकृतिक न्याय के उल्लंघन संबंधी कतिपय पहलु दिए गए है। धारा 34 (2) (क) (iv) एक ऐसी परिस्थिति के बारे में है जहां मध्यस्थ ऐसे विवादों के बारे में निर्णय करता है जो उसके प्राधिकार के विस्तार में नहीं आते हैं या उससे परे हैं। धारा 34 (2) (क) (ii) के अधीन निःसंदेह धोखाधड़ी और भ्रष्टाचार भारत में लोकनीति के उल्लंघन के विस्तार के अन्तर्गत आते हैं और यह पंचाट को अपास्त करने के लिए न्यायालय के लिए एक आधार हो सकता है। भारत के उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि किसी मध्यस्थ द्वारा अपनी बुद्धि का प्रयोग न किया जाना, जैसेकि (दांडसी साहू बनाम स्टेट ऑफ उड़ीसा (ए॰आई॰आर॰ 1990 सुप्रको॰ 1128) अन्य प्रकार के सभी अवचार हो सकते हैं जैसेकि भारत में न्यायालयों ने व्याख्या की है। यह कहा गया है कि न्यायाधीशों तथा अधिवक्ताओं और अनुभवी व्यापारियों को छोड़कर भारतीय मध्यस्थों की अन्तर्राष्ट्रीय मध्यस्थों के समकक्ष नहीं माना जा सकता।

इस प्रकार अपील के अवचार को भी धारा 34 या 37 में, जहां तक देशी माध्यस्थमों का संबंध है, एक आधार के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए।

इंग्लिश अधिनियम, 1996 में अवचार शब्द के प्रयोग के बजाए, पंचाट को अपास्त करने के लिए "गम्भीर अनियमितता" को एक आधार बनाया गया है। अनियमितता धारा 68(2) में दी गई है जो निम्नलिखित है (देशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए लागू होती है)–

(क) धारा 33 का पालन करने में अधिकरण की असफलता (अधिकारी का सामान्य कर्तव्य)।

(ख) अधिकरण द्वारा अपनी शक्तियों का अतिक्रमण (अपनी मूल अधिकारिता के अतिक्रमण की अपेक्षा अन्यथा) (देखें धारा 67)।

(ग) पक्षकारों द्वारा सहमत प्रक्रिया के अनुसार कार्यवाहियों के संचालन में अधिकरण की असफलता।

(घ) अधिकरण के समक्ष रखे गए सभी मामलों से निपटने में अधिकरण की असफलता।

(ङ) कार्यवाहियों के संचालन या पंचाट के बारे में पक्षकारों द्वारा किसी माध्यस्थम या अन्य संस्थान या व्यक्ति को दी गई शक्तियों का उसके द्वारा अतिक्रमण।

(च) पंचाट के प्रभाव के बारे में अनिश्चितता या संदिग्धता।

(छ) धोखाधड़ी से प्राप्त किया गया पंचाट या उसे प्राप्त करने की पद्धति लोकनीति के विपरीत रही हो।

(ज) पंचाट के स्वरूप के बारे में आवश्यकताओं का पालन करने में असफलता; या

(झ) अधिकरण द्वारा अपनाई गई कार्यवाही के संचालन में या पंचाट में किसी प्रकार की अनियमितता या कार्यवाहियों या पंचाट के लिए पक्षकारों ने जिस माध्यस्थम या अन्य संस्थान या व्यक्ति को शक्तियां दी है उसके द्वारा की गई अनियमितता।

धारा 68(3) में या तो पंचाट के उसके समग्र रूप में या आंशिक रूप में विप्रेषित करने या पंचाट को समग्र रूप में या आंशिक रूप में अपास्त घोषित करने या पंचाट को उसके समग्र या आंशिक रूप में निष्प्रभावी घोषित करने का उपबंध किया गया है।

प्रश्न यह है कि क्या "अवचार" को उपर्युक्त सभी या कुछ तत्वों को सम्मिलित करने के उद्देश्य से परिभाषित किया जाना चाहिए।

तथापि, यह सुझाव दिया गया है कि "अवचार" को धारा 34 में देशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के पंचाटों के लिए, इंग्लैण्ड में धारा 68 में गम्भीर अनियमितता के अन्तर्गत देशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के माध्यस्थम आ जाते हैं।

2.10.5 1940 के अधिनियम की धारा 16(1)(ग) के अधीन किसी पंचाट को अपास्त या माध्यस्थों को विप्रेषित किया जा सकेगा यदि "पंचाट की वैधता के बारे में पंचाट को देखते ही अपत्ति स्पष्ट दिखती है"।। जहां तक वर्तमान अधिनियम की धारा 34 का संबंध है पंचाट में प्रतीत होने वाली विधिक त्रुटि को पंचाट को अपास्त करने का आधार नहीं बनाया गया है।

यद्यपि 1940 के अधिनियम की धारा 16(1)(ग) के अधीन किसी पंचाट को पंचाट की वैधता के बारे में स्पष्ट आपत्ति होने पर अपास्त या विप्रेषित किया जा सकेगा परन्तु 1940 के अधिनियम की धारा 30 के अधीन पंचाट को अपास्त करने के लिए स्पष्ट आधार, अर्थात "पंचाट को देखते ही विधिक त्रुटि के स्पष्ट होने" को विधिक आधार नहीं बनाया गया था फिर भी इसे पंचाट को अपास्त करने के लिए न्यायिक मान्यता दी गई थी।

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त सिद्धान्त के प्रति न्यायाधीश-निर्मित-विधि द्वारा एक अपवाद जोड़ा गया है। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने (बोल्के धर (प्राइवेट) लिमिटेड बनाम यूनियन ऑफ इन्डिया, ए०आई०आर० 1965 कलकत्ता 424), हागकिंसन एण्ड एब्सालम मामलों पर निर्भर करते हुए क्रमशः (1857 2सी०बी० (एन०एस०) 189 और (1933 एस०सी० 592) यह अभिनिर्धारित किया कि "जहां विवाद माध्यस्थ को निर्देशित किए जाते है वहां ऐसे मामले को बनाए रखना आवश्यक हो जाता है, जिसके निर्णय में विधि का प्रश्न उस मामले से भिन्न हो जाता है जिसमें कि निर्णय हेतु एक विशिष्ट विधि का प्रश्न मध्यस्थ को निर्देशित किया गया है।

.......पहले मामले में न्यायालय हस्तक्षेप कर सकेगा जब कभी विधि संबंधी कोई त्रुटि पंचाट को देखने से प्रकट होती है परन्तु बाद वाले मामले में इस प्रकार का हस्तक्षेप संभव नहीं है।

.......जब निर्देश विधि के किसी विशिष्ट प्रश्न पर किया जाता है और इस प्रकार का है जिसका यह अर्थ लगाया जा सकता है कि पक्षकार न्यायालय में जाने का अपना अधिकार छोड़ देना चाहते हैं और उसके बजाए उस प्रश्न को निर्णय हेतु स्वयं अधिकरण को सौंपना चाहते हैं तो ऐसे निर्णय को चुनौती नहीं दी जा सकेगी।''

अपर गैंजेज वैली इलैक्ट्रिसिटी सप्लाई कम्पनी लिमिटेड बनाम यू०पी० इलैक्ट्रिसीटी बोर्ड ए०आई०आर (1973 सु०को० 683) मामले में उच्चतम न्यायालय ने (ए०आई०आर 1971 सु०को० 696) का निर्देश करते हुए यह अधिनिर्धारित किया कि ''इसलिए, यह स्पष्ट हो जाता है कि पंचाट को अपास्त करने के लिए अपीलार्थी का आवेदन तभी सफल हो सकता है जब पंचाट को देखते ही विधि संबंधी त्रुटि दृष्टिगत होती हो''। इसी प्रकार कोयम्बतूर डिस्ट्रिक्ट पी०टी० संगम बनाम बालासुब्रमनियन फाउंड्री, ए०आई०आर 1987 सु०को० 2045 मामले में यह अधिनिर्धारित किया गया कि कोई पंचाट तभी अपास्त किया जा सकेगा जब उसे देखने पर विधि संबंधी त्रुटि प्रतीत होती हो परन्तु मध्यस्थ द्वारा तथ्य संबंधी कोई गलती न की गई हो।

मैसर्स एलन बैरी एण्ड कम्पनी बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया, ए०आई०आर 1971 सु०को० 696 मामले में उच्चतम न्यायालय ने होगकिंसन बनाम फरनी 1857 (3) सी०बी०(एन०एस) 189 मामले के टिप्पणियों का निम्नलिखित प्रभाव से निर्देश किया:-

''जहां कोई मतभेदग्रस्त विषय या मामला किसी मध्यस्थ को निर्देशित किया जाता है, चाहे अधिवक्ता हो या साधारण व्यक्ति, वह विधि और तथ्य सभी प्रकार के प्रश्नों का एकमात्र और अंतिम निर्णायक हो जाता है इस नियम के अपवाद केवल वे मामले हैं जहां पंचाट भ्रष्टाचार या धोखाधड़ी के परिणामस्वरूप दिया गया है और एक अन्य, जो यद्यपि खेदपूर्ण है, मेरे विचार में, अब निश्चित हो गया है, अर्थात जहां पंचाट को देखते ही, या पंचाट के साथ संलग्न पत्र या उसके किसी पृष्ठ से विधि का प्रश्न आवश्यक रूप से उठता है।''

न्यायालय को ऐसे पंचाट को विखंडित करने की शक्ति प्रदान की गई है जहां पंचाट को देखते ही पंचाट की वैधता के बारे में आपत्ति उठती हो। तद्नुसार, 1996 के अधिनियम की धारा 34(2)(क) के अधीन मध्यस्थ पंचाट को अपास्त करने के लिए निम्नलिखित आशय का एक आधार स्पष्ट रूप से जोड़ने की आवश्यकता है:-

''(vii) जहां तक देशी माध्यस्थम का संबंध है, जब तक विधि के प्रश्न को मध्यस्थ द्वारा निर्णय के लिए निर्देशित किए जाने हेतु पक्षकार सहमत नहीं हो जाते, जहां विवादों के संबंध में जो मध्यस्थ को निर्देशित किए जाते हैं जिसके निर्णय में विधि का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है, पंचाट को देखते ही, या पंचाट के साथ संलग्न किसी पत्र से या पंचाट के किसी पृष्ठ से, विधि संबंधी त्रुटि स्पष्ट प्रतीत होती है।''

अतः जहां तक देशी माध्यस्थम का संबंध है इस आधार को सम्मिलित करना आवश्यक होगा।

एक अन्य प्रश्न यह उठता है कि क्या ''विधि की त्रुटि'' धारा 34(2)(ख)(17) में निर्देशित ''लोकनीति'' जैसे शब्दों के अर्थ के अन्तर्गत आ जाएगी?

जहां तक धारा 34(2)(ख)(ष्प) का संबंध है, यह भारत की लोकनीति का निर्देश करती है। रेनू सागर पावर कम्पनी लिमिटेड बनाम जनरी इलैक्ट्रिक कम्पनी ए०आई०आर 1994, सु०को० 860-888, मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार कोई पंचाट मात्र विधि के विपरीत होने के कारण ही भारत की लोकनीति के विपरीत नहीं होगा। यह निष्कर्ष जनेवा कन्वेंशन के अनुच्छेद 1(ङ) और प्रोटोकॉल और कन्वेंशन एक्ट 1937 की धारा 7(1), जिसमें ''देश की लोकनीति'' शब्दों के साथ ''देश की विधि'' शब्दों का प्रयोग किया गया है, के तुलनात्मक अध्ययन के परिणामस्वरूप निकाला गया है न्यूयार्क कन्वेंशन में ऐसे शब्द नहीं पाए जाते हैं, जिस पर रेनू सागर मामले में विचार किया गया। मॉडल विधि और धारा 34(2)(ख)(ii) में केवल ''भारत की लोकनीति'' शब्दों को प्रयोग किया गया है और इसके साथ ''देश की विधि'' के उल्लंघन को निर्देश नहीं किया गया है। इसलिए, उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय किया कि भारत की लोकनीति में विधि संबंधी त्रुटि को शामिल नहीं किया जाएगा अपितु केवल—

1. भारत की मूलभूत नीति,

2. भारत का हित,

3. न्याय या नैतिकता,

शामिल किया जाएगा।

मामले के तथ्यों में "फेरा" का तथा दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेशों का उल्लंघन "भारत की लोकनीति" का उल्लंघन माने गए। ब्याज पर ब्याज तथा क्षतिपूर्ति पर क्षतिपूर्ति को "भारत की लोकनीति" का उल्लंघन नहीं माना गया।

अतः इस बात पर विचार करना आवश्यक हो जाता है कि, जहां तक देशी माध्यस्थमों का संबंध है, पंचाट को देखते ही स्पष्ट प्रतीत होने वाली विधि संबंधी त्रुटि को धारा 34(2) के अधीन आपत्ति का एक आधार माना जाना चाहिए।

2.11 विधि के प्रश्न पर अपना मत व्यक्त करने की न्यायालय की शक्ति

1940 के अधिनियम की धारा 14(3) में यह उपबंधित है कि जहां मध्यस्थ या अधिनिर्णायक धारा 13 के खण्ड (ख) के अधीन जहां किसी विशेष मामले का उल्लेख करता है, पक्षकारों को नोटिस देने तथा उसके पक्षों की सुनवाई करने के पश्चात, वहां वह उस पर अपना मत उद्घोषित करेगा और ऐसा मत पंचाट में जोड़ा जाएगा और उसका एक भाग होगा। यहां मध्यस्थ न्यायालय में आवेदन करेगा।

1996 के अधिनियम में इसके अनुरूप कोई उपबंध नहीं है। यह वांछनीय होगा कि वर्तमान अधिनियम में ऐसा उपबंध किया जाए।

2.12 उपांतरण तथा विशेषण

1940 के अधिनियम की धारा 15 के अधीन पंचाट के उपांतरण का उपबंध किया गया था यदि पंचाट का कोई भाग निर्देश न किए गए किसी मामले के बारे में प्रतीत होता था या जहां अपने स्वरूप में उचित नहीं था या उसमें कोई प्रत्यक्ष त्रुटि या लिपिकीय या कोई आकस्मिक चूक थी।

1996 के अधिनियम की धारा 33(1)(क) के अधीन पंचाट में होने वाली लिपिकीय संगणात्मक त्रुटियों या इसी प्रकार की अन्य त्रुटियों को ठीक करने का उपबंध किया गया है परन्तु न्यायालय को कोई शक्ति नहीं दी गई थी जैसाकि 1940 के अधिनियम की धारा 15 में उपबंधित था।

प्रश्न यह है कि क्या उपस्थित होने या आपत्ति दायर करने का अधिकार धारा 33 के अधीन आदेश पर दिया जाना चाहिए।

2.13 माध्यस्थम के अधिक्रमण की शक्ति

पुराने अधिनियम के अधीन न्यायालय को कतिपय परिस्थितियों में माध्यस्थम करार के अधिक्रमण की शक्ति प्राप्त है-जैसे, जहां पंचाट धारा 16(3) के अधीन शून्य या अपास्त हो गया है। धारा 16(3) के अधीन कोई पंचाट, जो धारा 16 की उपधारा (1) के अधीन विशेषित किया गया हो, मध्यस्थ या अधिनिर्णायक के उस पर निर्धारित समय के भीतर विचार करने और अपना निर्णय देने में असफल रहने पर यह पंचाट शून्य हो जाता है। कभी कभी, यदि नामित मध्यस्थ गम्भीर अवचार के दोषी पाए जाते हैं तो न्यायालय ने निर्णय किया है कि मामला माध्यस्थ के लिए विशेषित करना वांछनीय नहीं होगा। ऐसे मामले में, पुराने अधिनियम के अधीन निदेश का भी अधिक्रमण किया जा सकेगा और पक्षकार वाद दायर करने के लिए स्वतंत्र होंगे।

1996 के अधिनियम में माध्यस्थम खण्ड के अधिक्रमण का कोई प्रावधान नहीं है। इंग्लिश अधिनियम में भी ऐसा कोई उपबंध नहीं है। प्रश्न यह है कि क्या निदेश के अधिक्रमण के लिए कोई उपबंध करना आवश्यक होगा।

2.14 अल्पमत मध्यस्थ की विसम्मति

1996 के अधिनियम की धारा 31(2) के अन्तर्गत यह कहा गया है कि "जब किसी हस्ताक्षर के लोपन का कारण नहीं बताया जाता" तब तक सदस्यों के बहुमत में हस्ताक्षर पर्याप्त होंगे। धारा 29(1) में कहा गया

है कि जब तक अन्यथा सहमति न हो, एक से एक अधिक सदस्यीय माध्यस्थम अधिकरण का निर्णय उसके सदस्यों के बहुमत से होगा।

इससे यह प्रश्न उठता है कि क्या कोई मध्यस्थ, जो अल्पमत में है, पंचाट पर हस्ताक्षर करने से बच सकता है। यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि धारा 31 (9) (2) में संशोधन किया जाए और यह व्यवस्था की जाए कि विसम्मति रखने वाले सदस्य को अपनी विसम्मति रखने का अधिकार होगा और इसे पंचाट का अनुबंध माना जाएगा। यदि विसम्मति पंचाट के साथ संलग्न की जाती है तो उस न्यायालय को भी जिसके समक्ष यह प्रसंगत हो, अपनी विसम्मति देने का लाभ प्राप्त होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम में यह निर्धारित विधि प्रतीत होती है कि विसम्मति पंचाट का कोई भाग नहीं होती और यदि विसम्मति दी भी जाती है, तो यह जानकारी के रूप में रिकार्ड पर रहती है (देखें फाकहार्ड आदि 1999 पृष्ठ 1403) जब तक कि माध्यस्थम नियमों में अन्यथा व्यवस्था न की गई हो। आई॰ सी॰ सी॰ माध्यस्थमों में विसम्मति की जांच अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम न्यायालय द्वारा नियमों के अनुच्छेद 27 के अधीन नहीं की जाती है, क्योंकि न्यायालय विसम्मति को मात्र जानकारी के रूप में लेता है।

वर्तमान उपबंध पर्याप्त प्रतीत होता है और इसमें किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है।

2.15 रिकार्ड के प्रयोजन से पंचाट को न्यायालय में प्रस्तुत किया जाना (धारा 31 में उपर्युक्त संशोधन करना होगा) और न्यायालय पंचाट का प्रवर्तन करते समय धारा 36 के अधीन डिक्री, इस बात की जांच करेगा कि क्या पंचाट स्टाम्प शुल्क तथा पंजीकरण शुल्क के बारे में संगत नियमों का पालन किया गया है।

1940 के अधिनियम के अधीन पंचाट को न्यायालय में माध्यस्थों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है और न्यायालय इसे न्यायालय का नियम बनाने से पूर्व यह सुनिश्चित करने के लिए इसकी जांच करेगा कि पंचाट में स्टाम्प तथा रजिस्ट्रेशन संबंधी सभी उपबंधों का पालन किया गया है। इसके अतिरिक्त, पंचाट के न्यायालय में रहते पंचाट की तिथि या इसकी विषय-वस्तु में कोई फेरबदल करने की कोई गुंजाइश नहीं रहती।

1996 के अधिनियम में धारा 36 में यह कहा गया है कि धारा 34 के अधीन माध्यस्थम पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन करने का समय बीत जाने के पश्चात या समय बीत जाने पर किए गए आवेदन को अस्वीकार कर दिए जाने पर पंचाट सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अधीन उसी प्रकार प्रवर्तित होगा जैसे कि न्यायालय की डिक्री। इसे किसी भी न्यायालय में दायर करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

यह बताया गया है कि न्यायालय या अन्य प्राधिकरण के समक्ष मूलतः पारित किए गए पंचाट का कोई रिकार्ड होना चाहिए और मध्यस्थों से प्राप्त हुए पंचाटों का रजिस्ट्रेशन क्रम संख्यानुसार रखा जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि पंचाट के सभी पृष्ठों पर मोहर लगाई जाएगी और न्यायालय के पीठासीन या मंत्रालयी अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे। इससे पंचाट की प्रधाणिकता सिद्ध हो सकेगी और पंचाट के पारित किए गए रूप – विषय-वस्तु तथा तिथि आदि के बारे में किसी भी विवाद से बचा जा सकेगा। इस प्रकार धारा 31 में उपर्युक्त संशोधन किया जाना चाहिए।

जहां तक अधिनियम की धारा 36 के अधीन पंचाट के प्रवर्तन का संबंध है, एक यह सुझाव दिया गया है कि जब तक यह स्टाम्प तथा रजिस्ट्रीकरण के संबंधित उपबंधों के अनुरूप नहीं है, न्यायालय इसको प्रवर्तन नहीं करेगा। यह भी बताया गया है यदि मात्र इस कारण से कि विधि द्वारा न्यायालय की डिक्री के रूप में इसके प्रवर्तन की अनुमति है, तो यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि पंचाट के लिए लागू होने वाले स्टाम्प तथा रजिस्ट्रीकरण नियमों का पालन किया जाना इसके लिए आवश्यक नहीं होगा।

यहां यह देखा जा सकेगा कि मूलतः मध्यस्थ एक पंचाट पारित करते हैं। धारा 36 में उल्लिखित समय सीमा के बीत जाने पर या पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन करने का समय बीत जाने पर यह निर्देशित किया जाता है कि यह डिक्री के रूप में प्रवर्तनीय है। इस प्रकार धारा 36 में संशोधन करके यह स्पष्ट किया जाना चाहिए कि डिक्री के रूप में पंचाट के प्रवर्तन के लिए न्यायालय इस बात की जांच करेगा कि क्या पंचाट के रूप में यह स्टाम्प तथा रजिस्ट्रीकरण नियमों के अनुरूप है और उन नियमों का पालन किया जाना डिक्री के रूप में इसके प्रवर्तन के लिए पुरोभाव्य शर्त होगी।

2.16 नामित मध्यस्थ की स्वतंत्रता या निष्पक्षता या निर्धरता: करार के किसी एक पक्ष के साथ संबंध और प्राधिकार का प्रतिसंहरण।

आज सरकारी/सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की संविदाओं में यह एक सामान्य बात हो गई है कि ठेकेदार तथा विभाग के बीच मतभेद पैदा होने पर विभाग अपने किसी अधिकारी को मध्यस्थ नियुक्त कर सकता है। उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार के उपबंध को वैध ठहराया है। सैक्रेट्री बनाम भुनिस्वामी 1988 सप्ली० एस० सी० सी० 651 और मन्दयाल कारपोरेशन शिपिंग मिल्स बनाम के० वी० मोहन 1993 (2) एस० सी० सी० 654। पहले ऐसी इंग्लिश विधि थी थी।

परन्तु ब्रिटेन अधिनियम, 1950 की धारा 24 में, न्यायालय को राहत मंजूर करने की शक्ति प्रदान की गई थी, जहां मध्यस्थ निष्पक्ष नहीं था। धारा 24(1) में निम्नलिखित कहा गया है:–

"धारा 24(1) जहां किन्हीं पक्षकारों के बीच किसी करार में यह प्रावधान है कि उनके बीच भविष्य में जो भी विवाद होंगे वे किसी मध्यस्थ को निर्देशित किए जाएंगे जिसे करार में नामित या अभिहित किया जाएगा, और विवाद उत्पन्न होने के पश्चात कोई भी पक्षकार इस आधार पर मध्यस्थ के प्राधिकार को समाप्त करने की अनुमति के लिए या किसी अन्य पक्षकार या मध्यस्थ को माध्यस्थम कार्यवाही आगे बढ़ाने के विरुद्ध व्यादेश प्राप्त करने के लिए, आवेदन कर सकेगा कि नामित या अभिहित मध्यस्थ निष्पक्ष नहीं है या नहीं हो सकेगा और आवेदन को इस आधार पर अस्वीकार नहीं किया जा सकेगा कि उक्त पक्षकार ने करार करते समय करार यह जानता था या जानना चाहिए था कि मध्यस्थ किसी अन्य पक्षकार का संबंधी होने के कारण या निर्देशित विषय से उसका संबंध होने के कारण वह निष्पक्ष नहीं हो सकेगा।"

आई० सी० सी० नियमों में भावी मध्यस्थ से यह अपेक्षा की गई है कि वह प्रकट करेगा–

"क्या किसी पक्षकार या उसके किसी काउंसिल के साथ विगत या वर्तमान में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, वित्तीय या व्यवसायिक या अन्य प्रकार के कोई संबंध थे/हैं और क्या ऐसे संबंध इस प्रकार के हैं कि उनका प्रकटन, मानदंड के अनुसरण में इस प्रकार के है कि पक्षकारों की दृष्टि में उसकी निष्पक्षता के बारे में कोई प्रश्न उठता हो, आवश्यक है।"

कतिपय विधियों में केवल निष्पक्ष का निर्देश किया गया है, जैसाकि यू० के० एक्ट, 1996, जबकि मॉडल विधि के अनुच्छेद 12(2) में निष्पक्षता और स्वतंत्रता का निदेश किया गया है। भारतीय अधिनियम की धारा 12(1) में दोनों का निर्देश है।

फाकहार्ड तथा अन्य (1999) (देखें पैरा 1028) ने कहा है कि "निष्पक्षता" मस्तिष्क की एक स्थिति है जबकि स्वतंत्रता तथ्य या विधि की स्थिति है। निष्पक्षता कतिपय मामलों में एक ऐसा पहलू हो सकती है जिससे स्वतंत्र निर्णय प्रभावित होता है। किसी सीमा तक ये एक दूसरे का अतिक्रमण करती हैं। स्वीडिश माध्यस्थम अधिनियम की धारा 8 में निष्पक्षता के तीन पहलू बताए गए है:–

(1) जब मध्यस्थ या उससे निकट रूप में सम्बद्ध कोई व्यक्ति पक्षकार है, या विवाद के निष्कर्ष के परिणामस्वरूप अन्यथा किसी प्रकार के महत्वपूर्ण लाभ या अपकार की अपेक्षा करता है;

(2) जहां मध्यस्थ एक ऐसा व्यक्ति है जो उससे निकट रूप में संबंधित कम्पनी का निदेशक या किसी अन्य प्रकार से संबंधित पक्षकार, या पक्षकार का या किसी ऐसे अन्य व्यक्ति अन्यथा प्रतिनिधित्व करता हो जो विवाद के निष्कर्ष के परिणामस्वरूप किसी महत्वपूर्ण लाभ या अपकार की अपेक्षा रखता है;

(3) जहां मध्यस्थ ने विवाद में किसी विशेषज्ञ की या अन्यथा कोई स्थिति धारण की है या विवाद में उसका मामला तैयार करने या कार्यवाही के संचालन में किसी पक्षकार से संबद्ध किया हो।

फ्रांस के न्यायालयों ने स्वतंत्रता का उल्लेख निम्नवत किया है (वही पैरा 1029)—

"किसी मध्यस्थ की स्वतंत्रता न्यायिक रूप में उसकी भूमिका के लिए अनिवार्य है, क्योंकि उसमें वह समय-समय पर अपनी नियुक्ति के समय न्यायाधीश का स्तर अवधारित करता है जिसमें, विशेषतया पक्षकारों के साथ, किसी प्रकार की निर्धरता का संबंध वर्जित है। इसके अतिरिक्त, उस स्वतंत्रता को

चुनौती देने वाली परिस्थितियों में पारस्परिक या बौद्धिक संबंधों का विद्यमान होना अनिवार्य है क्योंकि यह एक ऐसी स्थिति होगी जिसमें माध्यस्थम के किसी पक्षकार के पक्ष में पक्षपात के निश्चित जोखिम से माध्यस्थम का निर्णय प्रभावित हो सकेगा।"

फाकहार्ड तथा अन्य ने पैरा 1030 में कहा है कि निम्नलिखित परिस्थितियों में बहुत से मामलों में मध्यस्थों को निष्पक्ष नहीं ठहराया गया है:-

(1) जहां माध्यस्थम कार्यवाहियों के समय किसी मध्यस्थ को, माध्यस्थम के किसी पक्षकार को परामर्श या तकनीकी सहायता देने के लिए व्यक्तिगत रूप में कोई भुगतान किया गया हो;

(2) करार, जिसमें प्रतिस्थापित मध्यस्थ के रूप में नियुक्त हुआ है, की प्रस्तुति पर हस्ताक्षर करने के समय मध्यस्थ किसी ऐसी कम्पनी के वैतनिक परामर्शदाता के रूप में कार्य कर रहा था जो माध्यस्थम की एक पक्षकार थी;

(3) जहां मध्यस्थ को किसी पक्षकार द्वारा मध्यस्थ के रूप में अपना निर्णय देने के पश्चात उसी दिन अपने संस्थान में नियुक्त किया गया हो।

फ्रांस के न्यायालयों ने स्वतंत्रता का उल्लेख निम्नवत किया है (वही पैरा 1029)—

"किसी मध्यस्थ की स्वतंत्रता न्यायिक रूप में उसकी भूमिका के लिए अनिवार्य है, क्योंकि उसमें वह समय-समय पर अपनी नियुक्ति के समय न्यायाधीश का स्तर अवधारित करता है जिसमें, विशेषतया पक्षकारों के साथ, किसी प्रकार की निर्भरता का संबंध वर्जित है। इसके अतिरिक्त उस स्वतंत्रता को चुनौती देने वाली परिस्थितियों में पारस्परिक या बौद्धिक संबंधों का विद्यमान होना अनिवार्य है क्योंकि यह एक ऐसी स्थिति होगी जिसमें माध्यस्थम के किसी पक्षकार के पक्ष में पक्षपात के निश्चित जोखिम से माध्यस्थम का निर्णय प्रभावित हो सकेगा।"

फाकहार्ड तथा अन्य ने पैरा 1030 में कहा है कि निम्नलिखित परिस्थितियों में बहुत से मामलों में मध्यस्थों को निष्पक्ष नहीं ठहराया गया है:-

(1) जहां माध्यस्थम कार्यवाहियों के समय किसी मध्यस्थ को, माध्यस्थम के किसी पक्षकार को परामर्श या तकनीकी सहायता देने के लिए व्यक्तिगत रूप में कोई भुगतान किया गया हो;

(2) करार जिसमें प्रतिस्थापित मध्यस्थ के रूप में नियुक्त हुआ है, की प्रस्तुति पर हस्ताक्षर करने के समय मध्यस्थ किसी ऐसी कम्पनी के वैतनिक परामर्शदाता के रूप में कार्य कर रहा था जो माध्यस्थम की एक पक्षकार थी;

(3) जहां मध्यस्थ को किसी पक्षकार द्वारा मध्यस्थ के रूप में अपना निर्णय देने के पश्चात उसी दिन अपने संस्थान में नियुक्त किया गया हो।

यह सिद्धान्त मध्यस्थ की स्वतंत्रता या निष्पक्षता के बारे में किसी पक्षकार के न्यायोचित संदेह पर आधारित है। मॉडल विधि में न्यायोचित संदेह शब्द का प्रयोग किया गया है (अनुच्छेद 12(11)। यह न्यायोचित व्यक्ति का न्यायोचित संदेह है।

अमेरिका में देशी माध्यस्थम में (और जैसाकि वाणिज्यिक माध्यस्थम नियम में स्वीकार गया है), यदि प्रत्येक पक्षकार एक मध्यस्थ नियुक्त करेगा तो उन्हें तटस्थ नहीं माना जाएगा और स्वतंत्रता का सिद्धान्त गैर-तटस्थ मध्यस्थों के लिए लागू होता है। अन्य देशों में यह दृष्टिकोण तथा इसके विरोधी दृष्टिकोण प्रचलित है। तथापि, अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों में, यदि प्रत्येक पक्षकार एक मध्यस्थ नियुक्त करेगा तो उन्हें तटस्थ तथा स्वतंत्र रहना होगा (वही पैरा 1043-1044)। उपर्युक्त सिद्धान्त विभिन्न देशों में नैतिक नियमों के ही अंश है।

" टिप्पणीकर्ताओं ने पक्षकारों पर डाले जाने वाले दबाव के बारे में बताया है। निष्पक्षता की अपेक्षा को समाप्त करते है, सरकार द्वारा नामित मध्यस्थ के रूप में नियुक्त व्यक्ति और अधिवक्ता, ताकि पक्षकार, यदि चाहते हों, तो किसी पक्ष के समर्थक व्यक्ति को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त कर सकें।"

हम अपनी चर्चा देशी माध्यस्थम तक सीमित रखेंगे। एक यह विचार व्यक्त किया गया है कि सरकार या सार्वजनिक क्षेत्र के किसी उपक्रम में या सरकारी कम्पनी में या सांविधिक निगमों में माध्यस्थम कार्यवाही के संचालन के लिए विभागीय अधिकारी की वर्तमान प्रणाली को अनुमति दी जा सकती है।

जहां तक अन्य पक्षकारों का संबंध है (जो सरकारी या सार्वजनिक क्षेत्र के निगम नहीं है) प्रश्न यह उठता है कि क्या जैसाकि उपर्युक्त निकायों के मामले में है, वही प्रक्रिया अपनाई जाएगी या प्राइवेट पक्षकारों को अपने या अपने साथ कारोबारी संबंध रखने वाले व्यक्ति को मध्यस्थ नियुक्त करने से पूर्णतया प्रतिषेधित रखा जाना चाहिए। बाद के मामले में इस प्रकार का भेद विधि सम्मत केवल उन मामलों में ही हो सकता है जहां दोनों पक्षकार प्राइवेट है क्योंकि प्राइवेट निगमों या निकायों के कर्मचारियों को उनके सेवाकाल की उतनी सुरक्षा और सांविधिक संरक्षण प्राप्त नहीं है जितनी की सरकार या सार्वजनिक निगम के कर्मचारियों को।

सुझाव यह है कि धारा 13 में दी गई चुनौती की प्रक्रिया उपर्युक्त प्रक्रिया के अध्यधीन लागू होगी।

1.17 देशी माध्यस्थमों को पूरा करने के लिए समय-सीमा और शुल्क के उल्लेख के संबंध में मार्गदर्शी सिद्धान्त।

1940 के अधिनियम के अधीन पंचाट पारित किए जाने के लिए, पक्षकारों द्वारा न्यायालय से समय बढ़ाए जाने की मांग के अध्यधीन निदेश करने की तिथि से चार महीने की अवधि के अधीन समय बढ़ा सकता था। यह व्यवस्था देशी माध्यस्थम के लिए लागू थी।

आयोग ने माध्यस्थम पर अपनी 76वीं रिपोर्ट में अन्य बातों के साथ-साथ यह सिफारिश की थी कि धारा 28 के नीचे एक उपबंध जोड़ा जाना चाहिए ताकि यह प्रावधान किया जा सके कि मध्यस्थों के निदेश पर कार्य आरम्भ करने के पश्चात पंचाट देने में एक वर्ष से अधिक समय की अनुमति न हो जब तक कि न्यायालय विशेष तथा पर्याप्त कारणों से जो लिखित में रिकार्ड किए जाएं, इस बात से संतुष्ट न हो कि समय बढ़ाना आवश्यक है। तदनुसार आयोग ने धारा 28 के नीचे निम्नलिखित उपबंध जोड़ने की सिफारिश की थी:-

> "परन्तु यह कि किसी विस्तार की अनुमति नहीं होगी जिससे निदेश पर कार्य प्रारम्भ करने के पश्चात पंचाट देने के लिए एक वर्ष से अधिक समय की अनुमति हो सके जब तक कि न्यायालय, विशेष तथा पर्याप्त कारणों से जो लिखित में रिकार्ड किए जाएं, इस बात से संतुष्ट न हो कि ऐसा विस्तार आवश्यक है।"

1996 के अधिनियम में, देशी या अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थम पंचाट पारित करने के लिए, कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गयी है।

प्रश्न यह है कि, जहां तक देशी माध्यस्थम का संबंध है, क्या कोई समय-सीमा रखी जाए (आई०सी०सी० नियमों के अधीन अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों के लिए समय-सीमा निर्धारित की जाती है परन्तु मॉडल विधि में कोई समय-सीमा निर्धारित नहीं की गई है)

पक्षकारों के दृष्टिकोण से किसी भी प्रकार के माध्यस्थम में, समय का प्रश्न महत्वपूर्ण है पक्षकार माध्यस्थम के शीघ्र पूरा होने की आशा करते हैं और उन्हें न्यायालयों में होने वाले विलम्ब की भांति पीड़ित नहीं होना पड़ता है। परन्तु अनुभव से पता चलता है कि देश में विलम्बित माध्यस्थमों के भी अनेकों मामले है। मध्यस्थों के लिए प्रत्येक दिवस की बैठक हेतु (या उसी दिन भिन्न सत्र के लिए) शुल्क का निर्धारण किसी सीमा तक लोक आलोचना का विषय रहा है। जहां तक मध्यस्थों के समक्ष उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं का संबंध है, उनके आचरण माध्यस्थम अधिनियम के अधीन, सीधे विचार किए जाने की परिधि में नहीं आता है परन्तु यह अन्य विधि से शासित हो सकेगा। परन्तु एक बार मध्यस्थों के शुल्क के मामले कतिपय मुख्य मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित हो जाते हैं तो यह आशा की जाती है कि माध्यस्थम स्थानों पर नियंत्रण रख सकेंगे जो उनके समक्ष उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं द्वारा मांगे जाते हैं।

1996 के अधिनियम की धारा 31(8) में, जो किसी पंचाट में विनिर्दिष्ट किए जाने वाले मामलों का निर्देश करती है, माध्यस्थम खर्च का माध्यस्थम अधिकरण द्वारा नियत किए जाने का निर्देश करती है, इस धारा के नीचे दिए गए स्पष्टीकरण में निम्नलिखित निदेश है:-

(एक) मध्यस्थों और साक्षियों के शुल्क तथा खर्चे;

(दो) विधिक शुल्क एवं खर्चे;

(तीन) कोई प्रशासनिक शुल्क; या

(चार) अन्य खर्चे।

1996 के अधिनियम की धारा 39 (2) (पुरानी धारा 38(1) के समरूप) अधिकरण पंचाट पर धारणाधिकार तथा खर्चों के बारे में निक्षेप का निर्देश करती है। धारा 39(1) में संदाय न किए गए खर्चे के लिए धारणाधिकार का प्रावधान है। धारा 39(2) के अधीन न्यायालय मांगा गया खर्चा पक्षकार द्वारा न्यायालय में जमा करा सकता है और खर्चे की उक्त राशि का संदाय माध्यस्थम अधिकरण को कर देगा। माध्यस्थम अधिकरण को संदाय की राशि न्यायालय के विचार में न्यायोचित सीमा तक सीमित की जा सकेगी और शेष राशि पक्षकार को वापस लौटा दी जाएगी। धारा 39 की उपधारा (4) न्यायालय को उन मामलों में ऐसे आदेश देने की अनुमति देती है जो वह माध्यस्थम की लागत के रूप में उपयुक्त समझे जहां ऐसी लागत के बारे में कोई प्रश्न उठता है और अधिकरण पंचाट में उनके बारे में पर्याप्त प्रावधान अन्तर्विष्ट न हों।

आई॰सी॰सी॰ तथा एल॰सी॰आई॰ए॰ ने मध्यस्थों के शुल्क के बारे में नियम निर्धारित किए हैं। आई॰सी॰सी॰ के नियम माध्यस्थम पर लगे समय, विवादों की जटिलता तथा सम्बद्ध परिस्थितियों और आई॰सी॰सी॰ नियमों के परिशिष्ट तीन में निर्धारित विषय-वस्तु के मूल्य पर आधारित हैं। एल॰सी॰आई॰ए॰ नियम खर्च हुए समय पर आधारित है।

रसैल ने शुल्क निर्धारित करने के लिए मध्यस्थों को एक पद्धति का निम्नलिखित सुझाव दिया है (1999) (पैरा 4.094)-

> "समस्त माध्यस्थम के लिए किसी एकमुश्त राशि पर सहमत होने के लिए, परन्तु यदि मामला पंचाट तक नहीं बढ़ता वहां मध्यस्थों के शुल्क के बारे में विवाद हो सकता है या, यदि मामला आशा के विपरीत अधिक समय लेता है तो मध्यस्थों के शुल्क में पर्याप्त रूप से कमी हो जाएगी।"

पैरा 4.097 में रसैल ने कहा है कि अन्य शुल्क अधिभार को "अवचार" ठहराया गया है।

अतः मामले की न्यायोचित प्रगति पर निर्भर करते हुए मध्यस्थों के शुल्क की दर किस प्रकार निर्धारित की जाए और यदि मामले में तेजी से प्रगति नहीं होती और जहां पक्षकार स्थगनों के लिए उत्तरदायी न हों वहां शुल्क के दर किसी प्रकार कम की जाए, इस बारे में सुझाव दिए जा सकते हैं।

जहां तक देशी माध्यस्थों का संबंध है, हम मध्यस्थों के लिए तथा उनके समक्ष उपस्थित होने वाले अधिवक्ताओं के लिए आचार संहिता बनाने की सिफारिश करते हैं। इस प्रकार संहिता से माध्यस्थम कार्यवाही पूरी करने में अनुचित विलम्ब कम होंगे और कार्यवाहियों को तेजी से पूरा करने में सहायता मिलेगी। ऐसी संहिता अधिनियम के परिशिष्ट के रूप में जोड़ी जानी चाहिए। इस संबंध में भी सुझाव आमंत्रित किए जाते हैं।

प्रस्तावों का सारांश

1. माध्यस्थम और सुलह अधिनियम, 1996 में संशोधनों का प्रस्ताव करते हुए, यह महसूस किया गया है कि अधिनियम के महत्वपूर्ण पहलुओं-शीघ्र निपटान और न्यायालय के न्यूनतम मध्यक्षेप जैसे को प्राप्त करना आवश्यक है। तथापि, जहां अधिनियम में मॉडल विधि के कतिपय उपबंध नहीं जोड़े जा सके हैं, वहां अधिनियम को मॉडल विधि के अनुरूप बनाने का प्रस्ताव किया गया है। उस आधार पर, जहां तक अन्तर्राष्ट्रीय माध्यस्थमों का संबंध है, मॉडल विधि के उपबंधों को न्यूनाधिक रूप में स्वीकार किया गया है। तथापि, देशी पर्यवेक्षण के संबंध में, प्रस्तावों में न्यायालय द्वारा दृढ़ नियंत्रण रखा जाना सम्मिलित किया गया है। प्रस्ताव निम्नलिखित हैं--

2. अधिनियम की धारा 5 में किसी संशोधन की आवश्यकता नहीं है (पैरा 2.1)।

3. धारा 8 में, "न्यायिक प्राधिकरण" शब्द के स्थान पर "न्यायालय" शब्द प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए। "जब तक यह पाया जाता है कि करार अकृत और शून्य है, अप्रवर्तनीय या निष्पादन योग्य नहीं है" शब्द जोड़े जाने चाहिए ताकि धारा 8 (1) को मॉडल विधि के अनुच्छेद 8 के अनुरूप बनाया जा सके। धारा 8 में "न्यायालय" शब्द से वह "न्यायालय" अभिप्रेत है जिसमें वाद दायर किया जाता है। न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील उच्च न्यायालय के खंडपीठ में संस्थित की जाएगी।

4. धारा 11 में "भारत के मुख्य न्यायाधीश" या उसके द्वारा नामित "शब्दों के स्थान पर "उच्चतम न्यायालय" शब्द, जिसका अभिप्राय होगा " न्यायालय के दो या दो से अधिक विद्वत न्यायाधीशों की पीठ वाला न्यायालय" शब्द प्रतिस्थापित किए जाने चाहिए। "उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या उसके द्वारा नामित" "शब्दों के स्थान पर "उच्च न्यायालय" जिसके अभिप्राय न्यायालय के दो या दो से अधिक विद्वत न्यायाधीशों

की पीठ से होगा शब्द प्रतिस्थापित किए जाने चाहिए। इससे धारा 11 मॉडल विधि के अनुरूप हो जाएगी जिसमें ''न्यायालय'' शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि धारा 11 के अधीन प्रयोग की जाने वाली शक्ति न्यायिक शक्ति है। उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय अधिकारिता संबंधी मामलों को धारा 11 के स्तर पर ही निपटा सकेंगे। यदि मौखिक साक्ष्य, उक्त न्यायालयों के सम्मुख, आवश्यक होगा तो साक्ष्य एक अधिवक्ता कमीशन नियुक्त प्राप्त किया जाएगा।

5. अधिनियम की धारा 16 में माध्यस्थम अधिकरण को माध्यस्थम करार की विद्यमानता और वैधता के बारे में आपत्तियों सहित, अपनी अधिकारिता के प्रश्नों पर निर्णय करने की शक्ति प्रदान की गई है। प्रारम्भिक मामलों के बारे में माध्यस्थम अधिकरण के निर्णय को न्यायालय में 30 दिन की अवधि के भीतर चुनौती दिए जाने की अनुमति होनी चाहिए, चाहे भी जहां मध्यस्थों ने तर्क को अस्वीकार कर दिया हो। प्रारम्भिक अधिकारिता संबंधी मामलों को अस्वीकार करने वाले निर्णय पर आपत्ति करने का अधिकार धारा 34 या धारा 37 में अन्तःस्थापित किया जाना चाहिए। धारा 16(5) में शब्द ''करेगा'' शब्द के स्थान पर ''कर सकेगा'' शब्द प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए।

6. धारा 12 और 13 में निष्पक्षता या निरहर्ता के प्रारम्भिक मामलों पर मध्यस्थों के तर्क को अस्वीकार करने वाले निर्णय धारा 34 और 37 के अधीन न्यायालय में आपत्ति उठाए जाने की अध्यधीन होना चाहिए। धारा 13(4) में ''करेगा'' शब्द के स्थान पर ''कर सकेगा'' शब्द प्रतिस्थापित किए जाने चाहिए।

7. भाग-एक में धारा 9 के अधीन उपबंध (आंतरिक उपाय) विदेशी माध्यस्थम पर भी लागू किया जाना चाहिए जहां माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर हो। इससे अधिनियम मॉडल विधि पर आधारित अन्य देशों की विधियों के अनुरूप हो जाएगा।

8. धारा 8, 38 और 39 के उपबंध ऐसे विदेशी माध्यस्थमों के लिए भी लागू होंगे जहां माध्यस्थम का स्थान भारत से बाहर है और जहां ऐसे माध्यस्थम भाग-दो (न्यूयार्क या जेनेवा कन्वेंशन पंचाट) के अन्तर्गत नहीं आते हैं। क्या विदेशी पंचाटों का समर्थन करने वाले इंग्लिश अधिनियम, 1996 के अन्य उपबंध में पुरःस्थापित किए जाने चाहिए? क्या ''माध्यस्थम स्थान'' शब्द परिभाषित किया जाना चाहिए?

9. 1940 के अधिनियम की धारा 21 के समरूप उपबंध पुरःस्थापित किए जाने चाहिए जो न्यायालय को (जिसके समक्ष कोई वाद या अन्य कार्यवाही लम्बित है) पक्षकारों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित करने का अधिकार देते हैं तब भी जब ऐसा करार वाद या कार्यवाही प्रारम्भ हो जाने के बाद किया गया हो। ऐसे निदेश पर पारित पंचाट को उसी न्यायालय में चुनौती देने के लिए उपबंध किए जाने चाहिए। इससे सभी न्यायालयों को मुकदमेबाजी की नई संभावनाएं पैदा करने के बजाए, उच्च न्यायालय/उच्चतम न्यायालय सहित, मामलों को माध्यस्थम के लिए निर्देशित करने का, यदि कार्यवाहियों के दौरान पक्षकार इसके लिए सहमत हों, तथा उसी न्यायालय में पंचाट के सही होने के बारे में कार्यवाही करने का (धारा 34 और 37 में उल्लिखित आधारों पर) अधिकार हो जाएगा।

10.(1) धारा 16 के अधीन माध्यस्थम अधिकरण के प्रारम्भिक निर्णयों पर आपत्ति करने के अधिकार अधिकरण की अधिकारिता संबंधी तर्कों को स्वीकार करे या अस्वीकार, (2) धारा 13 के अधीन मध्यस्थ के प्रारम्भिक निर्णय पर आपत्ति करने के अधिकार, अधिकरण तर्क को स्वीकार करे या अस्वीकार, का प्रावधान करके धारा 34 (धारा 37) में संशोधन किया जाना चाहिए।

11. धारा 34 (या धारा 37) में आपत्ति दायर करने और मामले को माध्यस्थम अधिकरण को विप्रेषित करने की शक्ति प्रदान करने का उपबंध किया जाना चाहिए जहां माध्यस्थम अधिकरण उसे निर्देशित किए गए कतिपय प्रश्नों पर निर्णय देने से चूक जाता है।

12. धारा 34 (या धारा 37) में, यदि पंचाट में किसी विवाद के बारे में कोई कारण न दिए गए हों, आपत्ति दायर करने और कारण अन्तर्विष्ट करने वाला पूरक पंचाट प्राप्त करने की मांग करने के लिए उपबंध किया जाना चाहिए।

13. ''अवचार'' को भी धारा 34 (या धारा 37) में आपत्ति के एक विशिष्ट आधार के रूप में सम्मिलित किया जाना चाहिए। क्या इसे देशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों प्रकार के माध्यस्थमों के लिए लागू किया जाना चाहिए?

14. "पंचाट को देखते ही स्पष्ट विधि की त्रुटि" धारा 34 (या धारा 37) में एक विशिष्ट आधार के रूप में सम्मिलित की जानी चाहिए (सिवाय जहां विधि का विशिष्ट प्रश्न मध्यस्थों को निर्देशित किया गया है) परन्तु केवल देशी माध्यस्थमों के मामलों में।

15. विधि के प्रश्न को न्यायालय को निर्देशित करने के लिए मध्यस्थों को समर्थ बनाने का उपबंध भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

16. पंचाट के उपांतरण या विप्रेषण का उपबंध भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

17. माध्यस्थम का अधिकरण (केवल देशी माध्यस्थम के मामलों में) करने की न्यायालय को शक्ति प्रदान की जानी चाहिए।

18. पंचाट के साथ अल्पसंख्यक मत भी सूचनार्थ संलग्न किया जाना चाहिए।

19. धारा 31 का संशोधन करके रिकार्ड के प्रयोजन से सभी पंचाट न्यायालय में प्रस्तुत किए जाने चाहिए ताकि पंचाटों की प्रमाणिकता पर ध्यान रखा जा सके।

20. धारा 36 के अधीन केवल वहीं पंचाट न्यायालय द्वारा निष्पादित किए जाएंगे यदि वे स्टाम्प शुल्क/रजिस्ट्रीकरण से संबंधित नियमों की पुष्टि करते हों।

21. किसी एक पक्षकार के कर्मचारी मध्यस्थ नियुक्त नहीं किए जाने चाहिए, सिवाय उन मामलों के जहां वे सरकार या सार्वजनिक उपक्रमों या निगमों के कर्मचारी हैं।

22. क्या, जहां तक देशी मध्यस्थों का संबंध है, विशिष्ट कारणों से न्यायालय द्वारा समय बढ़ाए जाने के अध्यधीन, माध्यस्थम कार्यवाहियों के पूरा किए जाने के लिए अन्तिम समय-सीमा निर्धारित की जानी चाहिए?

23. क्या मध्यस्थों के शुल्क निर्धारित करने के लिए मार्गदर्शी सिद्धान्त निर्धारित किए जाने चाहिए और वे मार्गदर्शी सिद्धान्त क्या होने चाहिए तथा माध्यस्थमों में उपस्थित होने वाले मध्यस्थों तथा अधिवक्ताओं के लिए क्या विशिष्ट आचार संहिता लागू की जानी चाहिए?

पी एल डी. 92. CLXXVI (एच)
75 – 2005 – (DSK -IV)

मूल्य रुपये 1960/-

2005
अधीक्षक, प्रकाशन, सिविल लाईन्स दिल्ली के लिए
प्रभारी अधिकारी, भारत सरकार मुद्रणालय, राष्ट्रपति भवन द्वारा मुद्रित।